विप्रदास

मूल लेखक

श्री शरत चन्द्र चट्टोपाध्याय

के

प्रसिद्ध उपन्यास 'विप्रदास' का अविकल अनुवाद

अनुवादक

धनप्रकाश अग्रवाल, बी० ए० एल-एल० बी०

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य भण्डार

कर्नलगंज, प्रयाग

मूल्य तीन रुपया

विप्रदास

मूल लेखक

श्री शरत चन्द्र चट्टोपाध्याय

के

प्रसिद्ध उपन्यास 'विप्रदास' का अविकल अनुवाद

अनुवादक

धनप्रकाश अग्रवाल, बी० ए० एल-एल० बी०

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य भण्डार

कर्नलगंज, प्रयाग

मूल्य तीन रुपया

श्री गुरुचरणदास अग्रवाल
हिन्दी-साहित्य-भण्डार
कर्नलगञ्ज, प्रयाग ।

मुद्रक—
अनारकली प्रेस, कर्नलगञ्ज,

पहला परिच्छेद

बलरामपुर गाँव की रथशाला मे किसानों ने एक सभा की। की रेलवे लाइन के कुली गैंग ने इतवार की छुट्टी होने के कारण में सम्मिलित होकर इसका मान बढ़ाया और कलकत्ते से आये हुए प्रसिद्ध वक्ताओं ने वर्तमान युग की विषमता और वैमनस्यता के जोशपूर्ण भाषण दे डाले। बेशुमार प्रस्ताव पास हुए और अन्त वन्दे-मातरम् के नारों के साथ जुलूस बनाकर गाँव की परिक्रमा की और उस दिन का सम्मेलन का कार्य-क्रम समाप्त किया गया।

बलरामपुर गाँव छोटे-बड़े बहुत से ताल्लुकेदारों और धनी की बस्ती है। मुसलमान किसानों की बस्ती गाँव के किनारे पर है उसी के समीप कई एक घर बाग्दियों और दुले लोगों के हैं। भागीरथी एक धारा ने बहुत पहले ही सूखकर अर्द्धवृत्ताकार मे कोसों लम्बी की रचना की है, उनके घर इसी के किनारे पर बने हैं। यज्ञेश्वर पाध्याय इस गाँव के सबसे बड़े धनी पुरुष हैं। उनकी जमींदारी, और तिजारत इत्यादि के धन-ऐश्वर्य को अपार कहना बेजा नहीं। समय वह जुलूस लाल कपड़े पर लिखे हुए भाँति-भाँति के नारों के उच्च स्वर से किसान-मजदूरों की जय-जयकार करता हुआ आलीशान महल के सामने वाले रास्ते से होकर जा रहा था, उस वक्त नवयुवक ऊपर के बरामदे में खड़ा होकर नीचे का सारा दृश्य भाव से निहार रहा था।

अचानक उसकी निगाह पड़ते ही जनता का उद्वेलित शोर-गुल जैसे पल भर में ठण्डा पड़ गया। आगे-आगे चलने वाले में से दो-तीन ने विस्मित होकर इधर-उधर देखते हुए बहुतेरे दृष्टि का अनुकरण कर जब ऊपर निगाह डाली तो वह आड़ में आहिस्ता आहिस्ता छिप गया। वे पूछ बैठे—'कौन है?'

कई आदमियों ने दबी हुई जबान से कहा—'विप्रदास बाबू!'

'कौन हैं विप्रदास? क्या गाँव के जमींदार?' किसी ने कह दिया—हाँ!

नेतागण शहर के आदमी हैं। किसी को कुछ समझते नहीं; तिरस्कृत भाव से कहा—'ओह यही!' और फिर फौरन उन्होंने उच्च स्वर से चिल्लाकर और हाथ उठाकर कहा—'बोलो भारत माता की जय! बोलो किसान-मजदूरों की जय! वन्देमातरम्!'

लेकिन इसका कोई खास मतलब नहीं निकला। बहुतेरे चुप हो गये, या मन ही मन में नारा लगाया और जिन दो-चार लोगों ने आवाज लगाई, उनका दबा हुआ कण्ठ-स्वर ऊँचे नहीं उठ सका। विप्रदास के बरामदे को पार कर वह उनके कानों तक पहुँचा था या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। नेताओं ने अपने को तिरस्कृत समझकर, झल्लाकर कहा—इस एक साधारण देहाती जमींदार से इतना भय! यही तो हमारे बड़े शत्रु हैं, हमारा लहू बराबर चूस रहे हैं। हमारा असली हमला तो इन्हीं के खिलाफ है!

अचानक इस जोशीले लेक्चर का सिलसिला विघ्न पहुँचने से रुक गया। कितने ही तेज बाण अभी उनके तरकश में मौजूद थे, किन्तु प्रयोग करने में बाधा हो गई। किसी ने भीड़ में से कहा—'उनके बड़े भाई!'

'किनके?'

एक युवक ने, जिसकी उम्र पच्चीस-छब्बीस साल की थी, और झण्डा लिये सबके आगे-आगे चल रहा था, मुँह फेर कर खड़ा हो गया और कहने लगा—'अपने ही बड़े भाई हैं।'

परन्तु इसी युवक के आग्रह, मेहनत और पैसे से आज का सम्मेलन सफल हो सका था।

'अच्छा, आपके बड़े भाई हैं! तो आप भी यहाँ के जमींदार हैं?'

युवक का सिर लज्जा से झुक पड़ा।

दूसरा परिच्छेद

छोटे भाई को अपनी बैठक में बुलाकर विप्रदास ने कहा—'कल का कार्यक्रम बुरा नहीं रहा; बहुत कुछ चकित करने वाला था। नारे भी

अच्छे चुने गये। उनमें कड़ापन था यह तो मानना ही होगा।' द्विज...
मौन होकर खड़ा रहा।

विप्रदास ने पूछा—'जुलूस क्या खास तौर से मेरे ही लिए, मेरी निगाह के सामने से ले जाया गया? मैं भयभीत हो जाऊँगा इसीलिए क्या?'

द्विजदास ने शान्त होकर उत्तर दिया—'केवल आप ही के वास्ते नहीं। जुलूस किसी भी रास्ते में क्यों न गुजरे—जिन्हें डरना है, वे ... डर ही जायँगे भैया!'

विप्रदास ने मुस्कराकर हँस दिया। उनकी यह हँसी उम्मीद से एकदम ... भरी थी। उन्होंने कहा—'तुम्हारे भैया उस तरह के व्यक्ति नहीं हैं, ... बात तुम्हारे जुलूस के बहुत से लोग जानते थे। वर्ना उसकी जयध्वनि सुनने के लिए मुझे बरामदे में जाकर कानों से सुनने की आवश्यकता ... होती, मकान के भीतर से ही सुनाई पड़ जाती। तुम्हारे भाँति-भाँति ... झण्डों और लम्बे-चौड़े लेकचरों से मैं डरता नहीं। यह मैं भली-भाँ... जानता हूँ कि लगाये हुए नकली दाँतों से दूसरों के ऊपर दाँत पीसे ... जा सकते हैं, उनसे काटने का कार्य नहीं हो सकता।'

कल जिस लिए बहुत से लोगों का कण्ठरोध हुआ था, वह ... नहीं था और इसी से द्विजदास दिल के अन्दर बहुत लज्जित भी हु... था। वह स्वभाव से शान्त प्रकृति का व्यक्ति है, बड़े भाई का ... अधिक सम्मान करने के कारण शायद और किसी प्रसङ्ग में भी चुप ... जाता, परन्तु जिस बात को लेकर उन्होंने आक्षेप किया, उसे ... मुश्किल था। फिर भी दबे कण्ठ से उसने कहा—'भैया, लगाये ... से कितना काम चलता है यह हम जानते हैं। केवल आप लोग ही ... जानते कि संसार में असली दाँत वाले व्यक्ति भी हैं। जब काटने ... समय आवेगा, उनकी कमी न रहेगी।'

उत्तर आशा-रहित था। विप्रदास ने अचरज करके मुँह की ... ताकते हुए कहा—'अच्छा!'

द्विजदास जवाब में कुछ कहने ही जा रहा था कि भय से रुक ... भय विप्रदास का नहीं, माँ का था। अचानक द्वार के बाहर माँ का ... सुनाई पड़ा—'तुम लोग द्वार पर पर्दा क्यों लटकाये रखते हो, जवाब ... नेम धरम से घर में पैर रखना कठिन हो गया है। घर-द्वार सब ...

... फैशन की चीजों से भर गया है।'

द्विजदास ने फौरन ही पर्दे को एक तरफ खिसका दिया और विप्रदास . से उठ खड़े हुए। एक स्त्री कमरे में दाखिल हुई। अवस्था चालीस ...र है, परन्तु रूप का ठिकाना नहीं। मुँह पर वैधव्य के दुःख की छाप है, यह देखते ही मालूम हो जाता है। छोटे लड़के की तरफ पीठ फेर बड़े लड़के के लिए उन्होंने कहा—'अरे विपिन, सुना है कि इस ; में एकादशी के विषय में पत्रे मे बड़ी गड़बड़ी है। ऐसा तो कभी . नहीं।'

विप्रदास ने कहा—'ऐसा तो नहीं होना चाहिए माँ।'

'तू तनिक स्मृतिरत्न महाशय को बुलवा ले, देखे वे क्या कहते हैं?'

विप्रदास जरा हँसकर बोला—'अच्छा, बुलवाता हूँ। परन्तु उनकी से क्या होगा माँ, तुम्हारे कानों में जब यह खबर एक बार पड़ है, तो इन दोनों दिनों में किसी भी दिन तुम तो पानी ग्रहण नहीं ', यह समझता हूँ।'

माँ ने हँसकर कहा—योंही उपवास करते रहने का क्या किसी को शौक परन्तु और रास्ता क्या है? इसे करने में पुण्य नहीं है, और नहीं करने ... नरक है। सुना है बहू कह रही थी कि समाचारपत्र में लिखा है कि बड़े पण्डित कलकत्ते में भागवत की बहुत सुन्दर व्याख्या कर रहे हैं। ... पता तो लगा कि क्या वे इस झोपड़ी को भी पवित्र कर सकेंगे?'

'तुम्हारा आदेश है तो पता लगा दूँगा माँ।'

'क्यों, मेरे आदेश की क्या आवश्यकता? क्या तुम लोगों को सुनने ...न नहीं होता? कब कथा हुई थी क्या मालूम!'

विप्रदास ने हँसते हुए तनिक थमकर कहा—'अभी तो तीन महीने नहीं हुए उसको हुए, माँ।'

माँ ने आश्चर्य से कहा—'केवल तीन महीने! परन्तु तीन महीने कम होते हैं? जो कुछ भी हो भैया, पर इस बार नहीं कराने से ; नहीं चलेगा। मेरी दोनों मामियों ने चिट्ठियाँ लिखी हैं, कैलाश, ...रोवर के दर्शन के लिए इस बार मैं जरूर जाऊँगी।'

विप्रदास ने हाथ जोड़कर कहा—'दोहाई माँ! यह आदेश मत करो। दोनों में से एक यदि साथ नहीं जाता तो मामियों की संरक्षकता में

तुम्हें तिब्बत नहीं भेज सकूँगा। और सभी हानि मैं सह
लेकिन माँ को मैं नहीं छोड़ सकता।'

माँ की आँखें डबडबा आईं, बोली—'डर मत, कैलाश...
मृत्यु होगी, ऐसा पुण्य तेरी माँ ने नहीं किया है। मैं फिर लौट आऊँ...
लड़कों में तू तो मेरे साथ नहीं जा सकेगा विपिन, तेरे ऊपर ही इस
परिवार का सारा बोझ है। और पीछे जो लड़का खड़ा हुआ है,
साथ लेकर मैं बैकुण्ठ जाने के लिए भी तैयार नहीं। ब्राह्मण का
होकर सन्ध्या गायत्री तो बहुत पहले ही खत्म कर चुका है, ...
कलकत्ते में खाने-पीने में भी विचार नहीं करता। इस पर कल
क्या किया, सुना है?' विप्रदास ने भोले आदमी की तरह कहा—
क्या किया इसने? नहीं, मैंने तो कुछ भी नहीं सुना।'

माँ ने कहा—'जरूर सुना है। तेरी आँखों को धोखा देगा,
अक्ल इस लड़के में नहीं है। लेकिन इसकी कुछ रोकथाम कर
हमारा ही खायगा-पहनेगा और हमारे ही रुपये से कलकत्ते से
बुलाकर हमारी प्रजा को बिगाड़ने की साजिश करेगा! इसका ...
का खर्च तू बन्द कर दे।'

विप्रदास ने आश्चर्यचकित होकर कहा—'यह क्या कह...
पढ़ाई का खर्च बन्द कर दूँ!' वह पढ़ेगा नहीं!'

माँ ने पूछा—'क्या आवश्यकता है? मेरे श्वसुर की पा...
लड़कों के दल ने जब आकर कहा कि विदेशी पढ़ाई-लिखाई ...
सत्यानाश हो रहा है, तब तू बेत लेकर उन्हें मारने दौड़ा था।
तेरा छोटा भाई जब ठीक उन्हीं बातों को कह रहा है, तो ...
प्रतिकार नहीं करेगा? यह तेरा कैसा विचार है?'

विप्रदास ने हँसकर कहा—'इसका सबब है माँ। स्कूल में ...
पाने का उलाहना मैं सहन नहीं कर सकता, लेकिन द्विजू
एम० ए० उत्तीर्ण करके विलायती शिक्षा के प्रति अपशब्द ...
खराब नहीं लगता।'

माँ बोली—'परन्तु मेरे ही रुपयों से मेरी ही प्रजा को ...
यह बात कैसे होगी?'

अब तक द्विजदास मौन था, एक भी बात का उत्तर उसने नहीं दिया। अब उसने कहा—'कल के जुलूस के लिए तुम्हारी जमींदारी का एक पैसा भी मैंने खर्च नहीं किया।'

घर पर आने के बाद से माँ ने एक बार भी पीछे की तरफ नहीं देखा था; इस बार भी नहीं देखा। विप्रदास से ही पूछा—'तो नालायक से पूछ तो सही कि रुपया कहाँ से पाया ? क्या कहीं नौकरी कर रहा है ?'

ठीक इसी वक्त पर्दे के बाहर आहिस्ता से चूड़ियों की खनखनाहट सुनाई दी। विप्रदास गौर से सुनकर बोला—'यही तो इसका उत्तर है, माँ, अगर तुम्हारे घर की बहू रुपये देती है, तो मना कौन करे, तुम्हीं बताओ ?'

माँ को बात स्मरण हो आई। बोली—'हाँ, यही बात है। यह काम उस सती का ही है ! बड़े बाप की लड़की है और बाप की जमींदारी से सालाना हजार रुपये पाती है, यह बात तो मै भूल ही गई। वह अपने लायक देवर को रुपये दे रही है !' फिर कुछ शान्त होकर बोली—'तेरे ब्याह के लिए जब समधी जी स्वयं आये, उसी समय मैंने मालिक से कहा था कि राय वंश की कन्या घर मे लाने की आवश्यकता नहीं। उन्हीं के घराने के अनाथराय ही ने तो विलायत में मेम से शादी की थी। वे जो चाहे सो कर सकते हैं। ससार मे उनके लिए असम्भव क्या है ?'

विप्रदास हँसकर चुप रह गया। उसे मालूम था कि सती के नसीब में यह नाता बदा है। उसके मयके के सम्बन्धियों में किसी अनाथराय ने बङ्गाली मेम से शादी की थी, यह बात माँ भूल न सकी।

सभी को मौन देखकर उन्होने फिर कहा—'अच्छा जाने दो। बाबा कैलाशनाथ इस बार याद कर रहे हैं; उनका दर्शन कर आऊँ तब इसका इन्तजाम करूँगी।' इतना कहकर वे कमरे से बाहर निकल गईं।

विप्रदास ने कहा—'क्यों द्विजू, माँ के साथ जा सकेगा ? जब उनके दिल में यह बात जम गई है तो उन्हें रोका जा सकेगा इसकी मुझे उम्मीद नहीं।'

द्विजदास ने उसी दम 'न' करते हुए कहा—'आपको मालूम तो है कि देवी देवताओं में मेरी श्रद्धा नहीं है। इसके सिवा माँ मेरे साथ स्वर्ग

मैं भी आने के लिए तैयार नहीं हैं, यह तो आप उन्हीं की जबानी सुन चुके हैं।'

विप्रदास झल्लाकर बोला—'हाँ, सुना पण्डित जी। पर तू आवेगा या नहीं, यह कह।'

'मुझे अभी जाने का अवकाश नहीं।' इतना कहकर दूसरे प्रश्न के सुनने से पहले ही द्विजदास कमरे से बाहर निकल गया।

लम्बी साँस छोड़ते हुए विप्रदास बोला—'तो ऐसी बात है! देश का कार्य ऐसा है कि माँ की आज्ञा भी नहीं मानी जा सकती।'

यहाँ पर माँ का थोड़ा परिचय दे देना आवश्यक है। वह विप्रदास की सौतेली माँ हैं। उसकी माँ की मृत्यु के वर्ष भर बाद ही यज्ञेश्वर दयामयी को ब्याह कर अपने घर लाये और उसी दिन से इन्होंने उसका पालन-पोषण किया। वह जन्म की माँ नहीं है, यह बात विप्रदास काफी अवस्था होने तक भी नहीं जान पाया था।

तीसरा परिच्छेद

केवल भाभी ही इस घर में द्विजदास का सबसे अधिक आदर करती थीं। उसके सभी प्रकार के बाहरी खर्च के रुपये भी उन्हीं के बक्स से आते थे। सती केवल रिश्ते में ही बड़ी नहीं थी, अवस्था के हिसाब से वह कई महीने बड़ी थी। इसीलिए प्रायः वह उसका नाम लेकर पुकारती थी। इसकी शिकायत द्विजदास ने बचपन में कितनी बार माँ से की है, इसका कोई लेखा नहीं।

केवल ग्यारह वर्ष की उम्र में सती का बहू के रूप में इस घर में प्रवेश होने के कारण उसके आदर की सीमा नहीं थी। सास हँसकर कहती—'ऐसी बात है? किन्तु बहू यह तो तुम्हारा अन्याय है—देवर को नाम लेकर बुलाना?'

सती कहती—'अन्याय कैसा, मैं उससे अवस्था में अधिक बड़ी जो हूँ।'

'अधिक बड़ी! कितनी बड़ी?'

'मेरी पैदाइश हुई बैसाख में और उसकी भादों में।'

माँ हँसकर कहती—'हाँ, भादों में ही तो, मैं तो भूल ही गई थी।

इस पर भी यदि कभी वह शिकायत करने आता है, तो उसके कान उखाड़ दूँगी।'

माँ की कचहरी में हारकर द्विजू जब अप्रसन्न हो चला जाता, तो बहू को गोद मे समेट कर सास प्यार से कहती—'वह नासमझ लड़का है, इसीलिए नहीं समझता; देवर कहने से बहुत प्रसन्न होता है। कभी-कभी यही कहकर बुला लिया करो, समझ गई बहू?'

सहमत होते हुए सती ने सिर हिलाकर उत्तर दिया—'अच्छा माँ, कभी-कभी यह कहकर पुकारूँगी।'

उस समय वह बालिका थी, आज वह इतने बड़े घर की गृहिणी है। विधवा होने के बाद से सास तो अपने जप-तप और धर्म-कर्म मे लगी रहती हैं; फिर भी उनका उस दिन का उपदेश आगे चलकर सती के लिए बड़े काम का प्रमाणित हुआ, जैसे आज।

पहले वाले परिच्छेद में वर्णित घटना के पश्चात् लगभग पन्द्रह-सोलह दिन व्यतीत हो गये हैं, सवेरे सती ने देवर के कमरे में दाखिल होते हुए पुकारा—'देवर!'

हाथ उठाकर रोकते हुए द्विजदास बोला—'बस करो भाभी, ज्यादा खुशामद की आवश्यकता नहीं, मैं करूँगा।'

'क्या करोगे, पूछूँ?'

'तुम जो आज्ञा दोगी, वही। किन्तु यह भैया का बड़ा अन्याय है!'

'अन्याय कैसा है, बताओ तो सही!'

द्विजदास ने उसी प्रकार क्रोध में कहा—'मैं जानता हूँ। अभी भैया के कमरे के सामने से होकर आ रहा हूँ। भीतर माँ और वह थे, माँ का और तुम्हारा गुप्त आयोजन मेरे कानों में पहुँच गया। उनमें हिम्मत नहीं है कि मुझसे कहें, इसीलिए स्वार्थ-सिद्धि के लिए तुम्हारी सहायता ली गई है। बताओ तो सही, कितना बड़ा अन्याय है!'

सती ने हँसकर कहा—'अन्याय तो नहीं है देवर, वे अच्छी तरह जानते हैं कि उनके कहते ही टका-सा जवाब मिलेगा कि मुझे मरने की भी फुर्सत नहीं है; परन्तु भाभी का हुक्म होने पर क्या मजाल है कि द्विज इनकार कर दे।'

द्विजदास गर्दन हिलाकर बोला—'यहीं मैं दुविधा में पड़ जाता हूँ। इसी कारण उन्हें बल मिल जाता है। परन्तु करना क्या चाहिए?'

सती ने कहा—'माँ कैलाश-दर्शन को जायेंगी और तुम्हें साथ जाना होगा।'

थोड़ी देर मौन रहने के पश्चात् द्विजदास बोला—'दो तीन महीने से कम नहीं लगेंगे। काम का कितना नुकसान होगा, यह भी सोचा है।'

यह बात मान कर सती ने कहा—'नुकसान तो कुछ होगा ही; एक नया स्थान भी तो देख आओगे। अपनी तरफ से इसे सोलहों नुकसान नहीं कहा जा सकता। प्यारे देवर, अब उज्र मत करना।'

द्विजदास ने कहा—'तुम जब हुक्म दे रही हो तो उज्र न करूँ— साथ चलूँगा। लेकिन अचानक ही उस दिन भैया से मेरा कलकत्ते का खर्च बन्द करवा देने के लिए माँ ने कहा था...।'

सती ने हँसकर कहा—'देवर, वह तो क्रोध की बात है। परन्तु ... देने के लिए माँ के अलावा दूसरा कोई है नहीं। यह बात भूलने से काम नहीं बनेगा।'

द्विजदास बोला—'भाभी, भूला नहीं हूँ परन्तु उसी दिन से क्या प्रतिज्ञा की है, मालूम है? मैं अकेला आदमी हूँ, शादी करने मौका मुझे कभी मिलेगा नहीं, संयोग भी नहीं आयेगा, इसलिए साधारण है। आवश्यकता होगी तो लड़के पढ़ाकर पेट पालूँगा, इनकी रियासत से कभी एक पैसा भी न माँगूँगा।'

सती ने फिर हँसकर कहा—'माँगने की आवश्यकता नहीं होगी ... स्वयं आकर उपस्थित हो जायगा। मान लो नहीं भी होता है फिर तुम्हें लड़के पढ़ाने की जरूरत न पड़ेगी। कम से कम मेरे जीवित नहीं, यह जिम्मेदारी मेरी है।'

यह भरोसा द्विजदास के दिल में भी पहले से था, पल भर के उसकी पलकें अश्रुपूर्ण हो गई, परन्तु इस मनोभाव को शीघ्रता से द... उसने पूछा—'इन्होंने कब यात्रा करने का निश्चय किया है? कभी भी क्यों न जायँ, आखिर में मुझे साथ चलना ही होगा; ... ने उस दिन स्पष्ट कह दिया था कि मुझ जैसे पापी को लेकर वह जाने के लिए भी इच्छुक नहीं हैं। इसी को भाग्य की ईर्ष्या कहते

सती ने इस उलहने का उत्तर न दिया, बल्कि मौन रह गई।

द्विजदास ने कहा—'कुछ भी हो भाभी, तुम्हारा हुक्म न टालूँगा, उनसे कह देना बेफिक्र रहे।'

सती ने हँसकर कहा—'मुझे भेजकर ही वे बेफिक्र हो गये हैं। मकान से निकलते ही तुम्हारे भैया की बोली कान में पड़ी, वह उच्च स्वर से माँ से कह रहे थे—'अब निश्चिन्त होकर सफर की तैयारी करो माँ, जिसे दूत बनाया गया है, उसके सामने विवाद चलेगा नहीं। तुम देख लेना नीचा सिर करके वह स्वीकार कर लेगा।'

द्विजदास ने यह सुना तो गुस्से से पल भर चुप रहकर बोला—'अस्वीकार नही कर सकूँगा, यही समझकर यदि उन लोगो ने यह उपाय निकाला हो कि स्त्रियों के इस निरर्थक खयाल को पूरा करने का साधन मुझे ही बनना पड़ेगा, तो मेरी ओर से तुम भैया से कह देना कि उन लोगों को शर्म आनी चाहिए।'

सती ने कहा—'कहने से कोई फायदा नहीं होगा देवर, जमींदार बन कर जो रिआया का खून चूसते हैं उनकी यही नीति है। अपना स्वार्थ सिद्ध करने मे इन्हे शर्म नहीं लगती। दौलत के आधे के मालिक होकर भी जब तुम्हे इनकी रियासत से रुपये लेने मे हिचक होती है, तब एक तरफ मुझे जैसा दुःख होता है, उसी तरह दूसरी तरफ मन प्रसन्नता से भर उठता है। मैने तुम्हारा नाम लेकर माँ को विश्वास दिला दिया है कि उनके जाने में किसी प्रकार बाधा न होगी, तुम साथ जाओगे। यात्रा से राजी-खुशी लौट आओ देवर, जितनी भी हानि होगी मै क्षतिपूर्ति करूँगी।'

तख्त से उठकर भाभी के पैर छूकर द्विजदास अपनी जगह जा बैठा।

सती ने कहा—'अब तक तो दूसरों के लिए सिफारिश मे वक्त गुजरा अब मेरा भी एक अनुरोध है।।'

द्विजदास ने हँसकर पूछा—'तुम्हारा निजी? लेकिन भाभी, यह मुझसे होगा नहीं।'

सती ने हँसकर कहा—'कोई ताज्जुब की बात नहीं देवर, भय लगता है कहीं सुनकर अस्वीकार न कर दो।'

'अच्छा, कह कर ही देख लो न।'

सती ने कहा—'मेरे एक म्लेच्छ चाचा हैं—अपने नहीं, पिता जी के चचेरे भाई हैं, वह विलायत गये थे। यदि यह समाचार उस समय यहाँ पहुँचा होता, तो मेरा इस घर में प्रवेश न हो पाता। शायद इस बात को तुमने माँ के मुँह से सुना होगा!'

'बहुत बार। यहाँ तक कि औसत में प्रति दिन एक बार का लेखा लगाया जाय तो इन पन्द्रह-सोलह वर्षों में कम से कम पाँच-छः हजार बार।'

सती ने हँसकर कहा—'मेरा भी अनुमान ऐसा ही है। चाचा बम्बई में रहते हैं। उनकी एक कन्या वहीं पढ़ती है। अगले वर्ष वह पढ़ाई खत्म करने के लिए विलायत जायगी। तुम्हें जाकर उसे लाना होगा।'

'बम्बई से?'

'हाँ! उसने लिखा है कि वह अकेली आ सकती है, परन्तु इतनी दूर अकेली आने के लिए कहने का साहस मुझे नहीं होता।'

'उसे यहाँ पहुँचा देने के लिए वहाँ कोई नहीं है?'

नहीं, चाचा को छुट्टी नहीं मिल सकती।'

द्विजदास एकाएक तैयार नहीं हो सका, कुछ सोचने लगा।

सती बोली—'जब मेरी शादी हुई तब वह सात-आठ वर्ष की बच्ची थी, उसके बाद सिर्फ एक बार ही भेंट हुई थी कलकत्ते में, उस समय वह मैट्रिक पास करके आई० ए० में पढ़ रही थी—उस बात को तो कई वर्ष हो गये। मैं बहुत प्यार करती हूँ उसे। देवर, यदि कष्ट उठाकर उसे यहाँ ला देते! बुलाने के लिए वह मुझे पत्र लिखती थी, लेकिन अवसर नहीं मिलता था।'

द्विजदास ने पूछा—'परन्तु इसी बीच अवसर कैसे मिल गया? क्या माँ सहमत हो गई?'

इस प्रश्न का उत्तर तत्काल न दे सकने की वजह से सती के चेहरे पर घबराहट आ गई। कुछ रुक कर बोली—माँ से कह दिया है। अभी सम्मति तो नहीं दी है; किन्तु अपनी तीर्थ-यात्रा में इतनी फँसी हैं कि विश्वास है कि उज्र न करेंगी। इसके अलावा जब स्वयं नहीं रहेंगी, तो

...से मेरे पास वह दो-तीन महीने रह सकती है।'

द्विजदास ने दिल ही में जान लिया कि सास की आज्ञा न मिलने पर ...इस अवसर पर वह अपनी प्रवासी बहिन को एक बार अपने पास बुलाना चाहती है! उसने पूछा—'तुम्हारे चाचा ब्रह्म-समाजी हैं क्या?'

सती ने उत्तर दिया—'नहीं। परन्तु हिन्दू समाज भी उन्हें अपनाने के लिए राजी नहीं है। वे असल में कहाँ हैं, शायद इसका पता उन्हें भी नहीं है। इसी प्रकार दिन व्यतीत हो रहे हैं।'

बहुतेरों की यही दशा है। द्विजु मन ही मन नाराज होकर बोला—'मुझे जाने में उज्र नहीं है भाभी। परन्तु मेरा कहना है कि माँ के रहते हुए तुम उसे यहाँ मत बुलाओ। जानती तो हो माँ को, हो सकता है कि खान-पान, छुआ-छूत लेकर ऐसा झंझट खड़ा कर दें कि बहिन के लिए तुम्हें शर्मिन्दा होना पड़े। अच्छा तो यह होगा कि हमारे चले जाने के पश्चात् उसे बुलाने की व्यवस्था करो, सभी तरह से यही अच्छा रहेगा।'

यही अच्छी राय है, इसे सती स्वयं जानती थी। किन्तु जब उसने खुद पत्र लिखकर आने की प्रार्थना की है, तो अनिश्चित भविष्य की आशा दिलाकर इस समय न आने के लिए कैसे पत्र लिखे, यह बात उसकी अक्ल में न आई। इससे सङ्कोच और क्लेश क्या कम होता है? कहने लगी—'अपनी बहिन होने के नाते ही नहीं कह रही हूँ देवर, उस बार महीने भर कलकत्ते में उसे अपने पास पाकर पक्की तौर से जान लिया है कि रूप गुण मे वैसी लड़की पृथ्वी पर दुर्लभ है। बाहर से उसका चरित्र कैसा भी क्यो न दीख पड़े, अगर माँ उसे दो दिन भी अपने पास देख लेतीं, तो लड़कियों के विषय में उनका विचार ही बदल जाता। वह कभी उसकी बेअदबी नहीं कर सकेगी।'

द्विजदास ने कहा—'किन्तु दो दिन ही तो माँ को दिखाना मुश्किल है भाभी। वे तो देखना ही नहीं चाहेंगी। यह तो ठीक है।'

सती ने कहा—'किन्तु उसके सौंदर्य पर तो उनकी दृष्टि पड़ेगी ही? आँख बन्द कर माँ इसे अस्वीकार तो नहीं कर सकेंगी? यह भी तो एक तरह का परिचय है।'

द्विजदास मौन रहा। सती ने कहा—मेरा पक्का विश्वास है कि वन्दना

ही इस दुनिया में कोई अवहेलना नहीं कर सकता। माँ भी नहीं...

द्विजदास ने चकित होकर पूछा—'वन्दना! नाम सुना हुआ —ता है भाभी! सम्भव कहीं देखा है, ठहरो तो, अखबार में—एक फोटो भी शायद...।'

बात समाप्त नहीं हुई थी वैसे ही महरी धम-धम करती कमरे में घुसकर बोली—'बहू, तुम यहाँ हो? तुम्हारे एक चाचा अपनी लड़की लेकर बम्बई से आ पहुँचे हैं। बाहर कोई है नहीं, बड़े बाबू भी नहीं। मैनेजर बाबू ने उन्हें नीचे वाले कमरे में टिकाया है।'

घटना अचिन्तनीय है। 'अरे, क्या कहती है?' कहते हुए सती तूफानी चाल से कमरे से बाहर निकल गई। द्विजदास पीछे पीछे गया।

चौथा परिच्छेद

पूरी साहबी पोशाक मे कुर्सी पर बैठे हुए एक अधेड़ पुरुष और बीस इक्कीस वर्ष की कन्या उन्हीं की बगल में खड़ी दीवार पर टँगे जगद्धात्री देवी के एक भव्य चित्र को बड़े गौर से देख रही थी। सोलहो आने उसकी पोशाक मेमों की तरह न भी हो, परन्तु वह सहसा बङ्गाली कन्या भी जान न पड़ती थी। खासकर शरीर का रङ्ग सफेदी लिये हुए इतना गोरा, बदन की बनावट सुडौल और मुँह पर अपूर्व रूप। अभी सती जो गर्वपूर्वक दे... से कह रही थी कि उसका रूप तो सास की दृष्टि में पड़ेगा ही, वा... में यह बात सही है। बहिन की इस सुन्दरता पर गर्व किया जा सकता है

कमरे में जाकर सती ने प्रणाम करके कहा—'मझले चाचा, बहु... दिनों बाद बेटी के यहाँ आये?'

वे उठे और सती के सिर पर हाथ रखा, और हँसकर बोले—कब चाचा को बुलाया था, जो नहीं आया? कभी आने के लिए भी है? जब स्वयं आ पहुँचा तो अब कह रही हो कि चाचा का ... हुआ!' द्विजदास पर निगाह पड़ते ही पूछा—'कौन हैं ये?'

पीछे की तरफ देखकर सती ने कहा—'मेरे देवर द्विजू हैं वह।'

दूर से ही द्विजदास ने नमस्कार किया। बड़ी बहिन को प्रणाम -

वन्दना हँसकर बोली—'हाँ, तो वह आप ही हैं, जिनके उत्पात से ...

. वाले बड़े स्वराजी हैं ?'

'मैंने ऐसी बात तुझे कब लिखी ?'

'अभी उसी दिन तो, इसी के बीच भूल गई ?' सती ने सिर हिला कहा—'ये बातें मैंने नहीं लिखी हैं, तुझे याद नहीं है।'

इतनी देर तक द्विजदास एक तरह की हिचक के कारण सकुचा हुआ। अपरिचित युवती के सामने क्या करना चाहिए, क्या कहना ठीक है, कुछ भी नहीं कर पा रहा था। इसके पहले कभी अवसर नहीं था, आवश्यकता भी नहीं पड़ी थी। किन्तु नवागता तरुणी की ...मित करने वाली स्वच्छन्दता से उसे मानो एक नई शिक्षा मिल। उसकी अकारण और अशोभन जड़ता पल भर में दूर हो गई। उसे स्वच्छ आनन्द का स्वाद मिला। कन्याओं को भी शिक्षा और ...नता की आवश्यकता तो है, इसे बुद्धि से वह सदा स्वीकार करता और माँ तथा बड़े भैया में विवाद छिड़ जाने पर वह यही तर्क पेश ...ा था कि नारी होने पर वह पुरुष हैं; शिक्षा और स्वाधीनता में उनका अधिकार है। मूर्ख बनाकर उन्हें घरों में बन्द रखना अन्याय है। आज इस अतिथि तरुणी के आकस्मिक परिचय से उसने पल भर में बार अनुभव किया कि उन साधारण अधिकारों के तर्क के अलावा बड़ी बात यह है कि पुरुष के चरम और परम प्रयोजन के लिए भी को शिक्षा और स्वाधीनता की जरूरत है। उसे वंचित करके पुरुष तक अपने को वंचित कर रहा है, इस सत्य को इतने स्पष्ट रूप में पहले उसने कभी नहीं देखा था। तरुणी को पुकार कर उसने हँसते कहा—'बात तो आपकी ही ठीक है; भाभी भूल गई हैं। किन्तु इसके विवाद से कुछ फायदा नहीं।' इतना कहकर कृत्रिम गम्भीरता से —'भाभी, तुम्हारी ही शक्ति मेरी शक्ति है और तुम्हारे ही पत्र में इस ...र की बातें ! ठीक है। तुम लोग मुझे छोड़ दो और मैं भी अपने कुल को छोड़ रहा हूँ। तुम्हारी जमींदारी सदैव बनी रहे। एक बार मुँह ...र आज्ञा दो, आज ही वकील बुलाकर सब लिखा-पढ़ी करवा देता यही गवाह रहें। देखना कि मैं कर सकता हूँ या नहीं !'

साहब ने कहा—'तेरे देवर बड़े स्वराजी हैं न सती?'

'हाँ, बड़े-स्वराजी हैं।'

'तेरे कहने से ही लिख पढ़कर जमींदारी का हिस्सा त्याग चाहते हैं?'

सती ने सिर हिलाकर कहा—'वह बड़ी सरलता से कर सकते उनके लिए कुछ भी कठिन नहीं।'

वन्दना ने पूछा—'क्या सच कह रहे हैं? सदैव के लिए त्याग सकते हैं?'

पल भर उसके मुँह की तरफ देखकर द्विजदास बोला—'... त्याग सकता हूँ। उसमें मेरा रत्तीमात्र भी लोभ नहीं है। देश के ... फी सदी लोगों को एक समय भी भर पेट खाना नहीं मिलता—प्रातः सन्ध्या तक मेहनत करने पर भी नहीं—और बिना हाथ-पैर डुलाये मेरे लिए मेवे-पकवानों का इन्तजाम है। पाप का यह दाना मुझे ... भाता। कण्ठ में अटक-सा जाना चाहता है। मेरी ऐसी रियासत का ... जाना ही ठीक है। फिर देश के और आदमियों की तरह कमा-... जीवन व्यतीत करूँगा। मिल जाय अच्छी बात है, न मिले तो उन्हीं सङ्ग भूखे रहकर मृत्यु हो जाने पर किसी दिन स्वर्ग में भी जा ... परन्तु इस पथ पर चलने से उसकी आशा कदापि नहीं है।'

वन्दना सुन रही थी। बात समाप्त होने पर और नहीं बोली।

सती की व्याकुलता मानो दूर हुई। जैसे देवर को इसके ... कहने को कुछ बाकी नहीं। कहते कहते याद-सी हो आई, वह ... 'लेकचर फिर देना देवर, अवसर मिलेगा। अभी तक शायद मझले ... ने हाथ मुँह भी नहीं धोया—वन्दना, चल ऊपर जाकर कपड़े बदल ...

साहब ने पूछा—'दामाद तो दिखाई नहीं दे रहे हैं?'

सती ने कहा—'वह प्रातः एक आवश्यक कार्य से बाहर ... शायद लौटने में देरी होगी।'

वन्दना ने पूछा—'मझली दीदी, तुम्हारी सास तो दीख नहीं ... घर ही में हैं न?'

सती ने कहा—'अभी तो हैं, परन्तु जल्द ही कैलाश मा... तीर्थ-यात्रा करने जायँगी। सवेरे पूजा-पाठ में लगी रहती हैं।

याद देख सकोगी।'

वन्दना ने पूछा—'वह प्रायः धर्म-कर्म में ही जुटी रहती हैं न?'

सती ने कहा—'हाँ!'

'ऐसा सुना है कि विधवा होने के बाद से घर-द्वार का काम कुछ भी नहीं देखतीं। सच है यह?'

'सच ही तो है, सब कुछ मुझे ही देखना-भालना पड़ता है।'

वन्दना ने उत्कण्ठित होकर पूछा—'मझली दीदी, वह तुम्हारी सौतेली सास हैं न?'

सती ने हँसकर कहा—'आँख से तो देखा नहीं बहिन, लोग शायद झूठ कहते हैं।'

द्विजदास ने जवाब देते हुए कहा—'झूठ ही कहते हैं। क्योंकि सौतेली सास का मतलब होता है बड़े भैया की सौतेली माँ, न? झूठ बात है। सौतेली माँ हैं—मेरी, बड़े भैया की नहीं।'

'इस बात को छोड़ो, नहाने-धोने से फुर्सत पाकर फिर इस पर बात-चीत होगी। चलिए, ऊपर चलें। अच्छा, मैं जाकर देखूँ, भाभी। अब विलम्ब न करो, इन्हें ले आओ।' इतना कहकर द्विजदास तैयारी की देख-भाल करने जा रहा था कि तभी माँ को देखकर सहम गया।'

मुमकिन है कि दयामयी खबर पाकर पूजा छोड़कर ही चली आई हैं। उम्र ज्यादा न होने के कारण वह विधवा होने के पश्चात् भी आम तौर से गैर पुरुष के सामने नहीं आती थीं। आड़ में रहकर बातचीत करती हैं। परन्तु आज एकदम घर के बीच में आकर खड़ी हो गई। घूँघट माथे तक खिंचा हुआ था, परन्तु चेहरा पूरा दिखाई दे रहा था।

'यह मेरे मझले चाचा है माँ जी, और यह मेरी वन्दना बहिन।' कहते हुए सती ने पास आकर सहसा सास को प्रणाम किया। इस तरह बेमतलब प्रणाम करने का रिवाज भी नहीं है, और न कोई करता ही है। शायद दयामयी को मन ही मन कुछ ताज्जुब हुआ हो। परन्तु उन्होंने बड़े प्रेम से उसकी ठुड्डी छूकर अँगुलियों से किनारों को चूमकर आशीर्वाद दिया। किन्तु वन्दना पर दृष्टि पड़ते ही उनकी आँखों की दृष्टि रूखी हो गई। दीदी की देखा-देखी उसने भी पास आकर प्रणाम किया। परन्तु

न्होंने छुआ नहीं। सम्भव है छूने से बचने के लिए ही एक कदम पीछे हटकर धीरे से बोलीं—'जीती रहो!'

वह बोलीं—'नमस्कार समधी जी! पुत्र-वधू के अच्छे भाग्य जो आपने अचानक दर्शन दिया।'

सती के चाचा ने प्रति-नमस्कार करके कहा—'अनेक कारणों से फुर्सत नहीं मिलती समधिन जी, किन्तु बिना कहे-सुने अचानक आ जाने के लिए माफ करेंगी। अब जब आऊँगा, समय पर सूचना देकर ही आऊँगा।'

इन बातों का जवाब दयामयी ने नहीं दिया। केवल बोलीं—'पूजा-पाठ से अभी फुर्सत नहीं मिली समधी जी, फिर भेंट होगी। बहू, इन लोगों को ऊपर लिवा जाओ। देखना, खाने-पीने में कष्ट न होने पावे। विपिन आ जाय तो तनिक मेरे पास भेज देना।' इतना कहकर किसी ओर बिना देखे ही वह कमरे से बाहर निकल गईं। बाहरी तौर से प्रचलित सौ जन्म में खास कोई भूल तो नहीं हुई। किन्तु भीतर से सभी ने अनुभव किया कि चाँदनी के बीचो बीच काले बादल का एक टुकड़ा स्वच्छ आकाश की तरफ से दूसरी तरफ चला गया।

पाँचवाँ परिच्छेद

वन्दना जब स्नान करके बैठक में आई तो देखा कि पिता जी पहले से ही तैयार बैठे हुए हैं। एक बहुमूल्य आराम कुर्सी पर चश्मा लगाये बैठे वह समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। बगलवाली छोटी मेज पर बहुत से समाचार-पत्र पड़े हुए थे और निकट ही खड़ा द्विजदास उन्हें तिथि वार लगा रहा था। रेल के सफर और काम की अधिकता से उन्हें कई दिन के समाचार-पत्र देखने का अवसर नहीं मिला था। लड़की को कमरे मे आते देख आँख उठाकर बोले—'बेटी, हमने दो बजे वाली गाड़ी से कलकत्ता जाना निश्चय किया है। अगर दीदी के यहाँ कुछ दिन रहने का तुम्हारा मन है, तो लौटते समय तुम्हें पहुँचाकर मैं सीधा बम्बई चला जाऊँगा। ठीक है न?'

'आपको कलकत्ते में कितने दिन लगेंगे पिता जी?'

'पाँच-सात रोज—एक हफ्ता—इससे ज्यादा नहीं।'

'परन्तु इसके बाद मुझे बम्बई कौन पहुँचायेगा?'

'उसका इन्तज़ाम आसानी से हो सकता है।' इतना कह वह फिर सोचकर कहने लगे—'ठीक बात है, इच्छा हो तो इतने दिनों तक दीदी के पास ही रहो, वापस जाते समय मैं ही तुम्हें साथ ले जाऊँगा, रहेगा न?'

पल भर चुप रहकर वन्दना बोली—'अच्छा, मझली दीदी से पूछ लूँ।'

द्विजदास ने कहा—'भाभी रसोईघर में गई हैं, देर भी हो सकती है।' का पुलिन्दा दिखाते हुए कहा—'आपको दूँ?'

'समाचार-पत्र? मैं नहीं पढ़ती।'

समाचार-पत्र नहीं पढ़ती!'

'नहीं, समाचार पढ़ने की धीरता मुझमें नहीं है। सन्ध्या समय पिता जी से कहानियाँ सुनती हूँ, मेरी भूख उसी से मिट जाती है।'

अचरज की बात है! मैं समझता था कि आप बहुत ज्यादा पढ़ती हैं।'

वन्दना ने कहा—'मेरे विषय में कुछ भी बिना जाने इस प्रकार क्यों सोचते हैं? यह घोर अन्याय है।'

द्विजू लज्जित हो रहा था, वन्दना हँसकर कहने लगी—'आप लोगों में से किसने कितना देशोद्धार किया, और उससे अङ्गरेज के नेत्र कितने लाल हो गये, इसमें मेरी दिलचस्पी नहीं है। पिताजी उधर देखिए न समाचार पत्र में एकदम बिलकुल घुल गये हैं—बाहरी बातों का ध्यान ही नहीं।'

सम्भव है साहब के कानों में बिटिया का 'पिता जी' शब्द ही प्रविष्ट हुआ था, परन्तु नेत्र ऊपर उठाने का मौका नहीं मिला, बोले—जरा शान्ति रखो—बोलता हूँ—बस इसका जवाब तो मैं खोज ही रहा था।'

सिर हिलाकर मुस्कुराते हुए बेटी ने कहा—'तुम खोज-खाजकर दिन भर पढ़ो पिता जी, मुझे कुछ भी जल्दी नहीं है।' द्विजदास को लक्ष्य करके बोली—'मझली दीदी से मालूम हुआ था कि आपका बहुत बड़ा पुस्तकालय है, वहीं चलिए, देखूँ आपके संग्रह में कितने ग्रन्थ हैं।'

'चलिए न।'

पुस्तकालय दोतल्ले पर था। जीना काफी चौड़ा था। द्विजदास चढ़ते हुए बोला—'पुस्तकालय काफी बड़ा है, परन्तु मेरा नहीं, भैया का है।

मैं केवल कौन-सी पुस्तक कहाँ प्रकाशित हुई इसका पता लगाता हूँ आज्ञा के अनुसार मोल ले आता हूँ।'

'किन्तु आप पढ़ते तो हैं ?'

'बस, नहीं के बराबर पढ़ता हूँ, जिनका पुस्तकालय है, वे खूब पढ़ते हैं। आश्चर्यजनक शक्ति और उसी प्रकार अजीब याददाश्त है उनकी।'

'कौन ? बड़े भैया ?'

'हाँ, विश्वविद्यालय की कोई विशेष डिग्री-विग्री उन्होंने नहीं पाई यह सच है। किन्तु इतना भव्य पाण्डित्य कदाचित् इस देश के दो-चार लोगों में ही हो, सम्भव है न भी हो। वह आपके बहनोई हैं, उन्हें नहीं देखा है आपने ?'

'नहीं, देखने में कैसे हैं वे ?'

'एकदम मेरे उल्टे—जैसे दिन और रात्रि। मेरा रङ्ग काला उनका रङ्ग सोने की तरह है। उनकी जिस्मानी ताकत इस इलाके मशहूर है। लाठी, तलवार और बन्दूक चलाने में इधर उनकी जोड़ कोई है नहीं। सिर्फ अकेली माँ को छोड़कर उनके मुँह की तरफ देख बातें करने का किसी का साहस नहीं होता।'

वन्दना ने हँसकर कहा—'क्या मेरी मझली दीदी का भी नहीं ?'

द्विजदास ने कहा—'नहीं। आपकी मझली दीदी का भी नहीं।'

'बड़े गुस्सेवर हैं क्या … ?'

'नहीं, ऐसे नहीं। अङ्गरेजी में जो ऐरिस्टोक्रेट नामक एक शब्द भैया कदाचित् किसी जन्म में उन्हीं के राजा थे। कम से कम मेरा ख्याल ऐसा ही है। गुस्सेवर हैं या नहीं, कभी आपने पूछा था ?'

'किसी तरह गुस्सा करने का मौका ही उन्हें कहाँ रहता है।'

वन्दना ने कहा—'आप भैया के बड़े भक्त हैं न ?'

द्विजदास मौन रहा। कुछ देर के बाद बोला—'इसका जवाब दे कभी मुमकिन हुआ तो किसी और दिन आपको दूँगा।'

अचरज से वन्दना ने कहा—'इसका मतलब क्या ?'

द्विजदास ने थोड़ा हँसकर कहा—'अगर कभी मतलब बतला दूँ फिर दोबारा बतलाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। आज के लिए रहने दें

शानदार पुस्तकालय है। जिस प्रकार मूल्यवान आलमारियाँ, मेज कुर्सियाँ और दूसरे सामान हैं, उसी प्रकार उसे अच्छे ढङ्ग से सजाया भी गया है। गाँव में इतना बड़ा इन्तजाम देखकर वन्दना को ताज्जुब हुआ। इसकी कमी बम्बई शहर में नहीं है। उसके मुकाबले में शायद यह उतना बड़ा भी नहीं है। पर गाँव में रहते हुए किसी आदमी का सिर्फ अपने ही लिए इतना बड़ा संग्रह सचमुच आश्चर्य की बात है। उसने पूछा—'क्या जीजा सचमुच इतनी किताबें पढ़ते हैं?'

द्विजदास ने कहा—'पढ़ी हैं और पढ़ते भी हैं। आलमारियाँ बन्द नहीं हैं; किसी भी पुस्तक को खोलकर देखिए, उनके पढ़ने का निशान आपको दिखाई देगा।'

'इतना वक्त मिलता कब है? क्या दिन-रात यही किया करते हैं?'

सिर हिलाकर द्विजू बोला—'नहीं। कम से कम मुझे नहीं मालूम। इसके सिवा हमारी रियासत उतनी बड़ी न होने पर भी बहुत छोटी भी नहीं है, उसमें कहाँ क्या है और क्या हो रहा है, सभी भैया की दृष्टि के सामने है। यह आज की बात नहीं है। पिता जी के जमाने से यही व्यवस्था चली आ रही है। वक्त कैसे मिलता है, इसका भेद मुझे भी अच्छी तरह नहीं मालूम। आपही की भाँति मुझे भी कुछ कम आश्चर्य नहीं है। किन्तु यह सोचा करता हूँ कि दुनिया में कुछ ऐसे आदमी भी पैदा होते हैं, जिनकी गिनती मामूली लोगों में नहीं की जा सकती। भैया उसी तरह के आदमी हैं। शायद हमारी तरह उन्हें कष्ट उठाकर पढ़ने की जरूरत नहीं पड़ती, छपे अक्षर नेत्रों के अन्दर जाकर दिमाग में घुस जाते हैं। किन्तु भैया की बातें अभी रहने दें। उन्हें कभी अपनी आँखों से आपने देखा नहीं। मेरे मुख से उनकी आलोचना बढ़ा-चढ़ाकर कही गई जानी जा सकती है।'

'किन्तु सुनने में मुझे बहुत ही भला लग रहा है।'

'परन्तु भला लगना ही तो सब कुछ नहीं है। संसार में हम और दूसरे बहुतेरे मामूली आदमी भी तो हैं। अगर एक खास आदमी ही सारा स्थान घेरकर बैठ जाता है, तो हम कहाँ जायँ? केवल मुँह दूसरों का यशगान करने के लिए ही तो भगवान् ने नहीं दिया?'

वन्दना ने हँसकर कहा—'यानी बड़े भैया की बात छोड़कर छोटे भैया का थोड़ा यशगान करना चाहते हैं—यही बात है न ?'

द्विजू हँसकर बोला—चाहता जरूर हूँ, किन्तु अवसर कहाँ ि. है ? जो परिचित हैं वे तो कान ही नहीं देंगे, अपरिचितों के सामने थोड़ा गुनगुनाया जा सकता है। किन्तु साहस नहीं होता, भय लगता आदत होने से अपनी बड़ाई अपने ही मुख से शायद धाराप्रवाह - होगी।'

वन्दना ने कहा—'धारा रुक भी नहीं सकती कोशिश कर दे. मेरा विचार है मनुष्य इस विद्या मे निपुण है। अब विलम्ब न करें. कीजिए।'

सिर हिलाकर द्विजू ने कहा—'नहीं, यह मुझसे नहीं हो सके इससे अच्छा होगा कि आप निराले स्थान में बैठकर दो-चार किताबें मैं भाभी को भेज रहा हूँ।' इतना कह द्विजदास के जाने के लिए होते ही वन्दना ने तेज आवाज से कहा—'वाह ! खूब ! नहीं, मु... न छोड़ जाना। किताबें मैं काफी पढ़ चुकी हूँ, इसकी जरूरत नहीं कहानी सुनावें और मैं सुनूँ।'

'कौन कहानी ?'

'अपनी खुद की।'

'तो थोड़ा धीरज धरिए, मैं अभी नीचे जाकर बहुत अच्छी .. भेज रहा हूँ।'

वन्दना ने कहा—'मझली दीदी को ही भेजिएगा न ? उनकी नहीं है। उन्हें जो कुछ बोलना था, वह पत्रों में ही समाप्त हो जो कुछ वे लिखती थीं सच था या नहीं, अब तो यही सुनने की ...

द्विजदास ने कहा—'सच नहीं था। कम से कम बारह झूठ था। हाँ, क्या आप जल्द ही विलायत जा रही हैं ?'

वन्दना जान गई, यह आदमी अपने प्रसङ्ग की आलोचना नहीं चाहता और हठ करने की धृष्टता दिखाना उचित न होगा। कहने 'पिता जी की मंशा यही है। स्कूल की पढ़ाई वह वहीं खत्म

है। आप भी चलिए न!'

द्विजदास ने कहा—'मुझे उज्र नहीं है, पर रुपये कहाँ पायेंगे? वहाँ जाने से काम नहीं चल सकता और इतना बड़ा भार भाभी पर ... चाहता। यह व्यर्थ की आशा है।'

सुनकर वन्दना हँसकर बोली—'द्विजू बाबू, ये बातें तो आपने ... कहीं, नहीं तो आप लोगों के पास जो दौलत है, उससे सिर्फ ... ही नहीं, चाहें तो गाँव के आधे आदमियों को साथ ले जा ... ठीक बात है, इन्तजाम मैं कर देती हूँ, जाने के लिए आप ... ।'

द्विजू ने कहा—'यह इन्तजाम नहीं होने का। रुपये काफी हैं जरूर ... उब भैया के हैं, मेरे नहीं। मैं उनकी कृपा पर हूँ, कहना अत्युक्ति होगी।'

फिर हँसने की चेष्टा करती हुई वन्दना बोली—'अत्युक्ति क्या है कौन सी है यह मैं भी जानती हूँ किन्तु यह भी क्रोध की बात है। ... दीदी के पत्र में एक बार पढ़ा था कि जो दौलत आपने खुद पैदा की, उसे आप ग्रहण नहीं करना चाहते हैं। यह बात क्या नहीं है?'

द्विजदास ने कहा—'अगर सच है भी तो वह अपने-अपने विचार बात है, गुस्से की नहीं। किन्तु सिर्फ यही सबब नहीं है।'

'और सबब क्या है, सुनूँ तो जरा?'

द्विजदास मौन रहा। वन्दना पल भर में उसके मुख की तरफ देखकर ... धीरे बोली—'मुझे स्वभावतः इतना कौतूहल नहीं है और मेरा यह ... विचित्र है—यह मैं जानती हूँ, किन्तु जानने से ही दुनिया के सारे ... पूरे नहीं हो जाते—अभाव मुँह बाये खड़े रहते हैं। आपके विषय ... ना सुना है कि जब आप पहले पहल घर में घुसे, तो मुझे आपके ... चित होने का ध्यान ही नहीं हुआ। इतनी सरलता से आपको ... न लिया, जैसे बहुत बार देखा हो। मझली दीदी से ये बातें कह ... हैं और मुझसे नहीं? चाहे कुछ न भी हो, उनकी भाँति मैं भी तो आत्मीय हूँ।

ये बातें सुनकर द्विजू चुप हो गया और अचानक सारा मामला सा-
: आने से उसके सङ्कोच और आश्चर्य की सीमा न रही। एकदम अपरिचित
:ती कुमारी से एकान्त में इस तरह बातचीत करने का यह पहला अवसर
दीवार पर लगी घड़ी में एक घण्टे से ज्यादा समय बीत गया। इ-
यदि नीचे किसी ने उन्हें खोजा होगा तो इस घर में इसका -
स्या देगा यह उसके दिमाग में नहीं आया। मुमकिन है भैया
आये हों। माँ की पूजा भी समाप्त हो गई हो। अकस्मात्
शरीर और मन बेचैन होकर जैसे पल भर में सीढ़ी -
। किन्तु कुछ भी करने में असमर्थ होकर उसी भाँति चुप बै-

'बतलाया क्यों नहीं? बोलिए न?'

द्विजू होश में आकर बोला—'यदि बताऊँगा तो पहले बताऊँगा; आज तक भाभी से भी नहीं बताया।'

'उसका हिसाब वह स्वयं लगायेंगी। मैं तो बिना सुने ···।'

बताना मुनासिब नहीं है, इसमें द्विजू के मन में शङ्का नहीं थी; आग्रह की अवहेलना करने की शक्ति भी उसमें नहीं थी।

किंकर्त्तव्यविमूढ़ की तरह एक मिनट देखकर कहने लगा- यह है कि पिता जी वास्तव में मुझे कुछ भी दे नहीं गये।'

वन्दना विस्मित होकर बोली—'नहीं! यह झूठ बात है। ऐसा हो सकता।'

जवाब में द्विजू ने सिर हिलाकर कहा—'जरूर हो सकता है।'

'किन्तु इसका सबब क्या है?'

'शायद पिता जी का विचार हो गया था कि मुझे देने से - दौलत बर्बाद हो जायगी।'

'इस विचार का कोई असली कारण भी था?'

'जरूर था। एक बार मुझे बचाने में उनके बहुत रुपये बर्बाद गये थे।'

वन्दना को स्मरण हुआ, इस प्रकार का एक इशारा एक बार के पत्र में था। पूछा—'क्या पिता जी विल लिख गये हैं?'

द्विजदास ने कहा—'यह बात भी केवल भैया ही जानते हैं

... उदास होकर बोली—'सच कह रहे हैं?'

'सच ही कह रहा हूँ।'

ठीक इसी वक्त नीचे के जीने से सती के बुलाने का स्वर सुनाई पड़ा, ! वन्दना! क्या कर रहे हो तुम दोनों जने?'

'आ रहा हूँ भाभी!' कहकर द्विजदास जल्दी से जाने को तैयार हुआ।

...ना ने कहा—'इन बातों का तो मुझे पता ही नहीं था। धन्यवाद!'

छठा परिच्छेद

नीचे आकर वन्दना ने देखा कि पिता आनन्दित होकर भोजन करने ... गये हैं, उसी बैठकखाने में ही एक छोटी सी मेज पर चाँदी की थाली ... भोजन परोस दिया गया है। एक दीर्घाकृति बहुत ही सुन्दर व्यक्ति ... ही खड़े हैं। उनके शरीर की मजबूत बनावट और अत्यन्त गौर वर्ण ...ते ही वन्दना ने समझ लिया कि विप्रदास यही हैं। सती भी साथ आ रही थी; किन्तु उसने प्रवेश नहीं किया, द्वार की आड़ में खड़ी ...र प्रणाम करने के लिए सङ्केत से कहा—'हाँ, यही तो हैं।'

बङ्गाली कन्या के लिए यह सिखाने की बात नहीं है, और इसके माँ को जिस प्रकार भूमिष्ठ होकर उसने प्रणाम किया था, उसी प्रकार बहनोई को भी करती, किन्तु सहसा मानो उसका मन विद्रोह कर ... इनकी असाधारण विद्या और बुद्धि का विवरण द्विजदास के मुख ... सुनने पर शायद इस प्रचलित शिष्टाचार का उल्लङ्घन करने की उसके दिल में न आती; लेकिन इसी परिचय ने ही उसे कठोर बना ...। बड़ी बहन की मर्यादा के विचार से उसने हाथ उठाकर नमस्कार ..., परन्तु उससे अपेक्षा ही अधिक स्पष्ट हो गई। पिता से उसने ...—'तुम अकेले ही भोजन करने बैठ गये, मुझे क्यों नहीं बुलवा

सिर ऊपर उठाकर देखते हुए साहब ने कहा—'मेरी गाड़ी का वक्त हो गया है बिटिया; परन्तु तुम्हें तो कोई जल्दी नहीं पड़ी है। मेरे

क्यों बर्बाद किया, पिता जी को एनामेल या चीनी ... भोजन परोसने से ही तो काम चल सकता था।'

साहब का भोजन समाप्त हुआ। वह अत्यन्त सरल प्रकृति के ... हैं। बेटी की बात का मतलब रत्तीभर भी नहीं समझा, व्यस्त और ... हो गये—जैसे अपराध उन्हीं का है—'हाँ, ठीक बात तो यही है ... तो मेरा ध्यान ही नहीं गया—कहाँ गई सती, डिश में खाना देना था मुझे।'

विप्रदास का मुख गुस्से से कठोर और गम्भीर हो गया। ... इतना बड़ा अपमान करने का साहस आज तक किसी ने नहीं किया ... जैसा नवागत आत्मीय की इस कन्या ने। बर्तनों के नष्ट होने की ... तो सिर्फ बहाना है। वास्तव में यह तो उनके आचारनिष्ठ परिवार के ... निर्लज्ज व्यङ्ग है, और बहुत सम्भव है, उसी को लक्ष्य कर, यह चाल ... चली विप्रदास समझ नहीं सका। परन्तु कोई भी क्यों न चले, इस ... *मानस बूढ़े आदमी को उपलक्ष बनाने की नीचता से उसकी घृणा* ... सीमा न रही। लेकिन इस मनोभाव का दमन करके जरा हँसकर कहा ... 'क्या तुमने अपनी दीदी से नहीं सुना कि यह सनातनी हिन्दू का ... है? एनामेल कहो या चीनी मिट्टी, ये चीजें यहाँ नहीं आ सकतीं।'

वन्दना ने कहा—'लेकिन कीमती बर्तन तो नष्ट हो गये हैं न?'

साहब ने दुखी होकर कहा—'लेकिन सुना है कि घी लगाकर सेंक देने से ही···।'

इस बात पर विप्रदास ने गौर नहीं किया, जिस तरह कह ... उसी तरह वन्दना को ही लक्ष्य करके कहा—'इस घर में चाँदी के ... की कमी नहीं है, वे किसी विशेष काम मे भी नहीं आते। तुम्हारे ... रिश्ते में मेरे गुरुजन हैं, इस घर के अत्यन्त सम्मानित अतिथि; बर्तनों का कितना भी मूल्य क्यों न हो, उनकी इज्जत ... बिलकुल तुच्छ हैं। तुम लोगों के आने के उपलक्ष में अगर कुछ

चलीं, है तो जायँ। इतना कह तनिक हँसकर बोले—'तुम्हारी दीदी की

सोच अगर तुम्हारा भी किसी सनातनी कुटुम्ब में ब्याह हो तो पिताजी

ाने पर मिट्टी की थाली में भोजन देना, फेंक देने में कोई हिचक

ने ही ागी। क्यों, बात ठीक है न वन्दना?'

अच्छा, ऐसी बात है तो पिता जी के लिए मैं सोने के बर्तन बनवा रख लूँगी।'

विप्रदास ने हँसकर उत्तर दिया—'यह तुमसे होगा नहीं। जो ऐसा कर सकता है, पिता के सम्बन्ध में वह ऐसी बातें मुँह पर नहीं ला सकता, यहाँ तक कि दूसरे का अपमान करने के लिए भी नहीं। जितना प्यार तुम अपने पिता को करती हो शायद उससे भी अधिक प्यार एक व्यक्ति अपने चाचा को करता है।'

यह सुनकर साहब के हृदय का बोझ ही नहीं उतर गया, वरन् उनका दिल आनन्द से भर गया। वह बोले—'बेटा, तुम्हारी यह बात बिल्कुल सच है। भैया की जब अचानक मृत्यु हो गई, उस समय तो यह बहुत ही छोटी थी। मैं परदेश मे नौकरी करता था, हमेशा घर आना सम्भव नहीं था, और आने पर भी सामाजिक अनुशासन के कारण अकेला रहना पड़ता था। परन्तु सती फुर्सत पाते ही मेरे यहाँ आ जाती थी।'

वन्दना ने शीघ्रता से रोककर कहा—'इन बातों को रहने दो पिताजी।'

'नहीं-नहीं, मुझे सारी बाते याद हैं, ये असत्य नहीं हैं। एक दिन मेरे सङ्ग एक ही थाली में भोजन करने बैठ गई। उसकी माँ तो यह देखकर···।'

'आप क्या कहते रहते हैं, पिताजी, कुछ समझ मे नहीं आता। कब मझली दीदी तुम्हारे सङ्ग···कुछ भी तुम्हें याद नहीं।'

साहब ने प्रतिवाद किया—'वाह! याद नहीं है, और इसी को लेकर कोई गड़बड़ी न हो, इसीलिए तुम्हारी माँ ने उस दिन किस प्रकार डरते हुए···।'

वन्दना ने कहा—'पिता जी, आज तुम्हें हर्गिज गाड़ी नहीं मिल सकती, कितना बजा होगा?'

साहब ने शीघ्रता से घड़ी निकाली। देखकर निश्चिन्तता की साँस
र बोले—'तू तो इस तरह डरा देती है कि व्याकुल हो जाना पड़ता
अभी बहुत देर है—बड़ी सरलता से गाड़ी मिल जायगी।'

हँसकर समर्थन करते हुए विप्रदास ने कहा—'हाँ, गाड़ी आने में अभी बहुत देर है। आप बेफिक्र होकर भोजन करें, मैं स्वयं जाकर गाड़ी पर बिठा आऊँगा।' इतना कहकर वह कमरे से बाहर निकल गया।

दरवाजे की आड़ से सती के पास आकर खड़े होते ही वन्दना ने आहिस्ता से पूछा—'मझली दीदी, पिता जी ने क्या कर डाला, सुना है?'

सिर हिलाकर सती ने कहा—'हाँ।'

वन्दना ने कहा—'तुम्हारी सास के कानों में पड़ने पर तुम्हें दुःख उठाना पड़ सकता है। ठीक है न मझली दीदी?'

सती ने कहा—'तो होने दो। अभी रहने दो, चाचा सुन लेंगे।'

'परन्तु तुम्हारे स्वामी?—वह भी तो अपने कानों सब कुछ सुन गये हैं, इस अपराध की क्षमा सम्भवतः उनके पास भी नहीं है?'

सती ने हँसकर कहा—'अगर सचमुच अपराध हुआ ही है, तो मैं क्षमा क्यों माँगूं? इसका फैसला मैं उन्हीं पर छोड़कर बेफिक्र हो गई हूँ। अगर यहाँ रही तो अपनी ही आँखों से ही देख लोगी। बताओ तुम्हारे लिए क्या ला दूँ चाचा जी?'

साहब ने कहा—'बहुत, है बहुत, बेटी मेरा भोजन हो गया, अब और कुछ नहीं चाहिए।' इतना कहकर वह उठ खड़े हुए।

धीरे-धीरे स्टेशन जाने का वक्त हो आया। नीचे बरामदे में मोटर खड़ी थी। बिस्तरा, बैग इत्यादि एक दूसरी मोटर में रखा दिये। पास ही खड़े होकर साहब विप्रदास से बातचीत कर रहे थे। इसी समय वन्दना कपड़े पहन तैयार होकर पास आ खड़ी हुई और कहने लगी—'पिताजी, मैं भी तुम्हारे साथ जऊँगी।'

पिता ने आश्चर्यचकित होकर कहा—'इस धूप में स्टेशन जाने से क्या लाभ बिटिया?'

वन्दना ने कहा—'केवल स्टेशन तक ही नहीं, कलकत्ता चलूँगी, और जब बम्बई जाओगे तो मैं तुम्हारे ही सङ्ग चली जाऊँगी।'

विप्रदास ने विस्मित होकर कहा—'कहती क्या हो ? तुम कुछ दिनों तक रहोगी, यही तो मैं समझता था।'

वन्दना ने उत्तर में केवल 'ना' भर कहा।

'किन्तु तुमने अभी तक भोजन नहीं किया ?'

'नहीं, आवश्यकता नहीं, कलकत्ता पहुँचकर भोजन करूँगी।'

'तुम जा रही हो, तुम्हारी मझली दीदी को मालूम है न ?'

वन्दना ने कहा—'अच्छी तरह मालूम नहीं। मेरे चले जाने पर तो जान लेगी।'

विप्रदास ने कहा—'तुम्हारे बिना खाये ही इस प्रकार चले जाने से उसे बहुत क्लेश होगा।'

वन्दना ने कहा—'किस बात का क्लेश ? मुझे कुछ निमन्त्रण देकर तो बुलाया नहीं गया था कि मेरे बिना खाये चले जाने से उनका भोजन नष्ट हो जायगा। वह नासमझ नहीं है, समझ लेंगी।' यह कहकर बात वहीं समाप्त करते हुए वह जल्दी से गाड़ी में जाकर बैठ गई।

मन ही मन साहब ने समझ लिया कि कुछ हुआ है, नहीं तो अचानक बेबात ही कुछ कर बैठने वाली लड़की नहीं है। वह सिर्फ बोले—'मैं भी समझता था कि वह कुछ दिनों तक सती के पास रहेगी। लेकिन जब गाड़ी में आकर बैठ गई, तो उतरेगी नहीं।'

विप्रदास बोले नहीं, चुपचाप मोटर में जाकर बैठ गये।

गाड़ी चल पड़ी। अचानक ऊपर की तरफ दृष्टि जाते ही वन्दना ने देखा कि दोतल्ले के लाइब्रेरी वाले कमरे की खिड़की का छड़ थामकर द्विजदास चुपचाप खड़ा है। आँखें चार होते ही उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

सातवाँ परिच्छेद

गाँव से चलकर जब साहब स्टेशन पहुँचे तो मालूम हुआ कि कहीं किसी आकस्मिक दुर्घटना के कारण गाड़ी आज बहुत देर से आवेगी; शायद एक घंटे से अधिक लगेगी। परिचित स्टेशन मास्टर के एकाएक बीमार हो जाने के कारण एक मद्रासी कल से उनकी जगह पर काम कर रहा था, वह भी ठीक तौर से कुछ बतला नहीं सका, केवल इतना अन्दाज लगाया कि

देर एक घण्टे की भी हो सकती है और दो घण्टे की भी। साहब के मुँह की तरफ देखकर विप्रदास ने कहा—'कलकत्ता पहुँचने तक रात हो जायगी, आज गये बिना क्या काम चलेगा नहीं ?'

'क्यों नहीं चलेगा ? मुझे तो…।'

वन्दना बीच में बोल पड़ी—'नहीं पिता जी, ऐसा नहीं हो सकता ! एक बार घर से आकर अब वापस नहीं जाया जा सकता।'

विप्रदास विनम्र स्वर में बोला—'वापस क्यों नहीं जाया जा सकता, वन्दना ? तुम बिना भोजन किये ही चली आई हो, दिन भर उपवास करके ही बिता देना चाहती हो क्या ?'

वन्दना ने सिर हिलाकर कहा—'मुझे भूख नहीं है। वापस जाने पर भी मुझसे खाया न जा सकेगा।'

साहब मन ही मन दुःखी हुए। बोले—'इसकी शिक्षा-दीक्षा ही दूसरे ढङ्ग की हुई है। एक बार हठ करने से डिगाया नहीं जा सकता।'

विप्रदास मौन रहा, फिर कुछ कहा नहीं।

* * *

स्टेशन बड़ा न होने पर भी एक छोटा-सा वेटिंङ्ग रूम था। वहाँ पहुँचने पर दिखाई पड़ा कि एक कम उम्र के बङ्गाली साहब और उनकी स्त्री ने कमरे पर पहिले से ही कब्जा कर रखा है। साहब शायद बैरिस्टर हैं या डॉक्टर, या विलायत पास प्रोफेसर भी हो सकते हैं। इस इलाके में कहाँ से आये थे, यह भी एक रहस्य की बात है। आरामकुर्सी के दोनों सिरों पर दोनों पैरों को फैलाकर अर्द्धसुप्त दशा में लेटे हुए हैं। अचानक लोगों के आने से सिर्फ आँखें भर खोलीं—शिष्टता प्रदर्शित करने का प्रयत्न इससे अधिक अग्रसर नहीं हुआ। परन्तु महिला कुर्सी छोड़ शीघ्रता से उठ खड़ी हुई। शायद अभी तक मेमसाहिबा नहीं बन पाई थी। लेकिन ऊँची एड़ी वाले जूते और पोशाक की तड़क-भड़क देखकर जान पड़ता था कि इस दिशा में चेष्टा की कमी नहीं होने पाई।

कमरे में एक आरामकुर्सी और थी, वन्दना पिता को उस पर बैठाकर स्वयं एक बेंच पर कब्जा कर बैठी, और बहुत इज्जत से विप्रदास को बुलाकर बोली—'बहनोई जी, आप बेकार खड़े क्यों हैं, मेरे पास ही आकर

बैठिए। वृहत् काष्ठ में दोष नहीं है, आपकी जात चली न जायगी।'

यह सुनकर वन्दना के पिता जरा हँसकर बोले—'विप्रदास क्या छुआ-छूत, आचार-विचार बहुत अधिक मानते हैं?'

विप्रदास ने स्वयं भी हँसकर कहा—'आचार-विचार है, किन्तु क्या होने से बहुत अधिक होता है, यह बिना जाने इस सवाल का जवाब कैसे दूँ?'

वृद्ध ने कहा—'अभी जो वन्दना ने कहा—वही ले लो।'

विप्रदास ने कहा—'बिना भोजन किये बहुत क्रोध में है। स्त्रियाँ क्रोध में जो कुछ करती हैं, उस पर तर्क नहीं हो सकता।'

वन्दना ने कहा—'मैं क्रोध में नहीं हूँ, रत्ती भर भी क्रोध मुझे नहीं हुआ।'

विप्रदास ने कहा—'हो, और अत्यधिक क्रोध में हो। वर्ना आज कलकत्ते न जाकर तुम घर वापस चली जाती। इसके अलावा तुम्हें स्वयं ही याद पड़ जाती कि अभी-अभी हम एक ही गाड़ी में आये हैं। जात जानी थी इसलिए वह पहले ही चली गई। बेञ्च पर बैठने की बात केवल तुम्हारा बहाना ही है।'

वन्दना ने कहा—'बहाना है तो होने दीजिए, किन्तु सच बोलिए मुखोपाध्याय महाशय! हम लोगों को छूने-छाने की वजह से वापस जाकर फिर आपको नहाना तो न पड़ेगा?'

'चलिए न, अपनी आँखों से ही घर जाकर देख लेना।'

'नहीं। आप जानते हैं। माँ को प्रणाम करने गई तो वह छू जाने के भय से पीछे हट गई थीं!' इतना कहते हुए उसका मुँह गुस्से और शर्म से लाल हो गया।

यह विप्रदास ने देखा। उत्तर में शान्त भाव से बोला—'बात असत्य नहीं है। पर साथ ही सत्य भी नहीं है। इसका असली कारण उनके पास रहे बिना तुम समझ न पाओगी। लेकिन इसकी उम्मीद तो नहीं है।'

'हाँ, नहीं है।'

इस तीव्र अस्वीकृति का सबब इतनी देर के बाद विप्रदास के सामने स्पष्ट हो गया। मन ही मन उसके व्याकुलता की सीमा न रही।

..कुलता कई कारणों से हुई। विमाता के विषय में बात आंशिक रूप : सत्य ही है और वह स्वय भी मानो इससे कुछ-कुछ सम्बन्धित है। ..न्तु समझने का मौका भी नहीं है, और न समय ही है। दूसरी तरफ ..न्त चित्त से समझने की मनोवृत्ति का एकदम अभाव है। इसलिए चुप ..ने के अलावा कोई रास्ता नहीं था—विप्रदास बिल्कुल चुप रहा।

पैरों को नीचे करके साहब ने जँभाई लेते हुए पूछा—'आप ही ..दार विप्रदास बाबू हैं न ?'

'हाँ, मैं ही हूँ।'

'मैंने आपका नाम सुना है। पास वाले गाँव में मेरी पत्नी का ननिहाल .., बंगाल में जब आना ही हुआ तो उनका मन था कि एक बार भेंट ..रती जायँ। इसी कारण चला आया। मैं पंजाब मे प्रैक्टिस कर रहा हूँ।'

विप्रदास ने देखा कि यह आदमी उसी की उम्र का है, एक आध साल का हेर-फेर हो सकता है, इससे ज्यादा नहीं।

साहब बोलने लगे—'कल ही आपके विषय में बाते हो रही थीं। लोग कहते हैं कि बड़े भयङ्कर, यानी बहुत कड़े जमींदार हैं। हाँ, दो-चार ब्राह्मण-पण्डितों ने कट्टर हिन्दू होने के कारण बहुत प्रशंसा की। अब देखता हूँ कि बात असत्य नहीं है।'

अपरिचित की इस आलोचना से वन्दना और उसके पिता दोनों को आश्चर्य हुआ, परन्तु विप्रदास ने कोई जवाब नहीं दिया। शायद वह इतना उदास था कि ये बाते उसके कानों मे नहीं पहुँच पाई।

वह फिर कहने लगे—'अपने लेक्चरो मे अक्सर कहा करता हूँ कि रियल (वास्तविक) सोलिड (ठोस) शिक्षा चाहिए, धोकेबाजी, ठगी नहीं। आपको एक बार यूरोप घूम आना चाहिए। वहाँ की जलवायु, वहाँ की फ्री एयर (मुक्त वायु) मे साँस लिये बिना दिल मे फ्रीडम (स्वतन्त्रता) नहीं आती। बुरे संस्कारो से मन मुक्त नहीं हो सकता। मैं पूरे पाँच वर्ष तक उस मुल्क में रहा हूँ।'

वन्दना के पिता आखिरी बात से प्रसन्न होकर बोले—'यह बात सत्य है।' उत्साह पाकर वह जोश मे आकर बोले—'इस डेमोक्रेसी (जन- ... में सभी बराबर हैं, किसी से कोई छोटा नहीं, सभी को

अपने अधिकार को एसर्ट (माँग) करना चाहिए, कनसीक्वेंस (परिणाम) कुछ भी क्यों न हो। मेरे पास रुपये होते तो मैं आपकी रियासत की सारी प्रजा को अपने व्यय से यूरोप की यात्रा करा लाता। अपने राइट (हक) किसे कहते हैं, इस बात को तब वे स्वयं ही समझ जाते।'

शायद ये बातें वन्दना को बहुत बुरी लगीं, उसने धीरे-से कहा—'बहनोई जी अपनी प्रजा पर अत्याचार करते हैं, इसकी खबर आपको किसने दी? आशा करती हूँ आपके ममिया ससुर पर कोई अत्याचार नहीं हुआ है?'

'अच्छा, शायद वह आपके बहनोई हैं? थैंक्स (धन्यवाद) नहीं, उन्होंने कोई शिकायत नहीं की।' अपनी पत्नी को लक्ष्य करके सहास्य बोले—'यदि तुम्हारी बहनें इस तरह की होतीं! शायद आप विलायत हो आई हैं? नहीं गई हैं? जायें, अवश्य जायें, फ्रीडम (स्वतंत्रता) साहस, शक्ति, किसे कहते हैं, उस देश की युवतियाँ वास्तव में क्या हैं, एक बार अपनी आँखों से देख आयें। मैंने नेक्स्ट टाइम (अगली बार) इन्हें भी साथ ले जाना निश्चय किया है।'

किसी के कुछ बोलने के पूर्व ही स्टेशन के उस एवजी वाले स्टेशन मास्टर ने गर्दन उठाकर कहा कि ट्रेन डिस्टैण्ट सिगनल पार कर चुकी है, वह आ ही रही है। शीघ्रता से सभी प्लेटफार्म पर आ डटे।

ट्रेन खड़ी होने पर देखा गया कि छुट्टी की वजह से यात्रियों की असंख्य भीड़ है। कुछ भी जगह पाना मुश्किल है। फर्स्ट और सेकेण्ड क्लास के केवल एक-एक डब्बे हैं, सेकेण्ड क्लास पर पूरी तरह कब्जा करके अङ्गरेज रेलवे-सरवेण्टों का एक दल किसी खेल के लिए कलकत्ते जा रहा है, और शायद उन्हीं में से कई स्थान के अभाव के कारण फर्स्ट क्लास में जा घुसे हैं। शराब और विषय से चूर होने के कारण इनका चेहरा जैसा भयानक था, व्यवहार भी उतना ही उद्दण्ड। सभी ने डब्बे के फाटकों को रोककर जोरों से चिल्लाकर कहा—'गो—जाओ-जाओ, जगह नहीं है!'

स्टेशन मास्टर आया, गार्ड आया, उन लोगों ने किसी की बात की

साहब ने कहा—'क्या करना चाहिए ?'

डरते हुए वन्दना ने कहा—'चलिए, आज घर लौट चलें।'

विप्रदास ने कहा—'नहीं।'

'नहीं तो फिर ? नहीं तो रात की ट्रेन से···।'

नये साहब ने कहा—'इसके सिवा और रास्ता ही क्या है। कष्ट होगा, होने दो।'

विप्रदास सिर हिलाकर बोला—'नहीं ट्रेन में चार-पाँच आदमी हैं, चार-पाँच के लिए और जगह होनी चाहिए।'

वन्दना के पिता दुखी होकर बोले—'चाहिए तो यही, मैं भी यही समझता हूँ, परन्तु वे सभी मतवाले बने हैं।'

विप्रदास की सारी देह जैसे लोहे की तरह कड़ी हो गई। बोला—'शौक उनका ही है, हमारा नहीं। चलिए, मैं भी सङ्ग चलूँगा।' और पल भर में डब्बे के हेंडल को पकड़कर उसने फाटक ढकेल दिया। वन्दना का हाथ पकड़कर घसीटते हुए कहा—'आओ!' और नये साहब को पुकारकर कहा—राइट एसर्ट (अधिकार की माँग) करना चाहते हैं तो पत्नी को लेकर चढ़ आइए। अत्याचारी जमींदार के साथ रहते डर की बात नहीं।'

मतवाले साहब पल भर इस आदमी की तरफ देखकर चुपचाप उधर वाली बेञ्च पर जाकर बैठ गये।

आठवाँ परिच्छेद

बगल वाले डब्बे के सब साहब यात्री शोरगुल सुनकर प्लेटफार्म पर आ खड़े हुए और एक ही साथ रूखे स्वर मे सवाल किया—'ह्वाट्स मैटर ?' (मामला क्या है)। मतलब यह है कि साथियों के लिए वे बहादुरी दिखाने को तैयार हैं।

विप्रदास ने बगल मे खड़े हुए गार्ड को संकेत से पास बुलाकर कहा—'बहुत मुमकिन है कि ये सभी लोग फर्स्ट क्लास के यात्री नहीं हैं; तुम्हारी ड्यूटी है इन्हें हटा देना।'

वह बेचारा भी साहब ठहरा; परन्त बहुत ही काला साहब। इसलिए

ड्यूटी कुछ भी क्यों न हो, इधर-उधर झाँकने लगा। बहुत से लोग तमाशा देख रहे थे। वह मद्रासी एवजीवाला स्टेशन मास्टर भी वहीं था, हाथ के संकेत से उसे पास बुला पाँच रुपये का एक नोट देकर विप्रदास ने कहा—'मेरा नाम मेरे नौकर से पूछ लेना। अपने ऊपर वालों के पास एक तार भेज दो कि मतवाले फिरङ्गियों का यह दल जबरन फर्स्ट क्लास में घुसा है, उतरता नहीं। और यह सूचना भी उसे देना कि ट्रेन का गार्ड खड़ा-खड़ा तमाशा देखता रहा, लेकिन किसी तरह की सहायता नहीं की।'

गार्ड ने समझ लिया कि मेरे ऊपर खतरा आने वाला है। साहस करके कुछ पास आकर बोला—'देखते नहीं हो ये लोग बड़े आदमी हैं (डू यू सी दे आर बिग पिप्ल) तुम लोग रेलवे के नौकर हो, रेलवे के फ्री पास से जा रहे हो, होशियार (बी केयर फुल)।'

मतवालों के लिए भी यह बात उपेक्षणीय नहीं थी। इसलिए वे उतर कर बगल वाले कमरे मे चले गये, लेकिन मिजाज से नहीं। दबे स्वर में जो कुछ कह गये, उसे सुनकर आदमी शान्त नहीं रह सकता। जो कुछ हो पञ्जाब के बैरिस्टर साहब गार्ड को धन्यवाद देते हुए बोले—'आप न होते तो शायद हमारा जाना ही न होता।'

'नही नहीं, यह तो ड्यूटी है मेरी।'

ट्रेन के छुटने की घण्टी बजी। विप्रदास ने उतरने की तैयारी करते हुए कहा—'शायद अब मुझे साथ जाने की आवश्यकता नहीं है। वे अब कुछ करेंगे नहीं।'

बैरिस्टर साहब बोले—'अब कुछ नहीं होगा। नौकरी का भय जो है!' फाटक को रोककर खड़ी होकर वन्दना बोली—'नहीं, यह नही हो सकता, नौकरी का भय ही काफी गैरण्टी नहीं है, आपको साथ जाना ही होगा।'

विप्रदास ने हँसकर कहा—'पुरुष होती तो जान सकती कि इससे बढ़कर गैरण्टी संसार में दूसरी नहीं, परन्तु मैं तो कुछ खाकर आया नहीं।'

'खाकर तो मैं भी नही आई।'

'वह तो तुम्हारा शौक था। परन्तु थोड़ी देर के बाद होटल वाला स्टेशन आयेगा, इच्छा हो तो वहाँ खा लेना।'

वन्दना ने कहा—'ऐसी इच्छा नहीं है। मैं भी उपवास कर सकती हूँ।'

विप्रदास ने कहा—'करने में किसी पक्ष को लाभ नहीं—मैं उतरूँ।' बैरिस्टर साहब से बोले—'आप तो साथ हैं ही, जरा देखिएगा। अगर जरूरी हो तो ···।'

वन्दना ने कहा—'खतरे की जंजीर खींचकर ट्रेन रोक लेंगे? वह मैं भी कर सकती हूँ।' इतना कह खिड़की से मुँह निकालकर घर के नौकरों से बोली—'तुम लोग जाकर माँ से कह देना कि वह हमारे साथ जा रहे हैं। कल या परसों लौट आवेंगे।'

गाड़ी चल पड़ी।

पास आकर ही वन्दना बैठ गई, बोली—'अच्छा मुखोपाध्याय जी, आप तो कम हठी नहीं हैं?'

'क्यों?'

'आपने तो हमें जबरन ट्रेन पर चढ़ा दिया, लेकिन वे लोग तो मतवाले थे, अगर न उतरते और मार-पीट शुरू कर देते तो?'

विप्रदास ने कहा—'तो उनकी नौकरी चली जाती।'

वन्दना ने कहा—'परन्तु हमारा क्या जाता? शरीर की हड्डी पसलियाँ वे नौकरी से तुच्छ वस्तु नहीं हैं।'

विप्रदास और वन्दना दोनों हँसने लगे, दूसरी स्त्री ने भी थोड़ा-सा हँसकर मुँह फेर लिया। उसके पति पंजाब के नये बैरिस्टर का मुख गम्भीर हो गया।

अब तक वन्दना के पिता ने इधर खास ध्यान नहीं दिया था, आलोचना का अन्तिम भाग उनके कानों में जाते ही वह सँभलकर बैठते हुए बोले—'नहीं-नहीं, तमाशे की बात नहीं है, गाड़ी में इस प्रकार की घटनाओं की खबरें प्रायः अखबारों में निकलती रहती हैं। इसीलिए तो जोर-जबर्दस्ती की तनिक भी इच्छा मुझे नहीं थी, रात की ट्रेन से जाने से सभी प्रकार की सहूलियत रहती।'

[illegible]—'रात की ट्रेन में भी यदि मतवाले होते तो पिताजी?'

पिता ने कहा—'ऐसा क्या सचमुच ही होता है रे ? तब तो भले आदमियों को यात्रा करना बन्द कर देना पड़ेगा।' यह कहकर वह एक सिगार जलाने लगे।

धीरे-धीरे वन्दना ने कहा—'मुखोपाध्याय जी, भले आदमी की संज्ञा के बारे में पिता जी से बहस न कीजिएगा।'

हँसकर सिर हिलाते हुए विप्रदस ने कहा—'अच्छा। यह मैंने समझ लिया है।'

अच्छा मुखोपाध्याय जी, कभी बचपन मे (कलकत्ते के किले के मैदान में पहिले गोरो और हिन्दुस्तानियों मे प्रायः भिड़न्त होती रहती थी।) किले के मैदान मे क्या कभी गोरो से मारपीट की है ? सच बोलिएगा ?'

'नहीं, ऐसा सौभाग्य तो कभी हुआ नहीं।'

वन्दना ने कहा—'लोग कहते हैं, गाँव वालों के लिए आप टेटर (आतङ्क) हैं। सुना है कि घर के सभी लोग आपसे ऐसा भय खाते हैं जैसे शेर से। क्या यह सत्य है ?'

'लेकिन यह तुमने किससे सुना ?'

धीरे से वन्दना बोली—'मझली दीदी से।'

'वह कहती क्या हैं ?'

'कहती हैं, भय से लहू पानी हो जाता है।'

'कैसा पानी ? मतवाले साहबो को देखकर जैसे हमारा होता है, उसी तरह न ?'

वन्दना हँसी, सिर हिलाकर बोली—'हाँ, बहुत कुछ उसी तरह।'

विप्रदास ने कहा—'उसकी आवश्यकता नहीं है। नहीं तो स्त्रियों को नियन्त्रण में नहीं रखा जा सकता। तुम्हारी शादी हो जाने पर भाई साहब को यह विद्या सिखा आऊँगा।'

वन्दना ने कहा—'सिखा देना। लेकिन सभी विद्याएँ सभी पर नहीं चलतीं, यह भी याद रखना। मझली दीदी सदैव की नेक हैं, मै होती तो मुझसे डरकर सभी लोगों को चलना होता।'

विप्रदास ने कहा—'यानी डर से घर के सभी लोगों का खून पानी

।दर्श उपस्थित कर आई हो, उससे तो बात पर भरोसा करने का ही .न होता है। कम से कम माँ तो सरलता से भूल न सकेंगी।'

वन्दना मन ही मन जरा क्रोधित होकर बोली—'मालूम है आपकी माँ ने क्या किया? जब मैं प्रणाम करने गई तो वह पीछे हट गई!'

विप्रदास ने कुछ भी अचरज प्रकट नहीं किया। बोला—'मेरी माँ का इतना ही भर तुम देख सकी और कुछ देखने का अवसर तुम्हें नहीं मिला। मिलता तो देखती, इसके लिए क्रोध कर बिना खाये चले आने से बढ़कर दूसरी कोई गलती नहीं।'

'मनुष्य को आत्मसम्मान की धारणा कहाँ से मिली? स्कूल-कालेज की मोटी पुस्तकों को पढ़कर ही तो? परन्तु माँ तो अङ्गरेजी नहीं जानतीं, पुस्तकें भी नहीं पढ़ी हैं। उनके ज्ञान से तुम्हारा विचार कैसे मेल खा सकता है?'

वन्दना ने कहा—'परन्तु मैं तो केवल अपना ही विचार लेकर चल सकती हूँ।'

विप्रदास ने कहा—'चलने में अक्सर गलती हो जाया करती है, जैसी तुमने आज की है। विदेशों की पुस्तकों से जो कुछ सीखा है, उसी को एकदम सच मान लेने के कारण ही इस तरह चली आई, वर्ना न आ सकती। बिना कारण ही गुरुजनों का अनादर करने में हिचकिचाहट होती। आत्म-मर्यादा और आत्म-अभिमान में अन्तर जानती?'

वन्दना अन्तर भले ही न समझे, लेकिन इतना समझ गई कि उसके आज के व्यवहार से विप्रदास के हृदय को चोट लगी है। अपने लिए नहीं माँ के अनादर के लिए।

वन्दना ने पूछा—'माँ की तरह आप भी अन्धविश्वासी हिन्दू हैं न?'

विप्रदास ने कहा—'हाँ।'

'उसी प्रकार छुआ-छूत का विचार करके चलते हैं?'

'हाँ, चलता तो हूँ।'

'प्रणाम करने के लिए जाने पर उन्हीं की तरह पीछे हट जाते हैं?'

'हट जाता हूँ। समय-असमय का विचार कर चलना पड़ता है। ...दीदी से ही पूछ लेना। परिवार का नियम उन्हें भी

कर चलना पड़ता है।'

वन्दना ने कहा—यानी शेर से बिना डरे कोई भी नहीं रह सकता।

विप्रदास ने हँसकर कहा—'नहीं रह सकता। जिस प्रकार दिन की गाड़ी में शेर के डर से आदमी को रात की गाड़ी से जाना पड़ता है—वह जीवन-धर्म का प्राकृतिक नियम है।'

वन्दना ने कहा—'दीदी नारी हैं, सहज ही दुर्बल हैं, उन पर सभी नियम लगाये जा सकते हैं। परन्तु सुना है, द्विजू बाबू भी तो परिवार के नियम मानकर नहीं चलते, इस विषय में शेर साहब की क्या सलाह है?'

वन्दना ने चुभने के लिए ही प्रश्न किया था। और उसके चुभने की आशा ही उसने की थी, परन्तु विप्रदास के मुख पर उसका कोई निशान नहीं दिखाई पड़ा। उसी प्रकार हँसकर कहा—'इन गूढ़ तथ्यों को अधिकारी व्यक्ति के अतिरिक्त दूसरों के सामने प्रकट करना मना है।'

विप्रदास ने सिर हिलाकर कहा—'वक्त आने पर जानेगा! वह जानता है कि खून-मास में शेर पक्षपात नहीं करता।'

पल भर के लिए वन्दना का मुख सूख गया।' इसके पश्चात् वह क्या प्रश्न करे, यह उसकी अक्ल में नहीं आया।

यह परिवर्तन विप्रदास की तेज निगाह से नहीं बचा। पिता ने बुलाया—'बिटिया, मुझे थोड़ा सा जल तो देना।'

वन्दना ने उठकर सुराही से जल दिया और फिर बैठ गई। फिर द्विजदास की चर्चा करने में उसे डर लगा। दूसरा प्रसङ्ग छेड़ते हुए बोली—'मझली दीदी की सास के लिए नहीं, परन्तु मेरे न खाकर आने से यदि मझली दीदी को दुःख हुआ है, तो मुझे भी दुःख होगा। मैं यही बात विचार रही हूँ।'

विप्रदास ने कहा—'मझली दीदी को कष्ट होगा, यही बड़ी बात हो गई, और मेरी माँ लज्जित होंगी, दुःख अनुभव करेंगी, यह तुच्छ बात हो गई! इसका अर्थ यह है कि आदमी असली बात जानने पर कैसी उल्टी चिन्ता करने लगता है।'

वन्दना ने कहा—'इसको उल्टी चिन्ता क्यों कहते हैं? वरन् यही तो प्राकृतिक है।'

विप्रदास मौन रहा। उसके उदास मुख पर वन्दना की दृष्टि पड़ी।

बाहर अँधेरा बढ़ता जा रहा था। कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था, फिर भी खिड़की के बाहर देखती हुई वन्दना बहुत देर तक मौन रही। दूसरे दिन गाड़ी इस समय हावड़ा पहुँच जाती है, लेकिन आज अभी दो तीन घण्टे की देर है। उसने मुख फेरकर देखा कि विप्रदास जेब से एक छोटी सी नोट-बुक निकालकर कुछ लिख रहा है। पूछा—'अच्छा मुखोपाध्याय जी, एक बात का उत्तर देंगे?'

'कौन सी बात का?'

'आप कह रहे थे कि हमारा आत्मसम्मान-बोध केवल स्कूल-कालेज की पुस्तकों मे पढ़ी हुई धारणा है। लेकिन आपकी माँ ने तो स्कूल-कालेज मे नहीं पढ़ा है, उनकी धारणा कहाँ की सीखी हुई है?'

विप्रदास को आश्चर्य हुआ, लेकिन कुछ बोला नहीं।

वन्दना ने कहा—'उनके सम्बन्ध का कौतूहल मैं दिल से दूर कर नहीं पा रही हूँ। वह गुरुजन हैं, मै इनकार नहीं करती, लेकिन दुनिया में क्या यही सबसे बड़ी बात है?'

विप्रदास चुप ही बैठा रहा।

वन्दना बोलती गई—'आज हम उनके घर में बिना बुलाये अतिथि थे, ये तो मेरी पुस्तकों मे पढ़ी विदेशी शिक्षा नहीं है?'

'फिर भी बातें कुछ भी नहीं हैं—केवल आयु मे छोटी होने के कारण ही क्या मेरे अपमान का आप लोग तिरस्कार करेंगे?'

फिर भी विप्रदास कुछ बोला नहीं—उसी तरह चुप रहा।

वन्दना ने कहा—'फिर भी मैं उनसे माफी माँग रही हूँ जिससे मेरे व्यवहार के लिए दीदी को दुःख न हो।' जरा थमकर बोली—'मेरे माँ-बाप विलायत गये थे, इसीलिए उनके मेम साहब होने के अलावा उन्हें वह और कुछ सोच नहीं सकती। सुना है इसके लिए आज भी मझली दीदी के तिरस्कार की समाप्ति नहीं हुई। उनके विचार से मेरा विचार नहीं मिलेगा, फिर भी उनसे कह दीजिएगा, मैं जो कुछ होऊँ तिरस्कार के अतिरिक्त कुछ नहीं है। दीदी की सास के करने पर भी नहीं।' यह कहते-कहते उसकी आँखों के कोनों मे जल दीख पड़ने लगा।

विप्रदास ने कहा—'किन्तु उन्होंने तो तुम्हारा तिरस्कार किया नहीं ?'

वन्दना तीव्र कण्ठ से बोली—'अवश्य किया है।'

विप्रदास ने फौरन उत्तर नहीं दिया, पल भर मौन रहकर बोला—'नहीं, माँ ने तुम्हारा तिरस्कार नहीं किया। लेकिन खुद उनके अलावा दूसरा कोई तुम्हे यह बात समझा नहीं सकेगा। तर्क करके नहीं, उनसे ही इस बात को समझ लेना होगा।'

वन्दना खिड़की के बाहर देखती रही।

विप्रदास ने कहा—'एक रोज पिता जी से माँ का झगड़ा हो गया। बात छोटी-सी थी, लेकिन हो गई बहुत बड़ी। तुम्हें कुल बातें नहीं बताई जा सकतीं, किन्तु उस दिन जान सका था कि लिखना-पढ़ना न जानने वाली इस माँ का आत्म-मर्यादा-बोध कितना गहरा है।'

एकाएक वन्दना ने मुख फेर कर देखा कि असीम मातृ-गर्व से विप्रदास का चेहरा मानो चमक उठा है। किन्तु वह कुछ बोली नहीं और खिड़की से बाहर की तरफ देखती रही।

विप्रदास बोलता गया—'बहुत दिनों के पश्चात् किसी बात के सिलसिले में एक दिन माँ से इसी बात को पूछा था—माँ, इतना आत्म-मर्यादा-बोध तमने कहाँ पाया ?'

वन्दना ने बिना मुख फेरे ही कहा—'वह क्या बोलीं ?'

विप्रदास ने कहा—'शायद ज्ञात हो कि मै माँ का अपना बेटा नहीं हूँ। उनकी अपनी दो सन्तानें हैं—द्विजू और कल्याणी।' माँ बोलीं—'तुम तीनों जनों को जिन्होंने एक ही बिछावन पर पालन-पोषण करने का भार दिया था, उन्होंने यह विद्या मुझे प्रदान की थी, और किसी दूसरे ने नहीं। उसी दिन से जानता हूँ माँ के इस गहरे आत्मसम्मान-बोध ने एक दिन के लिए भी किसी को यह जानने नहीं दिया कि वह मेरी माता नहीं, विमाता हैं। समझ सकती हो इसका मतलब ?'

पल भर मौन रहकर वह फिर कहने लगा—'प्रणाम के उत्तर में किसने कितना हाथ ऊँचा किया, कितना पीछे हट कर खड़ा हो गया, नमस्कार के प्रतिनमस्कार में किसने कितना सिर झुकाया, इसको लेकर मर्यादा की लड़ाई सभी मुल्कों में है।'

'अहङ्कार के नशे की मात्रा तुम्हारी पढ़ने की किताबों के पन्ने-पन्ने में मिलेगी, किन्तु माँ न होकर भी दूसरे के लड़के की माँ होकर जिस दिन माँ ने हमारे विशाल कुटुम्ब में प्रवेश किया, उस दिन आश्रित आत्मीय-परिजनों के कण्ठ की जहर की थैली मानो छलक उठी थी। किन्तु जिस चीज से उन्होंने सारे जहर को अमृत बना दिया, वह घर की मालकिन का अभिमान नहीं था, वह गृहिणीपन का आतङ्क नहीं था, वह था माँ की मर्यादा। वह इतनी ऊँची है कि उसे कोई लाँघ नहीं सका। लेकिन यह तत्व है केवल हमारे ही देश में। विदेशियों को इसका पता नहीं, वे अखबार की खबरें देखकर इन्हें दासी कहते हैं, अन्तःपुर की जञ्जीरों से जकड़ी बाँदी कहते हैं। सम्भवतः बाहर से ऐसा ही जान पड़ता है—दोष उन्हें नहीं देता, किन्तु घर के दास-दासी की सेवा के नीचे अगर अन्नपूर्णा की राज्येश्वरी मूर्ति उन्हें नहीं दिखाई देती तो क्या तुम्हें भी नहीं दिखाई देगी?'

वन्दना एकटक विप्रदास के मुख की तरफ देखती रही। बैरिस्टर साहब अचानक ऊँचे कण्ठ मे बोल उठे—'गाड़ी ने इतनी देर के बाद हावड़ा प्लेटफार्म मे 'इन' किया शायद वन्दना के पिता अलसा गये थे, आश्चर्य से देखकर बोले—'दुर्दशा से मुक्ति मिली।'

वन्दना ने धीमी आवाज मे कहा—'मुझे कलकत्ते मे उतरना तनिक भी अच्छा नहीं लग रहा है मुखोपाध्याय जी। मन होता है आपकी माँ के पास लौट जाऊँ। जाकर कहूँ—माँ, मैंने अच्छा नहीं किया, मुझे क्षमा करो।

विप्रदास केवल हँसा, बोला कुछ नहीं।

स्टेशन पर उतर कर उसने पूछा—'कहाँ जायंगे आप?'

राय साहब ने कहा—'मैं तो बराबर ग्रैण्ड होटल में ही ठहरा करता हूँ, उन्हे तार भी दे दिया है—वहीं जाऊँगा।'

इस आदमी के सामने ग्रैण्ड होटल की बात से वन्दना को शर्म लगी।

गाड़ी लेट होने के कारण पञ्जाब के बैरिस्टर साहब अत्यधिक ... प्रकट करते हुए बार-बार कहने लगे कि उन्हे बेंगाल-नागपुर लाइन ... होगा, इसलिए वेटिंग रूम के अलावा आज कोई चारा नहीं।

विप्रदास चुपचाप खड़ा हुआ था, राय साहब स्वयं भी कुछ लज्जित होकर बोले—'लेकिन विप्रदास, तुम···तुम···भी शायद हमारे साथ···।'

'ग्रैण्ड होटल में ?' कहकर विप्रदास हँस पड़ा, बोला—'मेरे लिए फिक्र न करें। बहूबाजार में द्विजू का एक घर है, प्रायः आना पड़ता है, ...र वगैरह सभी हैं—अच्छा, आज वहीं क्यों न चला जाय ?'

वन्दना खुश होकर बोली—'चलिए, सभी वहीं चलें।' उसके सिर ... मानो एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया। खुशी के कारण उसने अन्य ...नों सहयात्रियों से भी चलने का अनुरोध किया और सभी मोटर में ...कर बैठ गये।

नवाँ परिच्छेद

सवेरे उठकर वन्दना ने देखा कि इस घर के सम्बन्ध में उसका विचार ...क नहीं था। उसने समझा था कि पुरुषों के रहने का घर है, शायद ...र के कोने-कोने में कूड़ा-करकट, सीढ़ी पर थूक, पान की पीक के निशान, ...टूटी चीजें, मैले बिछावन, कमरों में गर्द, मकड़ी के जाले—इसी ...कार की अस्तव्यस्ता का दृश्य देखने को मिलेगा। कल रात को धीमे ...श और थोड़े समय में कुछ देखने का अवसर नहीं मिला, लेकिन ...स घर की तरतीब और सफाई देखकर सचमुच ही उसे आश्चर्य हुआ। ...ी बड़ा घर है, बहुत से कमरे और बरामदे हैं, सभी सफाई से चमक ...हे हैं।

द्वार के बाहर एक विधवा खड़ी है, जो देखने में भले घर की महिलाओं ...ी तरह लगती है। गले में आँचल लपेटकर प्रणाम करते ही वन्दना ...कोच से अस्थिर हो उठी।

उसने कहा—'दीदी, आप ही के लिए खड़ी हूँ, चलिए, गुसलखाना ...ता दूँ। मैं इस घर की सेविका हूँ।'

वन्दना ने पूछा—'पिता जी उठ गये ?'

'नहीं, कल सोने में देरी हुई थी, शायद उठने में देर लगेगी।'

'और जो दो जने हमारे साथ आये हैं ?'

'तुम्हारे बड़े बाबू ? क्या वह भी सो रहे हैं ?'

दासी ने हँसकर कहा—'नहीं, वह गङ्गास्नान, पूजा-पाठ समाप्त कर कचहरी के कमरे में गये हैं।'

'सूचना दूँ क्या ?'

वन्दना ने कहा—'नहीं, उनकी आवश्यकता नहीं।'

गुसलखाना थोड़ी दूर पर था, एक छोटे बरामदे को पार करके जाना पड़ता था। वन्दना ने जाते हुए कहा—'तुम्हारे यहाँ बाथ रूम, सोने के कमरे के पास क्या नहीं हो सकता ?'

महरी ने कहा—'नहीं। क्योंकि माँ बीच-बीच में काली के दर्शन के लिए कलकत्ता आने पर इसी घर मे ठहरती हैं। इसलिए ऐसा हो नहीं सकता।'

वन्दना ने मन ही मन कहा—'यहाँ भी वही प्रबल-प्रतापी माँ! आचार-अनाचार पर कठोर अनुशासन।' वह वापस जाकर कपड़े लत्ते ले आई, बोली—'यदि यहाँ दो-चार दिन रहना पड़ा तो तुम्हें क्या कहकर पुकारूँगी ? शायद यहाँ तुम्हारे अलावा और कोई सेविका नहीं है ?'

वह बोली—'है, परन्तु वह काम मे जुटी रहती है। ऊपर आने की फुर्सत उसे नहीं मिलती। जिस वस्तु की आवश्यकता हो मुझे ही हुक्म दें दीदी, मेरा नाम है अन्नदा। किन्तु गाँव की हूँ, शायद बहुत कुछ दोष-त्रुटि हो।'

उसके विनय-वाक्यों से वन्दना ने मन ही मन प्रसन्न होकर पूछा—'अन्नदा, तुम्हारा घर है कहाँ ? और कौन-कौन है तुम्हारा ?'

अन्नदा ने कहा—'इन्हीं के गाँव—बलराम मे ही मेरा घर है। एक बेटा है; उसे इन्हीं लोगो ने लिखा-पढ़ा कर काम दिया है, बहू के साथ वह घर पर ही रहता है। अच्छी तरह है दीदी।'

वन्दना ने कौतूहलवश प्रश्न किया—'तब तुम खुद भी क्यों नौकरी करती हो, बहू-बेटे के साथ घर पर ही क्यों नहीं रहती ?'

अन्नदा ने कहा—'इच्छा तो होती है दीदी, पर होता नहीं। दुःख के दिनों में बाबू लोगों को जबान दी थी कि अगर मेरा अपना लड़का आदमी [illegible] तो दूसरे के लड़को को आदमी बनाने का भार अपने ऊपर लूँगी।

विप्रदास चुपचाप खड़ा हुआ था, राय साहब स्वयं भी कुछ लज्जित होकर बोले—'लेकिन विप्रदास, तुम···तुम···भी शायद हमारे साथ···।'

'ग्रैण्ड होटल में?' कहकर विप्रदास हँस पड़ा, बोला—'मेरे लिए फ़िक्र न करें। बहूबाजार में द्विजू का एक घर है, प्रायः आना पड़ता है, लोग वगैरह सभी हैं—अच्छा, आज वहीं क्यों न चला जाय?'

वन्दना खुश होकर बोली—'चलिए, सभी वहीं चलें।' उसके सिर से मानो एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया। खुशी के कारण उसने अन्य दोनों सहयात्रियों से भी चलने का अनुरोध किया और सभी मोटर में जाकर बैठ गये।

नवाँ परिच्छेद

सवेरे उठकर वन्दना ने देखा कि इस घर के सम्बन्ध में उसका विचार ठीक नहीं था। उसने समझा था कि पुरुषों के रहने का घर है, शायद घर के कोने-कोने में कूड़ा-करकट, सीढ़ी पर थूक, पान की पीक के निशान, टूटी-फूटी चीजें, मैले बिछावन, कमरों में गर्द, मकड़ी के जाले—इसी प्रकार की अस्तव्यस्तता का दृश्य देखने को मिलेगा। कल रात को धीमे प्रकाश और थोड़े समय में कुछ देखने का अवसर नहीं मिला, लेकिन इस घर की तरतीब और सफाई देखकर सचमुच ही उसे आश्चर्य हुआ। काफ़ी बड़ा घर है, बहुत से कमरे और बरामदे हैं, सभी सफाई से चमक रहे हैं।

द्वार के बाहर एक विधवा खड़ी है, जो देखने में भले घर की महिलाओं की तरह लगती है। गले में आँचल लपेटकर प्रणाम करते ही वन्दना संकोच से अस्थिर हो उठी।

उसने कहा—'दीदी, आप ही के लिए खड़ी हूँ, चलिए, गुसलखाना दिखा दूँ। मैं इस घर की सेविका हूँ।'

वन्दना ने पूछा—'पिता जी उठ गये?'

'नहीं, कल सोने में देरी हुई थी, शायद उठने में देर लगेगी।'

'और जो दो जने हमारे साथ आये हैं?'

'नहीं, वे भी उठे नहीं हैं।'

'तुम्हारे बड़े बाबू ? क्या वह भी सो रहे हैं ?'

दासी ने हँसकर कहा—'नहीं, वह गङ्गास्नान, पूजा-पाठ समाप्त कर कचहरी के कमरे में गये हैं।'

'सूचना दूँ क्या ?'

वन्दना ने कहा—'नहीं, उनकी आवश्यकता नहीं।'

गुसलखाना थोड़ी दूर पर था, एक छोटे बरामदे को पार करके जाना पड़ता था। वन्दना ने जाते हुए कहा—'तुम्हारे यहाँ बाथ रूम, सोने के कमरे के पास क्या नहीं हो सकता ?'

महरी ने कहा—'नहीं। क्योकि माँ बीच-बीच में काली के दर्शन के लिए कलकत्ता आने पर इसी घर में ठहरती हैं। इसलिए ऐसा हो नहीं सकता।'

वन्दना ने मन ही मन कहा—'यहाँ भी वही प्रबल-प्रतापी माँ! आचार-अनाचार पर कठोर अनुशासन।' वह वापस जाकर कपड़े लत्ते ले आई, बोली—'यदि यहाँ दो-चार दिन रहना पड़ा तो तुम्हें क्या कहकर पुकारूँगी ? शायद यहाँ तुम्हारे अलावा और कोई सेविका नहीं है ?'

वह बोली—'है, परन्तु वह काम में जुटी रहती है। ऊपर आने की फुर्सत उसे नहीं मिलती। जिस वस्तु की आवश्यकता हो मुझे ही हुक्म दें दीदी, मेरा नाम है अन्नदा। किन्तु गाँव की हूँ, शायद बहुत कुछ दोष-त्रुटि हो।'

उसके विनय-वाक्यों से वन्दना ने मन ही मन प्रसन्न होकर पूछा—'अन्नदा, तुम्हारा घर है कहाँ ? और कौन-कौन है तुम्हारा ?'

अन्नदा ने कहा—'इन्हीं के गाँव— बलराम मे ही मेरा घर है। एक बेटा है; उसे इन्हीं लोगों ने लिखा-पढ़ा कर काम दिया है, बहू के साथ वह घर पर ही रहता है। अच्छी तरह है दीदी।'

वन्दना ने कौतूहलवश प्रश्न किया—'तब तुम खुद भी क्यों नौकरी करती हो, बहू-बेटे के साथ घर पर ही क्यो नहीं रहती ?'

अन्नदा ने कहा—'इच्छा तो होती है दीदी, पर होता नही। दुःख के दिनों में बाबू लोगो को जबान दी थी कि अगर मेरा अपना लड़का आदमी बन गया तो दूसरे के लड़कों को आदमी बनाने का भार अपने ऊपर लूँगी।

उस बोझ को सिर से नहीं उतार सकी हूँ। गाँव के बहुत से लड़के यहाँ पढ़ते हैं। मेरे अलावा उनका देख-भाल करने वाला कोई है नहीं।'

'क्या वे इसी घर में रहते हैं?'

'हाँ, इसी घर मे रहकर कालेज में पढ़ते हैं। किन्तु आपको देरी होती जा रही है, मैं बाहर ही हूँ। पुकारते ही आ जाऊँगी।'

वन्दना ने गुसलखाने में जाकर देखा कि भीतर तरह-तरह का इन्तजाम है। लगे हुए तीन कमरे हैं, स्पर्श-दोष बचाने के लिए जितने प्रकार के विचार आदमी के दिमाग मे आ सकते हैं, उनकी कोई कमी नहीं की गई। वह समझ गई कि यह सब माँ के लिए है। पत्थर का फर्श, पत्थर ही की जल-चौकी, एक तरफ तीन-एक ताँबे के—बड़े-बड़े हण्डे हैं, शायद गङ्गाजल रखने के लिए नित्य माँजने के कारण चमक रहे हैं—वह कब आई थीं और फिर कब आयेंगी, इसे कोई जानता नहीं। फिर भी अवहेलना का लेशमात्र कहीं देखने को नही मिलता। ऐसी ठीक व्यवस्था है जैसे यहीं रह रही हैं। यह सब आदेश और शासन से ही नहीं होता, इससे भी बडी कोई वस्तु नियन्त्रित कर रही है इसका अनुभव वन्दना ने चारों ओर दृष्टि डालते ही कर लिया। और यह माँ नाम की नारी इस कुटुम्ब मे हर एक की दृष्टि मे कितनी ऊँची हैं, इस बात को वह चुप खड़ी अपने दिल मे बहुत देर तक सोचती रही। कहानी-निबन्ध पुस्तकों में भारतीय नारी जाति के अनेक दुःखों की कहानी उसने पढ़ी है, उनकी हीनता से नारी होने के नाते उसे मानसिक कष्ट हुआ है—यह असत्य भी नहीं है। इस घर में अकेले खड़े होकर उन सबको सच मान लेने में उसे झिझक हुई।

बाहर निकल आने पर अन्नदा ने हँस कर कहा—'दीदी, बहुत देर हो गई, लगभग दो घण्टे, वे सभी लोग खाने के कमरे में प्रतीक्षा कर रहे हैं। चलो न।'

'तुम्हारे बड़े बाबू कचहरी-घर से आये?'

'हाँ, नीचे ही हैं वह भी।'

'सम्भवतः हमारे साथ खायेंगे नहीं?'

अन्नदा ने हँसकर कहा—'खायेंगे भी तो दोपहर ही के बाद। लेकिन आज तो वह भी नहीं। एकादशी है, शायद सन्ध्या के बाद कुछ फल

भूल खायें।'

वन्दना न जाने कैसे समझ गई थी कि इस घर में यह स्त्री दासी नहीं है। बोली—'वह तो ब्राह्मण घर की विधवा नहीं हैं, एकादशी को किस लिए उपवास करेंगे? कल ट्रेन में एकादशी न सही, दशमी का उपवास तो इसी प्रकार हो गया।'

अन्नदा ने कहा—'होने दो, उपवास से उन्हें तकलीफ नहीं होती। माँ कहती हैं कि पिछले जन्म में तपस्या करके विपिन ने इस जन्म में उपवास सिद्धि का वर पा लिया है। उसका खाना देखकर चुप हो जाना पड़ता है। नीचे आकर वन्दना ने देखा कि उनके नित्य की चाय, रोटी, अण्डे इत्यादि से मेज सजी है, और पिता तथा स्त्री सहित पञ्जाब के बैरिस्टर भूख से बेचैन हो रहे हैं। उनका सब्र अपनी आखिरी मञ्जिल पर पहुँच गया है, पल भर में अखबार फेंक कर शिकायत करते हुए साहब ने कहा—'इतनी देर बिटिया, अब तो देखता हूँ सवेरे कोई काम हो नहीं सकेगा।'

विप्रदास ज्यादा दूर नहीं बैठा था, वन्दना ने पूछा—'मुखोपाध्याय जी, आप खायेंगे नहीं?'

विप्रदास बात जान गया, हँसकर कहा—'चाय मैं पीता नहीं, खाता हूँ केवल दाल-भात, इसका वक्त यह नहीं है—मेरे लिए फिक्र न करो, तुम बैठो।'

इसका उत्तर वन्दना ने नहीं दिया, पिता और दोनों अतिथियों को संकेत करके कहा—'मुझसे अपराध हो गया है। कहलवा भेजना चाहिए था, मेरा खाने का मन नहीं है, अब आप लोग देर न करें—आरम्भ कर दें। मैं आप लोगों के लिए चाय बनाती हूँ।' इतना कह कर वह उसी दम काम में जुट गई।

सभी चिन्ता में पड़ गये। नौकर एक तरफ खड़ा था वह सहम गया, पिता ने बेचैन होकर पूछा—'बिटिया बीमार तो नहीं हो गई?' बैरिस्टर साहब के दिमाग में नहीं आया कि क्या बोलें।

वन्दना ने चाय बनाते हुए कहा—'नहीं पिता जी, तबीअत खराब नहीं है, केवल खाने का मन नहीं हो रहा है।'

'तो जरूरत क्या है। कल रात का देर से खाया भोजन शायद हजम नहीं हुआ, इसके अलावा दिन में भूख के समय भोजन जो नहीं किया।'

'यही हो सकता है। दोपहर को मुखोपाध्याय जी के साथ बैठकर दाल-भात खाऊँगी, इस घर में शायद वह हजम कर सकूँगी।' किसी दूसरे ने इस बात पर वैसा गौर नहीं किया, लेकिन विप्रदास के चेहरे को पल भर के लिए जैसे काली छाया पार करती हुई दौड़ गई।

न जाने क्या सोचकर अचानक नौकर बोल उठा—'आज एकादशी है, सन्ध्या को दो-चार फल-मूल के अलावा वह तो और कुछ खाते नहीं।'

अभी-अभी इस बात को वन्दना सुन आई थी, फिर भी अचरज का भाव बनाकर बोली—'केवल फल-मूल! अच्छा हल्का खाना है। यही शायदा सबसे अच्छा होगा। ठीक है न मुखोपाध्याय जी?'

हँसकर विप्रदास ने सिर हिलाया तो, लेकिन कोई बिना सङ्कोच के उनका मजाक उड़ा सकता है, आज पहली बार इस बात को जानकर वह मन ही मन चुप रह गये, और उसके मुख की तरफ देखकर कदाचित् वन्दना ने भी इसका अनुभव किया।

काम से फुर्सत पाकर जब वन्दना पिता के साथ घर लौट आई, तब दोपहरी ढल चुकी थी। सपत्नीक बैरिस्टर साहब अजायबघर, चिड़ियाखाना, किले का मैदान, विक्टोरिया मेमोरियल वगैरह कलकत्ते के प्रधान दर्शनीय स्थानों को देखकर तब भी नहीं लौटे थे। रात की ट्रेन से उनका जाने का इरादा है, परन्तु कार्यक्रम बदल कर अभी जाना उन्होंने रोक दिया है।

कपड़ा बदलने के लिए राय साहब अपने कमरे में चले गये। अपने कमरे के सामने वन्दना की अन्नदा से भेंट हो गई, वह हँसकर शिकायत के स्वर मे बोली—'दीदी, सारा दिन तो उपवास ही मे बीत गया, आपका फल-मूल मँगा रखा है, जल्दी से मुँह-हाथ धो डालो, तब तक मैं सब तैयार कर दूँ। ठीक है न?'

'किन्तु बड़े बाबू—मुखोपाध्याय जी? कहाँ है वह?'

अन्नदा ने कहा—'उनकी फिक्र न करें दीदी, उनके लिए तो नित्य की बात है। खाने से न खाना ही उनका दस्तूर है।'

'लेकिन वह हैं कहाँ?'

'दक्षिणेश्वर काली का दर्शन करने गये हैं। अभी आ जायँगे।'

वन्दना ने कहा—'वही ठीक रहेगा, आ जाने दो। किन्तु और सब लोग? उनके लिए क्या इन्तजाम हुआ? चलो तो अन्नदा, तुम्हारा रसोईघर तो देख लूँ।'

अन्नदा ने कहा—'चलिए, किन्तु इस समय उन लोगों का इन्तजाम तो रसोईघर में नहीं हुआ दीदी, वह तो होटल में हुआ है, भोजन वहीं से आवेगा।'

वन्दना हक्का-बक्का-सी रह गई—'यह क्या बात है? यह राय तुम लोगों को किसने दी है?'

'बड़े बाबू स्वयं आदेश दे गये हैं।'

'किन्तु यह अखाद्य-कुखाद्य ये लोग खायेंगे यहाँ? क्या इसी घर मे? तुम्हारी माँ सुनेंगी तो क्या कहेंगी?'

लज्जित होकर अन्नदा बोली—'नहीं, बात उनके कानों तक नहीं पहुँचेगी। नीचे के एक कमरे में इन्तजाम कर दिया है। होटलवाला अभी बर्तन ले आयेगा, किसी तरह की दिक्कत न होगी।'

वन्दना ने कहा—'आदेश तो दे गये; लेकिन आज्ञा-पालन किसने किया? उनके पास मुझे जरा पहुँचा सकती हो?'

'कौन सी बड़ी बात है यह दीदी, चलिए पहुँचा दूँ।'

'चलो।'

मुखोपाध्याय घराने का कलकत्ते मे बड़ा कारोबार है। नीचे के तल्ले में चार कमरो में दफ्तर है। मुनीम, गुमाश्ते, मुन्शी, प्यादे, मैनेजर इत्यादि व्यापार सम्बन्धी कार्य करते हैं। वन्दना के पहुँचते ही सभी उठकर खड़े हो गये। आयु और ओहदे के ढङ्ग से मैनेजर नामक व्यक्ति को उसने सरलता ही से पहचान कर उसे बाहर बुलाकर कहा—'होटल में आर्डर क्या आप स्वयं दे आये थे?'

मैनेजर के सिर हिलाकर स्वीकार करने पर वन्दना ने कहा—'अब एक बार जाकर उन्हें मना कर आइए।'

मैनेजर को ताज्जुब हुआ, इधर-उधर करके कहा—'बड़े बाबू के वापस न आने तक···।'

वन्दना ने कहा—'शायद तब मना करने के लिए वक्त न रहेगा। मुखोपाध्यायजी नाराज होंगे तो मुझ पर होंगे। आपको भय नहीं। जाइए, देरी न कीजिए।' इतना कहकर वह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही लौटने लगी। मैनेजर ने सोचा, क्या यह बुरा न होगा? विप्रदास के आदेश की अवहेलना करना असम्भव भी कह सकते हैं। लेकिन इस अपरिचित लड़की के बेधड़क और सोच-समझ कर दिये गये आदेश का पालन न करना लगभग उतना ही असम्भव है। कुछ देर वह सोचता रहा। फिर कहा—तो जाकर मना कर आऊँ, कुछ पेशगी दे दिया था।

'आप जायँ, देर न करें। इतना कहकर वह लौट पड़ी।

सन्ध्या के बाद लौटकर विप्रदास ने कुल बातें सुनीं। प्रसन्न हो या अप्रसन्न, एकाएक उसकी समझ में आया नहीं। रसोई-घर में पहुँच कर देखा, तैयारी लगभग पूरी हो चली है। वन्दना एक छोटे स्टूल पर बैठी रसोइए से उलझी है। विप्रदास को देखकर उठ खड़ी हुई और दिखावटी विनय के स्वर में बोली—क्रोध में मैनेजर बाबू को कहीं नौकरी से अलग तो नहीं कर आये मुखोपाध्याय जी?'

विप्रदास बोला—'मुखोपाध्याय जी बदमिजाज हैं, यह खबर तुम्हें किससे मिली?'

वन्दना ने कह—'कहावत है, बाघ की गन्ध, एक कोस दूर से ही आने लगती है।'

विप्रदास हँसकर बोला—'लेकिन अतिथियों के लिए क्या होगा? इन सभी को रात में डिनर की आदत है। इसका कैसे होगा?'

वन्दना ने कहा—'जिनका डिनर के बिना चल ही नहीं सकता, उन्हें नौकर के साथ होटल भेज दें। बिल के दाम मैं चुका दूँगी।'

'खेल नहीं है वन्दना, ऐसा करना शायद मुनासिब नहीं हुआ।'

'क्या उन सारी चीजों को इस घर में ढोकर लाने से अच्छा होता? बतलाइए तो यदि माँ सुन लेतीं तो क्या कहतीं?'

विप्रदास ने इस बात पर विचार न किया, पर कुछ तय नहीं कर सका, बोला—'वह नहीं जानतीं।'

वन्दना सिर हिलाकर बोली—'अवश्य जानतीं। मैं पत्र लिख देती।'

उसके पिता राय साहब स्टेशन से लँगड़े होकर लौट आये हैं। बन्दना ने खिड़की से झाँककर देखा कि पञ्जाब के बैरिस्टर और उनकी स्त्री दोनों कन्धे पकड़कर साहब को गाड़ी से उतार रहे हैं। उनके पैर का जूता और मोजा खुला हुआ है और उसमें दो-तीन भीगे रूमाल लपटे हुए हैं। प्लेटफार्म पर भीड़ की रेल-पेल में किसी ने उनके पैर पर काठ का भारी बक्स गिरा दिया था। लोगों ने घर-घराकर उन्हे ऊपर लाकर बिछौने पर लिटा दिया। दरबान डाक्टर बुलाने दौड़ा, डाक्टर ने आकर पट्टी बाँधकर दवा दी। कहा—कोई विशेष चोट नहीं है, किन्तु कुछ दिनों के लिए चलना-फिरना बन्द करना होगा।

अगले दिन सन्ध्या समय मनी आ पहुँची। वन्दना बड़े उत्साह से आव भगत करने जा रही थी, सहसा ठिठक गई और देखा कि मोटर से केवल मझली दीदी ही नहीं उतर रही, सङ्ग में सास दयामयी भी हैं। आनन्द की लहर रुक-सी गई। वन्दना डरी हुई किसी प्रकार प्रणाम कर एकदम किनारे खड़ी होने जा रही थी, दयामयी ने हँसकर पूछा—'बिटिया, अच्छी तरह तो हो न?

सिर हिलाकर वन्दना बोली—'अच्छी हूँ, अचानक कैसे आ पड़ीं?'

दयामयी ने कहा—'बताओ तो, न आऊँ तो क्या करूँ? मेरी एक पगली बेटी क्रोध करके बिना खाये ही चली आई, उसे घर ले जाये बिना चैन कैसे पड़ता?'

वन्दना ने शर्माते हुए मुस्कराकर कहा—'आप कैसे समझ गईं कि मैं क्रोध करके चली आई हूँ?'

दयामयी ने कहा—'पहले लड़के-बाले हों, मेरी तरह उन्हें पाल-पोस कर बड़े करो, तब स्वयं ही जान जाओगी कि बेटी के क्रोध करने की बात माँ कैसे जान जाती है।'

इन बातों को उसने इतने मीठे स्वर में कहा कि वन्दना कोई जवाब दे न सकी। सिर नीचा किये हुए उनके पैर छूकर प्रणाम किया। खड़ी होकर कहा—'पिता जी सख्त बीमार हैं माँ।'

'बीमार हैं? उन्हें हुआ क्या?'

'पैर में चोट लगने के कारण वह कल से बिछौने पर पड़े हुए हैं, दर-

सकते नहीं।'

दयामयी घबराकर बोली—'उपचार में कोई गलती तो नहीं हुई? चलो, जिस कमरे मे तुम्हारे पिता जी हैं, मुझे ले चलो। पहले उन्हें देख आऊँ तब और कुछ होगा।' इतना कह वह सती को सङ्ग लेकर वन्दना के पीछे-पीछे ऊपर राय साहब के कमरे मे गई। आज उनके पैर में कोई विशेष पीड़ा नहीं थी, इन लोगों को देखकर बिस्तर पर बैठकर नमस्कार किया।

दयामयी ने हाथ उठाकर नमस्कार का उत्तर दिया और मुस्कराते हुए कहा—'समधी जी, पैर किस तरह टूटा, कहाँ घुस गये थे?'

सती और वन्दना दोनों ने दूसरी तरफ मुँह फेर लिया, राय साहब सीधे-सादे आदमी समझाने लगे कि कहीं घुसने के कारण नहीं, स्टेशन के प्लेटफार्म पर अकस्मात् ही यह दुर्घटना घटी।

दयामयी ने हँसकर कहा—'जो होना था हुआ, अब कुछ दिन बेटियों की देख भाल मे घर मे बन्द पड़े रहिए। कहीं एक बिटिया आपको सँभाल न सके, इसीलिए और एक को ले लाई हूँ। दोनो बारी-बारी से कुछ दिनों तक सेवा शुश्रूषा करें।'

इसी बात पर राय साहब ने विश्वास कर लिया और इस कृपा और सहानुभूति के लिए बहुत धन्यवाद दिया।

'फिर भेट होगी, अब जाकर हाथ पैर धोऊँ।' इतना कह दयामयी अपने कमरे मे चली गई।

द्विजदास और उसका भतीजा वासुदेव दूसरी मोटर से आये। मझली दीदी के लड़के को उस दिन वन्दना न देख पाई थी। वह पाठशाला में था और उसकी छुट्टी के पूर्व वन्दना घर से चली आई थी। दीदी को छोड़कर वासुदेव नहीं रह सकता, इसीलिए सङ्ग आया है और उन्हीं के सङ्ग घर लौट जायगा।

चाचा के परिचय करा देने पर वासुदेव ने नमस्कार किया। वन्दना के पैरों में जूते देखकर मन ही मन आश्चर्य हुआ, लेकिन वह कुछ नहीं बोला। आठ-नौ वर्ष का लड़का है, लेकिन सब कुछ समझता है।

स्नेह से छाती से लगाते हुए वन्दना ने पूछा—'मुझे पहचाना नहीं बासू?'

'मैंने पहचान लिया मौसी।'

'किन्तु तुम तो पाँच-छः वर्ष के थे, तुम्हें याद तो न रहना चाहिए!'

'फिर भी मुझे याद है मौसी, तुम्हे देखते ही पहचान लिया। हमारे घर से तुम क्रोध करके चली आई वापस जाने पर तुम्हें देखा नहीं।'

क्रोध करके चले आने की बात तुमने सुनी किससे?'

'दादी से चाचा कह रहे थे।'

वन्दना ने द्विजदास की तरफ देखकर पूछा—'क्रोध करने की बात आपको मालूम कैसे हुई?'

द्विजदास ने कहा—'केवल मैं ही नहीं, घर के सभी लोग जानते हैं। इसके अलावा आपने छिपाने की भी तो कोई खास कोशिश नहीं की।'

वन्दना ने कहा—'आप मेरे क्रोध करने की बात ही जानते हैं, उसका कारण भी मालूम है?'

द्विजदास बोला—'सभी को भले न मालूम हो; लेकिन मुझे मालूम है। राय साहब को अकले मेज पर खाने के लिए बैठाया गया। इसीलिए।'

वन्दना ने कहा—'अगर यही कारण है, तो मेरा क्रोध करना क्या उचित मानते हैं?'

द्विजदास ने कहा—'उचित मानता हूँ। हालाँकि इन लोगों के लिए भी दूसरा कोई रास्ता न था।'

'क्या आप मेरे पिताजी के सङ्ग बैठकर भोजन कर सकते हैं?'

'कर सकता हूँ। किन्तु भैया के मना करने पर नहीं।'

'लेकिन क्या आप समझते हैं कि आपको मना करने का हक दादा को है?'

द्विजदास ने कहा—'यह उनकी बात है, मेरी नहीं। भैया की बात न मानना अनुचित है यह जानता हूँ।'

वन्दना ने कहा—'जिसे कर्त्तव्य समझते हैं, क्या उसे करने की हिम्मत आप में है नहीं?'

पल भर चुप रहकर द्विजदास ने कहा—'देखिए, यह हिम्मत-बेहिम्मत की बात नहीं। स्वभाव से मैं डरपोक आदमी नहीं हूँ, किन्तु भैया के साफ मना करने की अवहेलना की बात मैं सोच नहीं सकता। बचपन

मैं पिता जी की कितनी ही बातें मैंने नहीं सुनीं, इसके लिए दण्ड न मिला हो ऐसी बात नहीं, लेकिन मेरे भैया दूसरे स्वभाव के आदमी हैं, उनका कभी तिरस्कार नहीं करता।'

'तिरस्कार करने से क्या होता?'

'क्या होता है वह जानता नहीं, किन्तु हमारे कुटुम्ब में यह प्रश्न आज भी नहीं उठ पाया है।'

वन्दना ने कहा—'मझली दीदी के पत्रों में जान पड़ा है कि मुल्क के लिए आप बहुत कुछ करते हैं, फिर जो दादा की मंशा के विरुद्ध है, वह क्यों करते हैं?'

द्विजदास ने कहा—'उनकी मंशा के खिलाफ हो सकता है, लेकिन वे मना नहीं करते। वर्ना न कर सकता।'

दो-तीन मिनट चुप रहकर वन्दना ने कहा—'दीदी के पत्र में आपके विषय में जो कुछ समझा था वह आप हैं नहीं। अब उन्हें साहस बँधा सकूँगी कि भय की कोई बात नहीं. आपकी देश-सेवा के अभिनय से मुखोपाध्याय कुटुम्ब की विशाल सम्पत्ति से एक कौड़ी का भी किसी दिन घाटा नहीं होगा। दीदी निश्चिन्त रहें।'

द्विजदास ने हँसकर कहा—'दीदी का घाटा हो, क्या आप यही मनाती हैं?'

वन्दना ने झल्लाकर कहा—'वाह, ऐसा क्यों मनाऊँ। मैं मनाती हूँ उनका भय दूर हो, वे निर्भय हों।'

द्विजदास ने कहा—'आप फिक्र न करें, वे निर्भय ही हैं। कम से कम भैया के विषय में यह बात निःसङ्कोच कह सकता हूँ कि भय नाम की किसी वस्तु को वह आज भी नहीं जानते, वह उनके स्वभाव के विरुद्ध है।'

वन्दना ने हँसकर कहा—'इसका तात्पर्य यह कि भय वस्तु को घर के आप सभी लोगों ने आपस में बाँट लिया है और उनके हिस्से में कुछ भी नहीं पड़ा, यही न?' द्विजदास ने बात सुनी तो हँसकर कहा—'बहुत कुछ है। किन्तु आपको भी वञ्चित नहीं होना पड़ेगा, थोड़ा-सा जो शेष है, उतना आप भी पायेंगे। तीन-चार दिनों से एक सङ्ग हैं, अभी उन्हें पहचान नहीं पाईं?'

वन्दना ने कहा—'नहीं, आपसे उन्हें पहचानना सीखूँगी, अभी

उम्मीद में हूँ।'

द्विजदास ने कहा—'तो लीजिए पहला सबक। इन जूतों को उतार दीजिए।'

नौकर आकर बोला—'आप लोगों को माँ ऊपर बुला रही हैं।'

वन्दना ने चलते-चलते पूछा—'अचानक माँ क्यों आ गई?'

द्विजदास ने कहा—'पहली बात है कैलाश यात्रा के सम्बन्ध में मामियों से राय लेना, दूसरी है आपको बलरामपुर वापस ले जाना। देखिए कहीं 'ना' न कह बैठना।'

वन्दना ने कहा—'ठीक है, ऐसा ही सही।'

द्विजदास ने कहा—'माँ के सामने आपको 'मिस राय' नहीं कह सकता। आप आयु में मुझसे छोटी हैं, भाभी की छोटी बहिन हैं, इसलिए नाम लेकर ही पुकारूँगा, क्रोध में आकर कहीं कोई दूसरा अभिनय न कर बैठना।'

वन्दना हँसकर बोली—'नहीं, क्रोध क्यों करूँगी। आप मेरा नाम लेकर ही बुलायें। किन्तु मैं आपको क्या कहकर बुलाऊँगी?'

द्विजदास ने कहा—'मुझे द्विज बाबू कहकर ही बुलायें, लेकिन भैया को मुखोपाध्याय जी कहना ठीक न होगा। उन्हें सभी बड़े बाबू कहते हैं, आपको भैया कहना होगा। यह रहा आपका दूसरा सबक।'

'क्यों?'

द्विजदास ने कहा—'तर्क करके सीखा नहीं जा सकता, मान लेना पड़ता है, सबक याद हो जाने पर इसका सबब बताऊँगा, इस समय नहीं।'

वन्दना ने कहा—'किन्तु मुखोपाध्याय जी को स्वयं आश्चर्य होगा।'

द्विजदास ने कहा—'होने पर भी कुछ हानि नहीं, किन्तु माँ-भाभी ये बहुत प्रसन्न होंगी। सचमुच इसकी आवश्यकता है।'

'अच्छा, ऐसा ही होगा।'

सीढ़ी की एक तरफ जूते खोलकर वन्दना दयामयी के कमरे में जा पहुँची, पीछे-पीछे द्विजदास और बासुदेव पहुँचे। वह बक्स खोलकर कुछ कर रही थी और पास ही खड़ी अन्नदा शायद गृहस्थी का ब्यौरा दे रही थी। दयामयी ने सिर उठाकर देखा, बिना किसी भूमिका के स्वाभाविक

...ने पूछा—'तुमने स्नान करके कपड़े बदल लिये बेटी?'

'हाँ, माँ।'

'तो बिटिया, तनिक रसोईघर में जाओ। इतने लोगों का पण्डित क्या व्यवस्था कर रहा है, नहीं जानती, मैं भी सन्ध्या से निवृत्त होकर आई।'

वन्दना चुपचाप देखती रही, लेकिन दयामयी ने उधर देखा तक नहीं। कहने लगी—'द्विजू की तबीअत ठीक नहीं है, सवेरे भी वह कुछ खाकर नहीं आया। देखना, उसका खाना जरा जल्द हो बिटिया।' यह कहकर वह वन्दना को सङ्ग लेकर पूजा के कमरे की तरफ चली गई, वन्दना के जवाब का इन्तजार भी नहीं किया।

वन्दना ने द्विजदास से पूछा—'क्या रोग है?'

द्विजदास ने कहा—'साधारण बुखार-सा है?'

'इस समय क्या खायँगे?'

द्विजदास ने कहा—'साबूदाना, बार्ली के अतिरिक्त जो कुछ देंगी।'

वन्दना ने पूछा—'रसोई-घर मे जाऊँ, आखिर कोई गोलमाल तो न होगा?'

द्विजदास ने कहा—'नहीं होगा। शायद अन्नदा ने ऐसा कुछ कहा है। उसका कहना माँ कभी टालती नहीं, बहुत स्नेह करती हैं, शायद म्लेच्छ होने का कलङ्क आपका दूर हुआ।'

कुछ देर तक चुप रहकर वन्दना ने कहा—'बड़े आश्चर्य की बात है।'

द्विजदास ने स्वीकार करते हुए कहा है, नहीं जानता; किन्तु आश्चर्य आप से भी अधिक मुझे हुआ है। पर अब देर न करें, जाकर भोजन का इन्तजाम करें। फिर भेट होगी।' इतना कहकर दोनो माँ के कमरे से बाहर चले गये।

बारहवाँ परिच्छेद

कैलाश की तीर्थ-यात्रा में रास्ते की कठिनाइयाँ सुनकर मामियाँ ठिठक

उनके पाँच-छः दिन दक्षिणेश्वर, कालीघाट और गङ्गा स्नान में ही बीत गये। काम के आदमी के हाथों में ही काम की जिम्मेदारी आती है; इस घर का करीब सारा बोझ वन्दना के सिर पर आ पड़ा। सती कुछ भी नहीं करती, सभी मामलों में बहिन को आगे कर देती है, स्वयं साथ के सङ्ग-सङ्ग घूमती-फिरती है, फिर भी बाहर कहीं जाना होता है, तो उसे बुलाकर कहती है—'वन्दना, हमारे साथ चलो न। तुम्हारे साथ रहने से किसी से कोई बात पूछने की आवश्यकता नहीं होती।'

विप्रदास भी आजकल-आजकल करते-करते घर नहीं आ सका। माँ सदैव टोककर कहती—'विपिन के चले जाने पर मुझे कौन घर ले जायगा? उस दिन सन्ध्या को वह विक्टोरिया मेमोरियल देखकर आईं, विप्रदास को बुलवाकर उत्तेजना के साथ कहने लगी—'विपिन, तुम कुछ भी क्यों न कहो भाई, शिक्षित लड़कियों की बात ही कुछ और है।

विप्रदास जान गया कि यह वन्दना की बात है। पूछा—'क्या हुआ है माँ?'

दयामयी ने कहा—'क्या हुआ? आज एक बड़े तगड़े लाल मुँहे सार्जेंट ने आकर हमारी गाड़ी रोक दी। भाग्य से लड़की हमारे सङ्ग थी, अङ्गरेजी में दो बातें कहकर समझा दिया और उसने हमारी गाड़ी फौरन छोड़ दी, नहीं तो न जाने क्या होता? मुमकिन है आसानी से न छोड़ता, थाने तक तो खींच ही ले जाता, कैसा हङ्गामा होता। तेरा नया पञ्जाबी ड्राइवर किसी योग्य नहीं।'

विप्रदास ने हँसकर जवाब दिया—'तुम लोगों ने क्या किया था; धक्का मार दिया था क्या?'

वन्दना आकर खड़ी हो गई, दयामयी ने सिर हिलाकर पुलकित स्वर में कहा—'तुम्हारी ही बात विपिन से कर रही थी बिटिया, पढ़ी-लिखी लड़कियों की बात ही कुछ और होती है। तुम सङ्ग न होती तो आज सभी को कितनी विपता में पड़ना पड़ता। किन्तु सारा दोष उस मेम है। चलना नहीं जानती फिर भी अकड़कर चलती है, जानती नहीं दिखाना तो होगा ही।'

विप्रदास ने हँसकर कहा—'शिक्षित लड़कियों की बात ऐसी ही है माँ। मेम साहब अवश्य पढ़ना-लिखना जानती होंगी।'

माँ और वन्दना दोनों हँसीं। वन्दना ने कहा—'मुखोपाध्याय जी, वह मेम साहब का दोष है, पढ़ने-लिखने का नहीं। माँ, मैं रसोई-घर को तनिक देख आऊँ। कल द्विजू बाबू की रोटी रसोइए ने सख्त कर दी थी, उन्हें खाने में दिक्कत हुई।' इतना कहकर वह चल दी।

दयामयी पल भर स्नेहपूर्वक उसी तरफ देखती रहकर बोली—'सभी तरफ निगाह रहती है। सिर्फ लिखना-पढ़ना ही नहीं विपिन, ऐसा कोई काम नहीं जिसे यह लड़की न जानती हो। और उसी प्रकार मीठी वाणी। कोई भी काम उस पर सौंपकर निश्चिन्त रह सकते हैं, घर की किसी बात की देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।'

विप्रदास ने कहा—'म्लेच्छ होने की वजह से घृणा तो नहीं करती हो माँ?'

दयामयी ने कहा—'तेरी तो वही एक बात! म्लेच्छ क्यों होने जायगी, उसकी माँ एक बार विलायत गई थी, इसीलिए लोगों ने मेम साहब कहकर बदनाम किया। वैसे तो वन्दना हम लोगों की तरह ही बङ्गाली के घर की लड़की है। जूते पहनती है तो क्या हुआ! परदेश में सभी पहनते हैं। लोगों के सामने बाहर निकलती है, तो इसमें कौन-सा दोष है? जैसी मेरी बहू है, भैया दिल न जाने कैसा होने लगता है!'

विप्रदास ने कहा—'दिल के होने से काम कैसे चलेगा माँ! वन्दना रहने नहीं आई है, दो दिन के बाद उसे तो जाना ही होगा।'

दयामयी ने कहा—'जायगी तो सही किन्तु छोड़ देने का मन होता नहीं। इच्छा होती है पकड़कर सदैव के लिए रख लूँ।'

थोड़ी देर मौन रहकर विप्रदास बोला—'किन्तु ऐसा तो हो नहीं सकता माँ, पराई लड़की को इतना गले न लगाओ। दो दिन के लिए आई है, रहे, यही अच्छा है।' कहकर वह कुछ अन्यमनस्क की भाँति बाहर निकल गया। बात दयामयी को अच्छी नहीं लगी। किन्तु वह क्षण भर की बात थी। बलरामपुर वापस जाने का कोई नाम नहीं लेता। सबके दिन ऐसे बीत रहे हैं मानो कोई जल्सा हो, हँसी-खुशी, गप्प और सैर सपाटे। हँसी दिल्लगी में सभी के साथ इतना घुलते-मिलते दयामयी को इससे पहिले किसी ने कभी देखा नहीं। उनके दिल में कहीं मानो आनन्द

होती है, अभिमान उन्हीं को ज्यादा होता है। यदि उसने बाप से सचमुच ही कुछ सीखा है, तो सब से नम्रता का व्यवहार करेगी, देख लेना।'

बहस को माँ अस्वीकार न कर सकी। कहने लगी—'तेरी यह बात सच है, किन्तु पहले से कैसे जान लूँ बता? इसके अलावा हमारे गाँव में विद्या की कमी-बेसी की परीक्षा करने कोई नहीं आता, किन्तु दुलहिन को देखने वाली सभी नाक-भौं सिकोड़कर कहेंगी, बुढ़िया के क्या नेत्र नहीं थे कि वैसी बहू की बगल में इस बहू को लाकर खड़ा किया। भैया यह मुझसे सहन नहीं किया जायगा।'

पल भर चुप रहकर विप्रदास बोला—'किन्तु अक्षय बाबू को उत्तर तो देना होगा माँ। उस दिन उन्हें अनुमान दिलाया था कि मेरी माँ को शायद नापसन्द न होगी।'

दयामयी सुनकर चिन्तित होकर बोली—'बात न कहते तभी ठीक होता विपिन। कुछ भी हो, बहू की क्या राय है, सुनें, उसके बाद उनसे कह दिया जायगा।'

विप्रदास ने कहा—'अक्षय बाबू हमारे एकदम बेगाने नहीं हैं, अब तक परिचय नहीं था इसीलिए यह बात खुली नहीं थी। आत्मीयता के लिए कुछ भी नहीं कहता, लेकिन अपने एक लड़के की जब शादी की थी, अपनी ही इच्छा से की थी, दूसरे किसी से पूछने नहीं गई; और अब इसी के लिए ही राय जानने-सुनने की कौन सी आवश्यकता आ पड़ी माँ?'

जिरह में हारकर दयामयी हँसकर बोली—'किन्तु अब बूढ़ी जो हो गई हूँ बेटा, और कितने दिनों तक जीवित रहूँगी बताओ तो सही। किन्तु जिसे लेकर हमेशा के लिए गृहस्थी चलाना होगा, उसकी राय न लेकर कैसे शादी कर सकती हूँ? नहीं-नहीं, हमें विचारने के लिए न दो दिन का समय दे।' कहकर वह बाहर चली गई। बाहर आकर दयामयी अपने कमरे की तरफ न आकर समधी के घर की तरफ चल पड़ी, इन्हीं कई दिनों की घनिष्ठता से वन्दना के पिता के सामने उनका सङ्कोच बहुत कुछ दूर हो गया था, प्रायः स्वयं आकर उनका हाल पूछ जाती। इधर सन्ध्या पार हो चुकी है, सन्ध्या करने बैठ जायँगी तो शीघ्र उठ न सकेंगी, सोचकर उनके कमरे में दाखिल हुई और बोली—'कैसा हाल है…?'

बात समाप्त नहीं हो पाई थी। कमरे के दूसरे किनारे पर एक सुन्दर युवक वन्दना से धीरे-धीरे बातचीत कर रहा था। सुन्दर साहबी पोशाक वाले इस अपरिचित आदमी के सामने अचानक आ पड़ने के कारण दयामयी लज्जा के कारण पीछे हटना चाहती थी कि राय साहब बोल उठे—'कहाँ भागी जा रही हैं समधिन जी, वह तो अपना सुधीर है। उससे शर्म की कौन-सी बात है! वह तो विप्रदास और द्विजदास की भाँति ही आपका बेटा है। मेरी बीमारी की सूचना पाकर मद्रास से देखने आया है। सुधीर, आप वन्दना की दीदी की सास हैं, विप्रदास की माता। प्रणाम करो इन्हें।'

प्रणाम करने की सुधीर को आदत नहीं है, उस पोशाक में करना भी मुश्किल है, उसने पास आकर सिर झुकाकर किसी प्रकार आज्ञा का पालन किया।

दयामयी की सन्तान का सम्बन्ध इस लड़के से कैसे हुआ, यही समझाने के लिए राय साहब कहने लगे—उसका बाप और मैं हम दोनों एक ही साथ विलायत में पढ़ते थे, तभी से हम घनिष्ठ मित्र हैं। सुधीर स्वयं भी विलायत से बहुत से इम्तहान पास कर मद्रास के शिक्षा-विभाग में नौकरी करता है। इनकी शादी के बाद वह कुछ दिनों की छुट्टी लेकर वन्दना के साथ फिर विलायत जायगा, वहाँ तबीयत हुई तो वन्दना कॉलेज में भर्ती होगी, नहीं तो केवल देश घूमकर दोनों लौट आयेंगे। देखना सुधीर, अगर तुम लोग इसी अगस्त-सितम्बर में ही जाना निश्चय कर सको तो हो सकेगा तो मैं भी तीन महीने की छुट्टी लेकर एक दफा घूम आऊँगा। कैसा रहेगा बेटी, ठीक होगा न!'

वहीं से धीरे-धीरे वन्दना ने कहा—'क्यों न होगा पिता जी, तुम्हारे साथ रहने से तो ठीक ही रहेगा।'

राय साहब ने उत्साहित होकर कहा—'उससे एक और सहूलियत यह रहेगी कि तुम्हारी शादी के बाद महीने भर का समय मिलेगा, किसी प्रकार की जल्दबाजी नहीं करनी पड़ेगी। समझ लिया न सुधीर, सहूलियत को?'

सुधीर तथा वन्दना दोनों ने ही इसमें सम्मति-सूचक सिर हिलाया।

...नी इतनी देर के बाद जान सकी कि यह लड़का राय साहब का ...ी दामाद है। इसलिए उनका भी पुत्र स्थानीय है। उनका हृदय ...नक आनन्द से भर उठा; लेकिन वह विप्रदास की माँ हैं, जो ...रामपुर के प्रसिद्ध मुखोपाध्याय की हैं, घर की मालकिन हैं, पल भर में अपने को सँभालकर लड़के से पूछा—'सुधीर, तुम्हारा मकान कहाँ है बेटा ?'

सुधीर ने कहा—'इस समय बम्बई में, किन्तु पिता जी से सुना है कि पहले दुर्गापुर में था, लेकिन अब शायद हमारा कुछ भी नहीं रह गया।'

'कौन-सा दुर्गापुर, सुधीर ? जो वर्द्धमान जिले में है ?'

सुधीर ने कहा—'हाँ, पिता जी से सुना तो यही है। कलकत्ते के नजदीक कोई छोटा-सा गाँव है, अब शायद वह इलाका मैलेरिया से नष्ट हो गया है।'

दयामयी ने फिर पूछा—'तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?'

सुधीर ने कहा—'श्रीरामचन्द्र बसु।'

दयामयी ने विस्मित होकर पूछा—'तुम्हारे बाबा का नाम हरिहर-बसु था ?'

यह प्रश्न सुनकर राय साहब भी विस्मित हो गये। बोले—'आप उन लोगों को जानती हैं क्या ?'

'हाँ, जानती हूँ। मेरा ननिहाल दुर्गापुर में है। बालपन में नानी ने ही मेरा लालन-पालन किया था, इसीलिए उस गाँव के प्रायः सभी को जानती हूँ। उनका मकान हमारे मुहल्ले मे था। किन्तु इस समय बातचीत करने का मौका नहीं है, मेरी सन्ध्या में विलम्ब होता जा रहा है। लेकिन बिना कुछ खाये-पिये ही तुम चले न जाना—अभी मैं सब कुछ करने के लिए बता रही हूँ।'

हँसकर सुधीर ने कहा—'वह अब तक शेष नहीं है, विप्रदास बाबू ने पहले ही वह काम समाप्त कर दिया है।'

'कर दिया है ? अच्छा तो अब मैं चलूँ।' कहकर दयामयी चल दीं।

... एक बार भी देखा नहीं, एक बात भी की नहीं।

अगले दिन सवेरे स्नान-सन्ध्या करके विप्रदास ने प्रतिदिन के अभ्यास के अनुसार माँ की पद धूलि के लिए आज भी उनके कमरे में प्रवेश करके अत्यन्त आश्चर्य से देखा कि उनकी चीज-वस्तुएँ बाँधी जा रही हैं।

'कहीं जाओगी क्या, माँ ?'

दयामयी ने कहा—'तू नहीं मिला, इसीलिए दत्त महाशय से पूछकर जान लिया कि साढ़े नौ बजे की गाड़ी से रवाना हो जाने से सन्ध्या के पहले ही घर पहुच जाऊँगी। किन्तु परसों तेरे मुकदमे की तारीख है, तू तो सङ्ग नहीं जा सकेगा, द्विजू से हमें पहुँचा देने के लिए कह दे।'

माँ के दोनों नेत्र लाल, और मुँह सूखा है, देखने से विप्रदास ने जान लिया कि सारी रात उन्हें गहरी चिन्ता में बितानी पड़ी।

डरते हुए विप्रदास ने पूछा—अचानक क्या कोई आवश्यकता पड़ गई है, माँ ?

माँ ने कहा—आई थी दो दिन के लिए, आठ-दस दिन हो गये, उधर ठाकुर जी की पूजा का क्या हो रहा है, नहीं मालूम। पाँच-छः गायों के ब्याने का समय हो गया है, देखें उनका क्या हुआ, कोई खबर मिली नहीं है। बासू स्कूल से अनुपस्थित हो रहा है—अब तो देर की नहीं जा सकती, विपिन।

दयामयी के लिए ये सारी बातें छोटी नहीं हैं। यह सच है, किन्तु असल कारण उन्होंने नहीं बतलाया यह समझकर ही विप्रदास ने कहा—फिर भी क्या आज ही गये बिना काम चलेगा नहीं ?'

'नहीं भैया, मुझे तू रोके नहीं। द्विजू को सङ्ग जाने के लिए कह दे, न हो तो और कोई हमें पहुँचा आवे।'

'ऐसा ही होगा माँ।' कहकर विप्रदास पद-धूलि सिर से लगाकर कमरे से बाहर निकल गया। अपने सोने के कमरे में आकर देखा कि बहुत व्यस्त है और पास ही बैठी अन्नदा मिठाई की हाँडी, फल-मूल और लड़के के दूध का लोटा सँभालकर टोकरी में रख रही है।

घूँघट खींचकर सती उठ खड़ी हुई। विप्रदास ने कहा—'अन्नदा बहिन, बात क्या है, मालूम है ?'

'नहीं तो, कुछ नहीं जानती। सवेरे माँ ने मुझे बुलवाकर कह

दिया कि बहू को खाने-पीने का कष्ट न हो, नौ बजे की गाड़ी से वह चर जायँगे।'

विप्रदास ने सती से कारण पूछा—'उसने भी सिर हिलाकर बतलाया कि उसे भी कुछ नहीं मालूम।

सुनकर विप्रदास चुप रह गया। अन्नदा को न मालूम हो; लेकिन बहू नहीं जानती है, सास की ऐसी कौन-सी बात है? पल भर चुप खड़ा रहकर वह नीचे चला गया। परेशान होकर यही सोचते हुए गया कि ये सारी बातें माँ के स्वभाव के विरुद्ध हैं। क्या जाने कौन-सा गहरा दुःख उनके इस बेतुके आचरण के भीतर छिपा रह गया, जिसे उन्होंने किसी से प्रकट नहीं किया।

दयामयी तैयारी करके जब नीचे आई तब भी गाड़ी में बहुत देर थी, किन्तु आज उनसे देरी नहीं सही जाती, किसी प्रकार घर छोड़ने से ही मानो उन्हें आराम मिलेगा। सामने मोटर तैयार खड़ी है, दूसरी में चीज-वस्तु लाद कर नौकर-चाकर जा बैठे हैं, हाथ मे बैग लिये विप्रदास को आते देखकर उन्होंने भारी कण्ठ से पूछा—'द्विजू कहाँ गया?'

विप्रदास ने कहा—'वह नहीं जायगा माँ, मैं ही तुम्हें पहुँचा दूँगा।'

'शायद जाने के लिए राजी नही हुआ?'

नम्रता से विप्रदास ने कहा—'उसके लिए ऐसी बात तुम्हें नहीं कहनी चाहिए, माँ। तुम्हारे हुक्म को उसने कब नहीं माना, बतलाओ तो?'

'तो हुआ क्या? क्यों नहीं जायगा?'

'माँ, मैंने ही जाने के लिए नहीं कहा।' विप्रदास कुछ हँसकर बोला—'जिस लिए तुम इतनी बेचैन हो गई हो तुम्हारे उन्हीं ठाकुर जी, तुम्हारी उन्ही गायों के झुण्ड का क्या हुआ, अपने नेत्रों से देखूँगा इसीलिए सङ्ग चल रहा हूँ और कोई बात नहीं।'

किसी दूसरे अवसर पर दयामयी स्वयं भी हँसकर शायद बहुत सी बातें लड़के से करतीं; किन्तु इस समय मौन रह गई।

वन्दना को बुलाने अन्नदा गई थी, वह अभी-अभी नहाकर पिता के कमरे में जा रही थी। अन्नदा के बुलाने पर जल्दी से नीचे आई और यह सब देखकर स्तब्ध रह गई।

दयामयी ने कहा—'आज घर जाने की तैयारी है वन्दना।'

'घर ? वहाँ हुआ क्या है माँ ?'

'कुछ भी तो नही हुआ। लेकिन दो दिन के लिए आई थी और दस-बारह दिन हो गये, देर हो गई, अब घर छोड़कर रहा नहीं जाता। तुम्हारे पिता जी से भेट नहीं हुई, वह सोकर जगे नहीं थे। समधी जी से मेरी ओर से क्षमा माँग लेना। द्विजू है, अन्नदा है, तुम भी देखना उन्हें किसी बात का कष्ट न होने पाये।' चलो बहू, अब विलम्ब न करो।'—इतना कह वह गाड़ी मे जा बैठी।

सती जो पीछे थी, वह पास आकर बहिन का हाथ पकड़ कर रो पड़ी—'हम चल रही हैं बहिन !' और ज्यादा उसके मुँह से न निकला, आँसू पोछते हुए वह अपनी सास की बगल मे गाड़ी मे जा बैठी।

वन्दना हतबुद्धि सी स्तब्ध हो पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी रही, अचानक यह हुआ क्या !

जब बासू ने आकर उसको प्रणाम करके कहा—'मैं जा रहा हूँ मौसी !' तब उसे चेत हुआ कि अभी तक उसने भी किसी को प्रणाम नहीं किया। शीघ्रता से बासू का मुख चूमकर उसने गाड़ी के फाटक के पास आकर हाथ बढ़ा दयामयी और मझली दीदी की पद-धूलि ली। सती ने चुपचाप उसकी ठुड्डी पकड़ी, माँ ने मन ही मन आशीर्वाद दिया, किन्तु क्या बोलीं, यह समझ मे नहीं आया। मोटर चल पड़ी।

अन्नदा ने कहा—'चलो दीदी, हम ऊपर चले।'

उसके स्नेह मिश्रित कण्ठ स्वर से वन्दना लज्जित हुई, पल भर की विह्वलता को दृढ़ता से दूर कर बोली—'तुम चलो अन्नदा, मैं रसोई घर का काम सँभाल कर आ रही हूँ।' यह कह वह उसी तरफ चल दी।

कल सन्ध्या को भी बाते हुई थीं कि राय साहब के बम्बई चले जाने के बाद सभी एक साथ बलरामपुर जायँगे। लेकिन आज उसका जिक्र तक नहीं, सुदूर भविष्य में किसी एक दिन का बुलावा भी नही।

वन्दना घण्टे भर बाद चाय का सामान लेकर पिता के कमरे मे गई तो वह बहुत दुख के साथ बोल उठे—'समधिन जी बिना मिले चली गईं, सवेरे उठ न सका बिटिया, छिः ! छिः ! न जाने मेरे विषय में उन्होंने क्या सोचा होगा !'

वन्दना ने कहा—'हम बम्बई कब जायेंगे पिता जी?'

पिता ने कहा—'तुम्हारी बलरामपुर जाने की बात थी बिटिया, क्यों नहीं गई?'

वन्दना ने कहा—'तुम्हे अकेला छोड़ कैसे जाऊँ पिता जी, तुम तो आज भी चंगे नहीं हो पाये।'

'चङ्गा तो हो गया हूँ बिटिया। समधिन जी को वचन दिया है कि तुम जाओगी, न हो तो, मै जाते हुए तुम्हे बलरामपुर में उतारता जाऊँगा। कैसा रहेगा बिटिया?'

'नहीं, यह नहीं होगा पिता जी। इतनी दूर अकेले तुम्हें जाने नहीं दूँगी।'

बेटी की बात सुनकर पिता ने प्रसन्न होकर कहा—'दुर पगली, भेट होने पर समधिन कहेंगी कि बूढ़े बाप को बेटी नेत्रो से दूर नहीं करना चाहती। छिः! छिः!'

'इतने तुम चाय पियो पिता जी, मै अभी आती हूँ।' इतना कहकर वन्दना चल दी।

चौदहवाँ परिच्छेद

सन्ध्या अब समाप्त हो ही रही थी कि द्विजदास के कमरे के सामने खड़ी होकर वन्दना ने पुकारा—'क्या एक बार आ सकती हूँ द्विजू बाबू?'

अन्दर से आवाज आई—'आ सकती हो! एक बार नहीं, सौ, हजार, असख्य बार!'

वन्दना ने द्वार के किवाड़ों को बिल्कुल खोलकर प्रवेश किया और कमरे की सभी बत्तियाँ जलाकर खुले द्वार के सामने एक कुर्सी डालकर बैठ गई।

द्विजदास हाथ की पुस्तक को एक तरफ रख सीधा बैठकर बोला—'क्या आज्ञा है?'

'पढ़ क्या रहे थे?'

'भूत का क़िस्सा।'

'अतिथि बड़ा है या भूत का किस्सा ?'

'भूत का किस्सा बड़ा है।'

वन्दना झल्लाकर बोली—'हमेशा मजाक अच्छा नहीं। हम आपके घर में अतिथि हैं, क्या यह आप नहीं समझते ?'

द्विजदास ने कहा—'तुम लोग बड़े भैया के घर मे अतिथि हो, इसे मैं भलि भाँति जानता हूँ। और मकान-मालिक हुक्म दे गये हैं कि तुम लोगों को किसी बात का कष्ट न होने पावे। कष्ट अवश्य न होता, किन्तु इस भूत के किस्से मे आत्मविस्मृत होकर कर्त्तव्य में किंचित् ढिलाई आ गई थी। इसलिए अतिथि से क्षमा चाहता हूँ।'

'जानते हो, सारा दिन मुझे कितने कष्ट से बिताना पड़ा ?'

'अवश्य जानता हूँ।'

'अवश्य जानते हैं ? किन्तु दूर करने की कोई तरकीब की है ?'

द्विजदास ने कहा—'नहीं, करने का पहला सबब पहले ही निवेदन किया है। दूसरा कारण है—दूर करना काबू से बाहर है।'

'क्यों ?'

'यह मुझे बतलाना न चाहिए।'

वन्दना ने पूछा—'माँ और मझली दीदी अचानक घर क्यों चली गई ?'

मझली दीदी गई प्रबल पराक्रमशालिनी सास की आज्ञा से, वर्ना वह निर्दोष है।'

'फिर माँ क्यों गई ?'

'माँ को ही मालूम है।'

'क्या आप नहीं जानते ?'

द्विजदास ने कहा—'बिलकुल नहीं जानता, कहना असत्य बोलना होगा, क्योंकि भाभी ने किञ्चित अनुमान किया है और मैंने भी उसको ठीक ही समझा है।'

वन्दना ने कहा—'वह अनुमान ही आपको मुझे बतलाना होगा।'

टाल दिया वन्दना। क्या इस बात को बिना सुने नहीं बनेगा।'

'नहीं, यह नहीं हो सकता। आपको बतलाना ही पड़ेगा।'

'अगर न सुनोगी तो क्या होगा?'

वन्दना ने कहा—'देखिए द्विजू बाबू, हमने वादा किया था कि इस घर में मैं आपकी सभी बातें सुनूँगी और आप भी मेरी सारी बातें सुनेंगे। आप जानते हैं कि आपकी एक भी आज्ञा का उल्लङ्घन मैंने नहीं किया।' कहते हुए उसके नेत्रों में आँसू आ रहे थे और एक तरफ देखकर उसने किसी प्रकार अपने को सँभाल लिया।

व्यथित होकर द्विजदास ने कहा—'एकदम बेतुकी सी बात है; इसीलिए कहने की मेरी इच्छा नहीं थी। माँ तुम्हीं पर नाराज होकर चली गई हैं सही, किन्तु तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। सारा दोष माँ का ही है। भाभी का भी कुछ है, क्योंकि प्रत्यक्ष न भी हो, परोक्ष रूप में षड्यन्त्र में शामिल हुई थीं, ऐसा मेरा सन्देह है। लेकिन सबसे निर्दोष है बेचारा द्विजदास।'

वन्दना चिन्तित हो उठी—'षड्यन्त्र किस बात का है बतलाइए न?'

द्विजदास ने कहा—'षड्यन्त्र शब्द शायद उचित नहीं है। माँ ने मन ही मन हवाई किले बनाये थे, किन्तु हिसाब में गलती होने से जब भाग्य में शून्य ही हाथ लगा, तो सारे संसार पर बिगड़ उठीं। नाराज होना ठीक न होगा, बहुत कुछ आशा टूटने से उत्पन्न चोट खाया कह सकते हैं।'

चुपचाप वन्दना देखती रही। द्विजदास कहता गया—अवश्य जानती हो कि एक दिन तुम्हारे प्रति उनका जैसा बड़ा विराग था और किसी दिन उसी प्रकार गहरा स्नेह उत्पन्न हुआ। रूप, गुण, विद्या, काम-काज, दयामयी में एक भाभी को छोड़कर तुम माँ के सामने अद्वितीय हो गईं। तुम्हें म्लेच्छ कहे, यह किसकी हिम्मत? उसी दम माँ कमर कसकर प्रणाम करने बैठ जातीं कि इतनी बड़ी निष्ठावान् ब्राह्मण-कन्या, सारे भारतवर्ष को छान डालने से नहीं मिलेगी।' इतना कह द्विजदास अपने व्यङ्ग के आनन्द में दिल्लगी कर हँसने लगा।

यह हँसी वन्दना को बहुत बुरी लगी; लेकिन फिर भी वह हँस पड़ी।

द्विजदास ने कहा—'असल में वही तो सबके लिए खतरे की बात हो गई।'

वन्दना ने कहा—'किस कारण इतना खतरा ?'

द्विजदास ने कहा—'चित्त लगाकर सुनो। दयामयी के दो बेटे हैं—बड़ा और छोटा। बड़े के प्रति जिस तरह अगाध आशा और भरोसा है, छोटे के प्रति उसी प्रकार असीम सन्देह और भय है। उनका विचार है कि निकम्मेपन मे छोटे के बराबर दुनिया में कोई नही। किन्तु माँ हैं न ? गर्भ में धारण करके सन्तान को आसानी से तिलाञ्जलि नहीं दे सकतीं, इसलिए मन ही मन पुत्र की भलाई का उपाय निकाला, तुम्हारे कन्धों पर उसे बैठाकर ससार की मरुभूमि निश्चिन्त होकर पार करा देगी। लेकिन विधाता वाम हैं, अचानक कल शाम को जान पड़ा कि कन्धा खाली है नहीं।'

'माँ दयामयी के मंसूबो, सभी स्वप्न जालो को छिन्न-भिन्न कर कोई सुधीरचन्द्र वहाँ पहिले ही से बैठे है, किसकी हिम्मत है उन्हें हिलाये ?' इतना कह उसने एक बार फिर अट्टहास से कमरे को भर दिया।

वन्दना कुछ देर चुपचाप उसके मुख की तरफ देखती रही, फिर पूछा—'इस प्रकार की विकट हँसी से आपका क्या मतलब है ? माँ को नीचा देखना पड़ा है इससे, या आपको छुटकारा मिल गया उसी की खुशी है ? कौन सा ?'

मुस्कराते हुए द्विजदास ने कहा—'यद्यपि इन दोनो मे एक भी नही, तब भी स्वीकार करने मे सङ्कोच नही कि अचानक इस तरह पैर फिसलने से माता धराशायिनी हुई हैं। इससे दर्शन के तौर पर किञ्चित् विशुद्ध आनन्दरस का उपभोग किया है। पर उनकी विशेष क्षति नहीं होगी, अगर इससे कम से कम उन्होंने इतनी शिक्षा ली हो कि ससार मे बुद्धि नाम की वस्तु उन्हीं की ही निजी सम्पत्ति नही है, उस पर और लोगों का अधिकार भी हो सकता है, क्योंकि मुझे न सही बड़े भैया को भी अगर माँ अपने षड्यन्त्र का आभास दे देतीं, तो और कुछ भले ही न होता, तो यह कर्म दण्ड तो उन्हे न मिलता। बड़े भैया और मैं दोनो जानते थे कि तुम दूसरे की वाग्दत्ता हो, परस्पर प्रणय-शृङ्खला में आबद्ध हो, इसलिए इस व्यवस्था मे हेरफेर होना मुमकिन भी नहीं और वाञ्छनीय भी नहीं।'

वन्दना ने पूछा—'आप लोगों ने कब और किससे सुना ?'

द्विजदास ने कहा—'तुम्हारे पिता से। हमारे यहाँ आने के दिन ही

.य साहब ने तुम्हारे प्रेम, वाग्दान और जल्द ही ब्याह की मनभावनी आलोचना से हम दोनों भाइयो के चार कानों मे अमृत घोला था। नहीं-नहीं, नाराज मत होना वन्दना, सीदे-सादे निरीह आदमी हैं, प्रसन्नता के कारण यह सुसंवाद आत्मीय जनो से छिपा रखने का प्रयोजन अनुभव नहीं किया।'

कुछ देर तक मौन रहकर वन्दना ने पूछा—'क्या इसीलिए मुखोपाध्याय जी ने मैत्रेयी को देखने के लिए हमे भेजा था?'

द्विजदास ने कहा—'यह मै ठीक-ठीक नहीं जानता क्योंकि बड़े भैया के मन की सभी बातें देवताओं को भी मालूम नहीं। केवल इतना जानता हूँ कि उनके मन मे मैत्रेयी देवी सर्वगुण सम्पन्ना कन्या है। बलरामपुर के धनी और महामाननीय मुखोपाध्याय घराने के लिए अयोग्य नहीं है।'

वन्दना ने पूछा —'मैत्रेयी देवी के बारे मे आपकी क्या राय है?'

द्विजदास ने कहा—'इस घराने मे यह प्रश्न अवैध है। मैं अन्य पुरुष हूँ। प्रथम और द्वितीय पुरुष अर्थात् माँ और बड़े भैया किसी भी लड़की के गले मे मुझे बाँध देंगे, उसी के गले मे मै बड़ी खुशी से लटकता रहूँगा। यही इस घर की सनातन रीति है इसमे रद्दोबदल नहीं हो सकता।'

उसके बोलने की भङ्गिमा से वन्दना ने हँस दिया और कहा—'और मान लीजिए, मैत्रेयी के बदले वन्दना के गले मे ही आपको बाँध दें तो?'

माथे को ठोककर द्विजदास ने कहा—'हाय वन्दना यह आशा बेकार है! दुष्ट राहु ने पूर्णचन्द्र को ग्रस लिया है, कहाँ के सुधीरचन्द्र ने दाल-भात मे मूसलचन्द्र बनकर सारा गुड़ गोबर कर दिया है। द्विजदास की स्वर्णपुरी नेत्रों के सामने जलकर राख हो गई। इस प्रसङ्ग को बन्द करो कल्याणी, अभागे का हृदय विदीर्ण नहीं हो जायगा।'

उसकी नाटकीय उक्ति से वन्दना एक बार हँसकर बोली—'स्वर्णपुरी का सब कुछ तो नहीं जल गया था द्विजू बाबू, अशोक कानन तो बच गया था। हृदय विदीर्ण भी नहीं हो सकता।'

द्विजदास ने सिर हिलाकर कहा—'यह भरोसा बेकार है, श्रीरामचन्द्र का भाग्य जोरदार था; लेकिन मैं सर्वसम्मति से हतभाग्य द्विजदास हूँ। मेरे जले भाग्य मे सारी आशाएँ जलकर राख हो गई हैं, कुछ भी शेष नहीं है।'

'हो नहीं गई हैं।'

'क्या नहीं हो गई हैं ?'

जोर देकर वन्दना ने कहा—'जलकर तो कुछ भी राख नहीं हुआ है। द्विजदास हतभाग्य है, इसीलिए हतभाग्य नहीं है। मेरे भाग्य को जलाकर राख कर दे, यह सामर्थ्य सुधीर मे है नहीं। दुनिया में किसी में भी नहीं, माँ मे भी नहीं और आपके बड़े भैया में भी नही।'

उसकी शान्त दृढ़ आवाज से द्विजदास चुपचाप खड़ा देखता रह गया। 'चुप क्यों हो गये ? मेरे दिल की बात का पता क्या आपको नही चला था, आज यह बहाना करने की इच्छा है ?'

'नहीं, बहाना नहीं करना चाहता वन्दना, विचार किया था, यह स्वीकार करता हूँ; लेकिन सन्देह भी अधिक था।'

वन्दना ने कहा—'आज उस सन्देह को चला जाना चाहिए।' पल भर उसके मुख की तरफ देखकर बोली—'किन्तु मेरे दिल मे तो सन्देह नहीं था। उस पहले दिन से ही नहीं। घर से गुस्सा होकर चली आई, अकेले ऊपर वाले कमरे की खिड़की के सामने खड़े हो हाथ उठाकर मुझे विदा किया, केवल एक दफे परिचय, फिर भी उसका अर्थ मेरे लिए क्या रत्तीमात्र भी अस्पष्ट था ?'

द्विजदास को मौन देखकर वन्दना ने पूछा—'सन्देह दूर हुआ ?'

द्विजदास ने कहा—'शायद जरा और दबाव डालने से चला जायगा। किन्तु सोचता हूँ, मेरा सन्देह दूर करने की यह रीति क्या जीवन भर रहेगी ?'

वन्दना ने कहा—'जीवन भर की व्यवस्था पहले हो तो, लेकिन सब कुछ जानकर भी जो छिछलेपन का नाटक करे, उसे समझाने के लिए मेरे सामने और कोई चारा नहीं।'

'लेकिन वह मै नहीं, माँ हैं। समझाओगी उन्हें कैसे ?'

वन्दना ने कहा—'माँ खुद समझ लेगी। मुझे वह पुत्री की तरह प्यार करती हैं। आज अचानक कितनी भी बेचैन होकर क्यों न चली जायँ, जो कुछ जानकर गई हैं वह सच नहीं है, अगर यही बात माँ को ही न समझा सकी, तो मैं किस चीज की आशा करती हूँ, बोलिए !

मुझे कोई चिन्ता नहीं है द्विजू बाबू, किसी न किसी दिन सारी बातें मैं तुम्हें समझाऊँगी ही।' कहते हुए आखिर में अचानक उसका गला रुँध गया और दोनों नेत्रों में आँसू आ गये।

द्विजदास का सच और झूठ का संशय दूर होकर भी दूर नहीं हो रहा था, किन्तु इन आँसूओं और कण्ठ स्वर के गूढ़ परिवर्त्तन से उसका सारा सन्देह दूर हो गया—यह केवल परिहास नहीं है। आश्चर्य और व्यथा से आन्दोलित होकर उसने कहा—'क्यों वन्दना, रोती क्यों हो तुम?'

वन्दना ने कहा—'नहीं।' सिर्फ आँसू पोछकर दूसरी तरफ देखने लगी।

द्विजदास खुद भी बहुत देर तक चुप रहकर धीरे-धीरे बोला—'सुधीर ने कोई अपराध नहीं किया, वन्दना।'

मुँह फेरकर वन्दना ने उसकी तरफ नहीं देखा, केवल बोली—'अपराध का फैसला किस लिए, बताओ न? क्या मैं उनके कसूर का बदला लेने बैठी हूँ?'

इसका कोई जवाब द्विजदास को देते नहीं बन पड़ा, समझ गया कि प्रश्न बिल्कुल निरर्थक हुआ है। फिर कुछ देर तक चुप रहकर बोला—'किन्तु सुधीर तुम्हारे अपने समाज का है, लेकिन शिक्षा, संस्कार, अभ्यास, आचरण में मुखोपाध्यायों से तुम्हारा कहीं भी मेल नहीं होगा। तो फिर किस लिए इनके कारागार में सदैव के लिए तुम प्रवेश करने जाओगी, वन्दना? मेरे लिए? शायद आज समझोगी नहीं, किन्तु किसी दिन जब यह त्रुटि ज्ञात होगी, तो पश्चात्ताप की हद न रहेगी। तुमने कभी मुझे समझा है, नहीं मालूम, किन्तु भाभी, माँ, बड़े भैया, हमारे ठाकुर जी, हमारी अतिथिशाला, हमारे आत्मीय स्वजन, मैं इन्हीं में से एक हूँ। अलग तो तुम किसी भी दिन मुझे नहीं पाओगी। अधिक दिनों तक क्या तुम इसे सह लोगी?'

वन्दना ने कहा—'सहन न होने पर आदमी के मरने का रास्ता तो सदैव खुला रहता है द्विजू बाबू, कोई भी कैदखाना उसे रोक नहीं सकता। किन्तु आपने मुझे भी क्या समझा है, नहीं मालूम, मैं भी अपनी सास, अपनी जेठानी, अपने जेठ, हमारे ठाकुर जी, अतिथिशाला, हमारे आत्मीय-स्वजन-समाज इनसे अलग करके अपने पति को एक दिन भी पाना नहीं

चाहती। वह सबसे घुल-मिलकर ही मेरे बने रहें।'

द्विजदास अचरज करके बोला—'ये सारी धारणाएँ तो तुम लोगों की हैं नहीं, यह तुमने सीखा किससे, वन्दना ?'

वन्दना ने कहा—'मुझे तो किसी ने भी नहीं सिखाया, द्विजू बाबू, किन्तु माँ को, मुखोपाध्याय जी को देखकर ये बातें मेरे दिल मे खुद ही आई हैं। इस परिवार में सभी मामलो में माँ सबसे बड़ी हैं, उसके बाद मुखोपाध्याय जी, उसके बाद दीदी, उसके बाद आप, यहाँ आनन्द का भी विशेष स्थान है। अगर इस घर मे कभी जगह मिली, तो इनसे नीचे ही मिलेगी, किन्तु यह मुझे कुछ भी अनुचित लगेगा नहीं।' यह सुनकर द्विजदास को जैसा अच्छा लगा उसी तरह मन व्यथा से भर गया। लेकिन वन्दना के दिल की बात को इस प्रकार जान लेना अन्याय है, इस आलोचना का बन्द होना आवश्यक है। अपने को सख्त करके उसने कहा—'किन्तु माँ को हमारी इन बातों के बतलाने से कोई लाभ नहीं। वह तुम्हें बेटी की तरह स्नेह करती हैं—यह मै जानता हूँ, इसीलिए सोलहो आने उन्हें उम्मीद थी कि तुम इस घर की छोटी बहू होगी, तुम दोनो बहिनो के हाथो मे अपने दोनो बेटों को सौंपकर वह कैलाश जायेंगी, अगर वापस न आ सकी, उसी दुर्गम पथ मे ही यदि मौत का तकाजा आया, इस बात को दिल मे लेकर तब बेफिक्र होकर जा सकेंगी कि उनके विशाल कुटुम्ब के उत्तरदायित्व के हस्तान्तरित करने मे कहीं कोई गलती तो नहीं है। किन्तु अब यह नहीं हो सकता, उनके मतानुसार वाग्दान का अभिप्राय है सम्प्रदान। प्यार करके जिसे राय दी है, वही तुम्हारा स्वामी है। विवाह का मन्त्र पढ़ा नहीं गया है; इसीलिए उसे छोड़ भी सकती हो, किन्तु उस खाली आसन पर दयामयी का पुत्र बैठ नहीं सकेगा।'

यह सुनकर वन्दना का मुख पीला पड़ गया, पूछा—'द्विजू बाबू, माँ यह सब क्या कह गई है ?'

द्विजदास ने कहा—'कम से कम कहना असम्भव नहीं समझता वन्दना। भाभी ने कहा था कि माँ को सबसे अधिक आघात लगा है कि सुधीर हमारी जाति का नहीं है—तुम लोग जाति मानते नहीं। इतनी बड़ी खाई तो किसी प्रकार भरी न जा सकेगी।'

'क्या आप भी यही बात कहते हैं ?'

'मैं तो गैर आदमी हूँ वन्दना, मेरे कहने से क्या होता है ?'

राय साहब के भोजन का समय निकट आ रहा था। वन्दना उठ खड़ी हुई। बाहर जाने के पहले बोली—'पिता जी की छुट्टी समाप्त हो गई, तो वह चले जायँगे। क्या मैं भी उनके सङ्ग चली जाऊँ, द्विजू बाबू ?'

द्विजदास ने कहा—'यह भी क्या मुझसे ही पूछोगी वन्दना ? यदि जाती हो तो मुझे गलत न समझ बैठना। तुम्हारे जाने के बाद तुम्हारी ओर से अब सब बातें माँ को बतलाऊँगा, शरमाऊँगा नहीं। इसके बाद रह गई हमारी आज सन्ध्या समय की याद, रहा वन्दे-मातरम् का हमारा मन्त्र।

वन्दना चुपचाप बिना उत्तर दिये कमरे से बाहर चल दी।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

जब वन्दना अपने कमरे में लौटकर आई तो उसे अत्यन्त खेद का अनुभव होने लगा। वह कैसी मतवाली हो गई थी कि निर्लज्ज भिक्षुक की तरह अपने हृदय को खोलकर, सारी आत्म-मर्यादा को तिलाञ्जलि दे आई ? लेकिन द्विजदास मर्द होकर जी जैसा रहस्यमय था, उसी तरह बना रहा। उसके चेहरे के हाव-भाव में न तो आग्रह था और न हर्ष, उसने न तो आशा दी और न धीरज बँधाया। वरन् परिहास के बहाने बार-बार यही कहा कि वह गैर आदमी है। उसकी इच्छा-अनिच्छा इस कुटुम्ब में अप्रासङ्गिक है। केवल इतना ही माँ के नाम पर कहा कि वाग्दान का तात्पर्य है कन्यादान, निरपराध सुधीर के खाली आसन पर दयामयी का पुत्र जाकर नहीं बैठेगा ! किन्तु अपमान पात्र इतने से भी भरा नहीं। *उसके नेत्रों में आँसू देखकर उसने आखिर में दयालु होकर* इतना ही वचन दिया है कि वह वन्दना के निर्लज्जता की कहानी की चर्चा माँ के सामने करेगा।

लेकिन क्या बात यहीं समाप्त हुई ? द्विजदास की बात के उत्तर में उसने खुद ही कहा था, इस कुटुम्ब में जहाँ भी कोई है, सबसे छोटी होकर ही वह आना चाहती है। इसके आगे उससे सोचा नहीं गया, वहीं स्तब्ध बैठी यही सोचती रही कि वह वास्तव में बहुत छोटी हो

गई है—इतनी छोटी कि आत्म-हत्या करने पर भी इस हीनता का प्रायश्चित्त हो सकेगा नहीं।

किसी ने बाहर आकर सूचना दी कि राय साहब उसे बुला रहे हैं। उठकर वह पिता के कमरे मे गई, वहाँ बार-बार जिद्द करके उन्हें राजी किया कि कल ही उन लोगों को बम्बई चल देना होगा, हालाँकि बात थी विप्रदास के वापस आने पर रात की गाड़ी मे रवाना होने की। एक दम इस प्रकार से चला जाना ठीक नहीं होगा। इसमे राय साहब को संशय नहीं था—छुट्टी भी थी, खुशी से रहा भी जा सकता था, तो भी बेटी की बात उन्हे माननी पड़ी।

बिस्तर पर पड़े-पड़े वन्दना के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली, इसके बाद न जाने कब वह सो गई। सबेरे उठकर उसने अपनी और पिता की चीज-वस्तुएँ बाँध डालीं, फोन करके सीट रिजर्व कराई और बम्बई तार भेज दिया। शाम की गाड़ी थी, किन्तु किसी प्रकार विलम्ब उससे सहा नही जा रहा था।

इस समय नौ बजे थे, अन्नदा कमरे मे आकर अवाक् हो गई, 'यह क्या ?'

वन्दना मैले कपड़ो की तह लगाकर एक बक्स में रख रही थी, बोली—'आज हम जायँगे।'

'आज तो नहीं जाना है दीदी। जाना तो कल है।'

'नहीं, आज ही जायँगे।' कहकर बिना मुँह उठाये वह काम करने लगी।

अन्नदा पलभर चुप रहकर बोली—'आप उठिए, मैं सँभाल कर धर देती हूँ। आपको कष्ट हो रहा है।'

'कष्ट करने की आवश्यकता नहीं, अपने काम पर जाओ।' इस घर के सभी लोगो से जैसे उसे नफरत हो गई थी।

कारण न ज्ञात होने पर भी अन्नदा यह जानती थी कि कुछ क्रोध में है। अचानक कल माँ घर चली गईं, आज वन्दना भी उसी प्रकार अचानक चली जाने के लिए तैयार है। किन्तु क्रोध के बदले क्रोध करना अन्नदा का स्वभाव नहीं है, वह जैसी सहनशील है वैसी ही सौम्य। कुछ

देर तक मौन खड़ी रहकर टूटे स्वर में बोली—'मुझसे गलती हो गई है दीदी, आज समय पर न उठ पाई।'

सिर उठाकर वन्दना बोली—'मैंने तो उसका कारण पूछा नहीं अन्नदा, आवश्यकता हो तो इसका उत्तर अपने मालिक को देना। द्विजू बाबू से कहो, वे अपने कमरे में ही हैं।' कहकर वह फिर काम में जुट गई। वन्दना पिता की अकेली सन्तान होने के कारण कुछ अधिक लाड़-प्यार में ही पली थी। सहने की शक्ति भी उसमें कम है। किन्तु कड़वी बातें कहने की कुशिक्षा भी उसे नहीं मिली थी और शायद जीवन में इतनी सख्त बात भी उसने किसी को नहीं कही थी। इसीलिए उक्त बात कहकर वह मन ही मन लज्जित हो रही थी, इसी समय अन्नदा ही सलज्ज कोमल स्वर में कहने लगी—'डॉक्टर लोग गये, पौ फटने वाला था, सोचा कि अब नहीं सोऊँगी, सोई भी नहीं, किन्तु दीवार के सहारे बैठते ही कैसे नींद लग गई, कब का सबेरा हो गया, कुछ भी जान न सकी। और मालिक की बात कह रही हैं दीदी, लेकिन क्या आप भी मेरी मालकिन नहीं हैं? बतलाइए तो, यह गलती मुझसे और कभी क्या हुई है? उसे मैं सँभाल कर रख दूँ।' शायद आखिरी बातें वन्दना के कानों में नहीं गई, अन्नदा की तरफ देखकर बोली—'डॉक्टर लोग चले गये, इसका मतलब क्या?' अन्नदा ने कहा—'कल रात को द्विजू बहुत बीमार हो गया था। यहाँ आने के पश्चात् ही उसकी तबीअत खराब है, लेकिन कुछ परवाह ही नहीं करता। कल माँ वगैरह के घर जाने की बात सुन मुझे बुलाकर कहा—'माँ को ज्ञात न होने पावे, किन्तु बड़े भैया से कहकर मेरा जाना रुकवा दो अनु, मानो आज इतना दुर्बल हूँ कि मुझसे उठा नहीं जाता।'

'उसे पालापोसा है, वह सब बातें मुझसे कहता है।' वन्दना बोली—'यह क्या कहती हो? तबीअत खराब है तो छिपाती क्यों हो?' उसका स्वभाव ही है, हँसकर टाल देना। चाहे बात कितनी भी गम्भीर क्यों न हो। उसी तरह तनिक हँसकर बोला—'तुम उन लोगों को रवाना करो, तब अपने आप अच्छा हो जाऊँगा।' माँ से उसकी पटती नहीं है कहीं साथ नहीं जाना चाहता है, शायद उससे बचने का ही यह ५

उपाय है।'

इसी कारण और कुछ कहा नहीं। बड़े भैया उन्हें साथ लेकर चले गये। इसके बाद सारा दिन उसने सोकर बिताया, कुछ नहीं खाया। दोपहर को जाकर पूछा—'द्विजू, कैसे हो?' बोला—'अच्छा हूँ।' लेकिन उसका मुख इस बात की गवाही नहीं दे रहा था। डॉक्टर बुलवाना चाहा, द्विजू ने किसी प्रकार बुलाने नही दिया, बोला—'क्यो बेकार भैया का पैसा खर्च कराओगी, तुम्हारा फिजूल-खर्ची सुनकर मालकिन नाराज होंगी।' माँ से उसका यह नाराज होना नहीं सहा गया। सारा दिन नहीं खाया, बिस्तर पर पड़ा रहा, सन्ध्या को जाकर पूछा—'द्विजू, तबीअत अगर सचमुच में खराब नहीं है, तो सारा दिन बिस्तर पर पड़े-पड़े क्यों बिता रहे हो?' वह उसी प्रकार हँसकर बोला—'अनु, शास्त्र मे लिखा है कि बिस्तर पर पड़े रहने से बढ़कर कोई पुण्य कार्य ससार में नही है, इससे मुक्ति होती है। तनिक पारलौकिक मङ्गल की चेष्टा मे हूँ। तुम भय मत करो। सभी बातों मे उसे व्यङ्ग सूझता है, बातचीत में उससे पार पाना मुश्किल है, गुस्सा होकर चली आई; किन्तु मन का भय हटा नहीं।' एक पुस्तक लेकर उसने पढ़नी शुरू कर की।

कुछ रुककर अन्नदा फिर कहने लगी—'शायद तब रात के बारह बजे थे, मेरे किवाड़ पर थपकी सुनाई दी। पूछा, कौन है?' बाहर से उत्तर मिला—मैं हूँ अनु। दरवाजा खोलो। द्विजू इतनी रात को क्यो बुला रहा है, जल्दी से द्वार खोलकर बाहर निकल आई—'द्विजू, यह कैसी सूरत है! आँखे अन्दर धँस गई हैं, कण्ठ बैठ गया है, शरीर थरथरा रहा है, फिर भी हँसी!' वह बोला—'अनु, तुमने ही मुझे बड़ा किया है, इसीलिए तुम्हारी नींद बर्बाद की। अगर नेत्र मूँदने ही पड़े तो तुम्हारी गोद मे ही सिर रखकर मूँदूँगा।'—कहकर वह रो पड़ा और उसके नेत्रों से आँसुओ की धारा बह किकली। मानो उसका रोना थमना ही न चहता था, ऐसा अटूट था उसका भीतरी भावावेश। खुद को सँभालने में उसे बहुत विलम्ब लगा तब उसके मुख से आवाज निकली। हृदय से लगाकर उसे कमरे में ले गई, किन्तु जैसी खुश्क कै थी, उसी प्रकार पेट की पीड़ा—ऐसा मालूम होता

। जैसे रात्रि व्यतीत न हो पायगी, कब दम निकल जायगा। डॉक्टरों ो खबर दी गई, सब आ पहुँचे, इञ्जेकशन दवा दी, गरम पानी की गर्मी । सेंकना शुरू हुआ—सब नौकर जाग उठे। सवेरे द्विजू सो गया। ॉक्टर बोले—अब भय की बात नहीं। किन्तु रात्रि कैसे बीती दीदी, ोचने से ज्ञात होता है, कोई बुरा सपना देख रही हूँ—यह सब कुछ नहीं हुआ था!' कहकर फिर अन्नदा ने आँचल से नेत्र पोछे।

वन्दना ने धीरे-धीरे कहा—'मुझे कुछ भी मालूम न हो सका, मुझे क्यों नहीं जगाया?'

अन्नदा ने कहा—'सुबह इसी परेशानी मे बीती, आपको अधिक बेचैन नहीं किया। नहीं तो द्विजू ने कहा था—वन्दना ने इस जिक्र को छोड़ दिया, बोली—'कैसे हैं अब द्विजू बाबू?'

अन्नदा बोली—'ठीक है, नींद मे है। डॉक्टर लोग कह गये हैं कि शायद शाम के पहले नींद न टूटेगी। बड़े बाबू आ जायें तो छुट्टी मिले दीदी।'

'उस कमरे में तो आदमी हैं न?'

'हाँ दीदी, दो आदमी बैठे हैं।'

'अब डॉक्टर फिर कब आवेंगे?'

'शाम के पहले ही आवेंगे। कह गये हैं कि अब भय की बात नहीं।' डॉक्टर अभय कर गये हैं, वन्दना के लिए यही भरोसे की बात है। इसके अलावा उसके लिए करने को और रखा ही क्या है?

द्विजदास की बीमारी की खबर वन्दना ने जाकर पिता को दी, किन्तु ज्यादा बोली नहीं। उन्होने इतना ही सुना तो बेचैन होकर कहा—'मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम हुआ? नहीं, हमे नींद से जगाना किसी ने मुनासिब न समझा, किन्तु यह तो ठीक नहीं हुआ!'

वन्दना मौन रही। बहुत देर के बाद वह स्वयं ही बोले—'टिकट खरीदने के लिए भेजा है- सीट रिजर्व हो ही गई, देखता हूँ कि हमारे जाने मे कुछ विघ्न हुआ।'

वन्दना ने कहा—'विघ्न क्यो होगा पिता जी, हम ठहर कर ही उन

लोगों का कौन सा भला कर सकेंगे?'

'नहीं, भला नहीं, किन्तु फिर भी ··· ।'

'नहीं पिता जी, इसी प्रकार बराबर विलम्ब होता जा रहा है, अब तुम अपनी राय न बदलो।' इतना कहकर वन्दना बाहर आ गई।

दोपहर के बाद वन्दना के कमरे मे जाकर अन्नदा फर्श पर बैठ गई। उनके रवाना होने में अभी दो घण्टे की देर थी। वन्दना ने पूछा—'अच्छे हैं न द्विजू बाबू?'

अन्नदा ने कहा—'अच्छे हैं, लेकिन निद्रा मे हैं।'

वन्दना ने कहा—'जाते वक्त किसी से हमारी भेंट न हुई। शायद तब तक द्विजू की नींद नहीं खुलेगी और बड़े बाबू जब घर पहुँचेंगे, तब हम बहुत दूर गये होंगे।'

हुङ्कारी भरती हुई अन्नदा बोली—'हाँ, बड़े भैया रात के नौ बजे के लगभग आयेंगे। वह आ जायँ तो सभी को छुटकारा मिले। सभी का भय हटे।'

'किन्तु भय की तो कोई बात नहीं अन्नदा।'

अन्नदा ने कहा—'नहीं, यह सच है, लेकिन बड़े भैया का घर में रहना ही दूसरी बात है दीदी, तब किसी को भी कोई जिम्मेदारी नहीं, सब उनकी है। जैसी अक्ल है वैसा ही विचार, वैसा ही साहस और वैसी ही गम्भीरता। सभी ऐसा अनुभव करते हैं मानो उन पर बरगद की छाया है।'

वही पहले की बात। मालकिन के विषय में यह भावना मानो इसकी नस-नस मे समा गई है। दूसरा अवसर होता तो वन्दना ताना देने से बाज न आती, किन्तु इस वक्त चुप रह गई। वन्दना कहने लगी—'और वह द्विजू—मानो दोनों भाई दुनिया के दो अङ्ग हैं।'

अचरज से वन्दना ने पूछा—'क्यों?'

अन्नदा ने कहा—'और नहीं तो क्या दीदी, न है उत्तरदायित्व का खयाल, न है झंझट, न गम्भीरता, वह जाड़े का बादल है न है बिजली, न है पानी, उड़ता फिरता है, मामला कितना भी पेचीदा क्यों न हो हँस-खेलकर वह वक्त काट ही लेगा। न गृहस्थ है, न वैरागी। कितने कर्जदारों ने उससे 'चुकता पाया' लिखवा कर मुक्ति पाई, इसका लेखा नहीं।'

वन्दना ने कहा—'मुखोपाध्याय जी गुस्सा नहीं होते ?'

'होते जरूर हैं। खूब होते हैं। विशेष कर माँ। किन्तु उसका पता चलेगा कहाँ ? कुछ दिनों के लिए इस प्रकार लापता हो जाता है कि भाभी रोना-पीटना शुरू कर देती हैं। तब ढूँढ़कर उसे पकड़ लाते हैं। लेकिन इस तरह से तो सदा नहीं चल सकता दीदी, उसकी शादी होगी, बाल बच्चे होंगे, तब तो ऐसा करने से दिवाला ही होगा।'

वन्दना ने कहा—'यह तुम लोग उनसे कहते क्यों नहीं ?'

अन्नदा ने कहा—'बहुत कुछ कहा सुना गया; किन्तु वह सुनता कहाँ है !'

वह कहता है—तुम लोग फिक्र क्यों करते हो ? अगर दिवालिया हुआ तो मैं हूँगा, भाभी तो दिवालिया होंगी नहीं। तब सब मिलकर उनके कन्धे पर सवार होंगे।

वन्दना ने हँसकर पूछा— क्या कहती हैं मझली दीदी ?'

अन्नदा ने कहा—'देवर के लिए उनके स्नेह का ठिकाना नहीं। कहती हैं—हम खायेंगे और द्विजू क्या भूखा रहेगा ? पाँच सौ रुपयों की मेरी आमदनी को तो कोई रोक नहीं सकेगा, गरीबी ढङ्ग से हमारा उसी से चल जायगा। अपने लाखो रुपये लेकर बड़े बाबू सुख से रहें, हम उनसे माँगने नहीं जायँगे।'

यह सुनकर वन्दना को कितना अच्छा लगा, इसकी हद नहीं। जिसने कहा है वह उसी की बहिन हैं। किन्तु जिस समाज, जिस वायु मण्डल मे वह बड़ी हुई है, वहाँ ऐसी बात कोई न कहता है, और न शायद सोच ही सकता है। कहने की कभी आवश्यकता पड़ती है या नहीं, यही किसे मालूम !

किन्तु अन्नदा जो कुछ कह रही थी मानो वह पुराने जमाने की कोई कहानी थी। ये एक ही परिवार मे रहते हैं, सिर्फ बाहरी आकार नहीं भीतरी प्रकार भी वैसा ही है। अन्नदा यहाँ केवल महरी ही नहीं है, वह द्विजदास की दीदी है। जबानी ही नहीं, आज भी उसकी सारी बाते इसी से होती हैं। इसी अन्नदा के पिता इसी कुटुम्ब का काम करते-करते स्वर्ग सिधारे। उसका बेटा यहीं बड़ा होकर अपना जीवन-यापन कर रहा

अन्नदा को काम की कमी नहीं है, फिर भी माया का बन्धन नहीं जाना जाता। इस बड़े धनी परिवार से ऐसे कितने ही परिवार पीढ़ियों से जुड़े हैं। दयामयी की शरारती सन्तान द्विजदास ने भी कल कहा था— उसकी माँ, बड़े भैया, भाभी, अपने गृहदेवता, अतिथिशाला सभी लेकर ही वह है—उनसे पृथक करके वन्दना किसी दिन उसे पायेगी, इसकी उम्मीद नहीं। तब वन्दना ने अस्वीकार नहीं किया था फिर आज ही एक बार उसके असली मतलब को समझी।

बात समाप्त नहीं हुई थी, बहुत कुछ जानने के लिए उनका आग्रह प्रबल हो उठा, किन्तु बाधा पड़ी। नौकर ने आकर सूचना दी कि राय साहब बेचैन हो रहे हैं, छः बजे हैं। रवाना होने के लिए एक घण्टे से अधिक का समय नहीं है। वन्दना को तैयार होने के लिए उठना पड़ा।

ठीक वक्त पर राय साहब नीचे उतरे, उतरते हुए बेटी का नाम लेकर एक बार पुकारा, वन्दना के कानों में इसकी आवाज पहुँची। चाहे यह काम कितना ही अनुचित हो, चाहे कितनी ही अनिच्छा हो, जाना पड़ेगा ही। बार-बार हठ करके इन्तजाम उसने खुद कराया है, उसमें रद्दोबदल नहीं हो सकता। कमरे से जब बाहर निकली तो यही बात सबसे पहले दिल में आई कि भविष्य में जहाँ तक निगाह जाती है। कभी किसी बहाने से यहाँ लौटने की उम्मीद नहीं है, किन्तु उसके कितने ही सुखद स्वप्नों से यह घर भरा रहा, इसे वह कभी भुला नहीं सकेगी, सीधे रास्ते को छोड़कर द्विजदास के बगल वाले बरामदे से घूमकर उतरते हुए उसने कमरे के अन्दर एक निगाह डाली। लेकिन जो खिड़की खुली हुई थी, उसके अन्दर से द्विजदास दिखाई नहीं दिया।

दत्त जी मोटर के पास खड़े हुए थे, राय साहब ने उन्हें बुलाकर नौकरों को देने के लिए बहुत से रुपये दिये और अचानक चले जाने के लिए दुख प्रकट करके द्विजदास की खबर जल्दी भेजने के लिए प्रार्थना की।

गाड़ी में बैठने के पहले अन्नदा को एक तरफ ले जाकर वन्दना ने कहा—'द्विजू की तुम बहिन हो, उन्हें पालपोस कर बड़ा किया है—अनु दीदी, यह अँगूठी उनकी बहू को पहनने के लिए दे देना।' कह कर अँगूठी निकालकर उसके हाथ में देकर पिता की बगल में जा बैठी। मोटर

अचानक वन्दना ने आँखें ऊपर उठाईं। लेकिन आ- -करने के लिए द्विजदास नहीं था। आज वह बीमार है, और बेहोश।

सोलहवाँ परिच्छेद

दयामयी के व्यवहार में वन्दना के प्रति जो गुप्त लांछना व तिरस्कार था, सती के हृदय में यह बात जम गई थी, लेकिन सास को कुछ कहना आसान नहीं है, इसीलिए उसने एक पत्र लिखकर बहिन के हाथ में दे देने के लिए स्वामी को कमरे में बुलाया। दोपहर की गाड़ी से विप्रदास कलकत्ता वापस आवेगा। इसी वक्त दयामयी आ उपस्थित हुई। ऐसा तो कभी करती नहीं हैं—बेटा और बहू दोनों को आश्चर्य हुआ—सती सिर पर आँचल खींचकर बाहर जाने को थी, माँ ने मना करते हुए कहा—'नहीं बहू, जाना नहीं। तुम्हारी अनुपस्थिति में तुम्हारी बहिन की बुराई न करूँगी, जरा ठहरो। इतनी परेशान होकर मैं घर क्यों चली आई, यह विपिन को मालूम है?'

विप्रदास ने कहा—'अच्छी तरह नहीं मालूम माँ, किन्तु वहीं कुछ गड़बड़ी हुई है इतना ही अनुमान लगाया है।'

माँ ने कहा—'गड़बड़ी हुई नहीं, किन्तु हो सकती थी। इससे दुर्गा माता ने मेरी रक्षा की है। कल समधी जी बम्बई चले जायँगे, बात थी उसके बाद वन्दना आकर कुछ दिनों तक अपनी मझली दीदी के पास रहेगी, लेकिन लड़की के मस्तिष्क में यदि कुछ भी बुद्धि होगी तो यहाँ अब वह आना पसन्द न करेगी, पिता के सङ्ग सीधी बम्बई चली जायगी। यदि जाती नहीं है तो जाने के लिए कह देना। दिल में दुःख न करो बहू, ऐसी बहिन को बनवास दिया जा सकता है, लेकिन घर में लाकर नहीं रखा जा सकता।'

विप्रदास चुपचाप देखता रहा, उसके आश्चर्य की हद न थी। दयामयी कहती गईं—'मेरा अभाग्य है कि उसे प्यार करने गई थी, समझा था कि वह हम ही लोगों में से एक है। उसके आचरण में त्रुटियाँ हैं—सोचा

था यह सब स्कूल-कॉलेज में पढ़ने का परिणाम है—चन्द्रमा के सामने उड़ते बादलों की तरह हवा लगने पर वह उड़ जायगा—ठहरेगा नहीं, कुछ भी सही, सती की बहिन तो है ! किन्तु उसने कायस्थ के घर से वर चुन लिया, किसे मालूम था, विपिन, ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर उनका इतना अधःपतन होगा !

विप्रदास ने कहा—'बात यही है । यह खबर तो तुमने सुनी थी माँ कि जात पाँत नही मानते !'

दयामयी ने कहा—'सुना तो था; लेकिन आँख से देखा नहीं था, शायद नानी की कहानी की तरह समझ भी न सकी । किन्तु आँख से देखने से किसी पर किसी को इतना गुस्सा हो जाता है यह बिलकुल नहीं जानती थी ।' इतना कहते-कहते मानो वह नफरत से काँप उठीं । कहा—'चूल्हे में जाय ! जो मन हो करे, मेरी वह है कौन; लेकिन अब मेरे घर में आ नहीं सकती ।'

विप्रदास को चुप देखकर बोली—'उत्तर क्यों नही दिया विपिन ?'

'उत्तर तो तुमने माँगा नहीं, माँ । आदेश दिया कि जिसमें वन्दना न आये—ऐसा ही होगा ।'

दयामयी ने उसकी बात सुनी तो बोलीं—'क्या मैं अनुचित आदेश दे रही हूँ ?'

'अनुचित क्यों नहीं मालूम होता माँ ! वन्दना ने अनुचित कुछ नहीं किया, सामाजिक आचार-व्यवहार में हममें उनका मेल नहीं खाता, वे जाति नही मानते, इस बात को जानते हुए ही उसे तुमने आने के लिए बुलाया था, प्यार भी किया था, शायद तुम्हे आशा थी वे मुँह से कहते ही हैं, काम में लाते नहीं—यही तो तुमने गलती की, इसीलिए दिल को चोट भी लगी है ।'

दयामयी ने कहा—'सम्भव है सच हो; किन्तु उसकी शादी की बात सुनकर तुझे भी नफरत नहीं मालूम होती ?' सुना तो कहता क्या है तू ?'

मुस्कुराते हुए विप्रदास ने कहा—'उसकी शादी अभी हुई नहीं है, किन्तु होने पर भी मुझे क्रोध करना उचित नहीं माँ । बल्कि यह सोचकर श्रद्धा ही करूँगा कि उनका विश्वास अटल है । उन्होंने किसी को छला?

नहीं, लेकिन कलकत्ते में बहुतेरे को देखा है जो शब्दाडम्बर में कुछ नहीं मानते, जाति-भेद में भरोसा भी नहीं करते, गालियाँ भी देते हैं, लेकिन काम के समय खोजने पर दर्शन नहीं होते। सबसे अधिक अश्रद्धा मैं उन्हें ही करता हूँ! नाराज न हो माँ, तुम्हारा द्विजू ऐसा ही है।'

दयामयी सुनकर मन ही मन नाराज हुई, ऐसी बात नहीं। द्विजू के विषय में कहा—'वह ऐसा ही चकमेबाज है। किन्तु, अच्छा विपिन, यदि वन्दना से तू नफरत नहीं करता तो उसका छुआ कुछ क्यों नहीं खाता? उसे रसोई घर में भेजती थी, इसीलिए तू उस घर में खाना छोड़कर मेरे घर में खाने लगा। कोई दूसरा भले न समझे, क्या तू सोचता है कि मैं नहीं जानती?

विप्रदास ने कहा—'तुम नहीं जानोगी तो माँ क्यों हुई थी? किन्तु मैं तो सचमुच ही जाति मानता हूँ माँ, मैं तो उसका छुआ खा सकता नहीं। जिस दिन नहीं मानूँगा उसी दिन खुल्लम-खुल्ला उसके हाथ का खाऊँगा, तनिक भी छिपाऊँगा नहीं।'

दयामयी ने कहा—'तू नहीं समझता विपिन कि किस तरह मैं उससे यह बात छिपाये फिरती थी। यहाँ लड़की आये चाहे न आये लेकिन देखना जिससे यह बात वह कभी न जान पाये। उसे गहरी चोट लगेगी। तुझ पर वह बहुत भरोसा करती है।' उनकी आखिरी बातें मानो एकाएक स्नेह सिञ्चित हो गई।

हँसकर विप्रदास ने कहा—'वह मुझ पर विश्वास करती है या नहीं मैं नहीं जानता, लेकिन उसका छुआ नहीं खाता, यह उसे मालूम है।'

'ऐसी अभिमानी लड़की, यह जानते हुए भी तुझ पर इतना विश्वा. करती है!'

'इसका तात्पर्य?'

'विश्वास करने की बात तुम्हीं लोग जानती हो माँ, किन्तु मैं जान. हूँ कि बहुत बुद्धिमती है, तुम्हारी सारी लुकाछिपी वहाँ बेकार हो गई।'

क्षण भर चुप रहकर दयामयी ने न जाने क्यासोचकर कहा—'शाय. इसीलिए वह इतनी विनती करती थी?'

दयामयी ने कहा—'मैं विधवा हूँ, मेरा भात-भत्ते से ही काम च.

...न है, वह ऐसा कभी होने न देगी। बाजार से भाँति-भाँति की नई ...रियाँ मँगावेगी, अपने हाथों से उसे धोकर काटेगी, महाराजिन बुआ ...से जबरन बनवाकर ही छोड़ेगी। वह जानती थी कि जिसे सामने आकर ...हीं दिया जा सकता उसे दूसरे के हाथों से ही घूस भेजना चाहिए। ...नों, खाकर भी नहीं जान सका विपिन, उस प्रकार की रसोई महाराजिन ... पुरखा भी नहीं बनाना जानते।'

हँसते हुए विप्रदास ने उत्तर दिया—'नहीं माँ, उतना ध्यान नहीं ...था। केवल बीच-बीच मे सन्देह होता था कि तुम्हारे अतिथियों के उस ...ई-घर के विशाल आयोजन के कुछ टुकड़े शायद हमारे इस रसोई घर आ पड़ते हैं। लेकिन यह दैवकृत नहीं, एक आदमी का इच्छाकृत है। ... खुशी की खबर है। लेकिन अपना आखिरी हुक्म बता दो माँ, गाड़ी ... वक्त हो गया, मुझे अभी दौड़ना पड़ेगा, उसे बुलाती हो या नहीं?

दयामयी ने सती से पूछा—'तुम्हारी क्या राय है बहू?'

लड़कपन मे सती सास के सामने पति से बोला करती थी, किन्तु ...ब नहीं बोलती। अक्सर कतराकर चल देती है, या चुप रह जाती है, ...किन आज धीरे से बोली—'रहने दो माँ, अब यहाँ उसे आने की ...वश्यकता नही।'

उत्तर सुनकर सास प्रसन्न न हो सकी। उसकी इच्छा दूसरी थी, ...किन अपने मुँह से प्रकट भी नही कर सकती थी। कहने लगी—'बड़े ...दमी की बेटी क्या नाराज हो गई?'

'नाराज नहीं माँ; किन्तु जो कुछ करके हम चली आई हैं, उसके ... अब उसे बुलाया नहीं जा सकता।'

'क्यों बहू, अगर त्रुटि एक हो ही गई, तो क्या उसका सुधार नहीं सकता?'

'सुधार नहीं हो सकता यह नहीं कहती, किन्तु आवश्यकता क्या है? ...ते भी उसने कई बार आने की इच्छा की है, किन्तु कभी राजी नहीं सकी, अब भी सारी बाधाएँ वैसी ही बनी हुई हैं। वह घुसती थी ...लिए उन्होने रसोई का जाना छोड़ दिया था, उसे यहाँ लाने की आवश्यकता है?'

विप्रदास ने कहा—'उसी की यह शिकायत है, तुम्हारी नहीं' हँसकर कहा—'फिर भी वन्दना मुझ पर बहुत विश्वास करती है, खुद इसकी गवाह है।'

सिर उठाकर सती ने देखा शायद अचानक भूल गई कि सास कहने लगी—'केवल माँ क्यों, मैं भी उसकी गवाह हूँ। लड़कियाँ विश्वास करती हैं, तब शिकायत नहीं करतीं। देवी-देवता भी कम नहीं देते, फिर भी पूजा बन्द नहीं करतीं, कहती हैं—उन्होंने अच्छाई लिए ही दुःख दिया है।' सास ने कहा—'तुम पर भी वन्दना ने विश्वास नहीं किया है माँ, कम प्यार नहीं किया है, तुम्हारा विचार तुम्हारे घर मे भोजन का इन्तजाम करती थी, सिर्फ उनके लिए? किन बात ऐसी नहीं, वह करती थी तुम दोनों के लिए ही—तुम दोनों को प्यार करती थी, उस पर तुमने किया था। रसोई-घर का भार—सभी खिलाने का काम लेकिन तुम्हारी अवहेलना करके वह और सभी पुलावकलिया नहीं खिला सकती थी माँ, भात-भर्ता सभी को निभ. पड़ता, किन्तु अब उसे लेकर खींचतान क्यों? जो हम लोगों ने चाहा उम्मीद का खात्मा हो गया—'वह अब नहीं लौटेगी!'—इतना कह.. सती जल्दी से चली गई।

अचरज से विप्रदास और दयामयी दोनो अवाक् रह गये। ऐ उक्ति, ऐसा आचरण सती के स्वभाव के लिए ऐसी अनहोनी है कि क ही नही जा सकता कि वह अपने होश मे है। विप्रदास ने पूछा—' मामला है माँ?'

दयामयी ने कहा—'मालूम तो है मुझे!'

'तुम लोगो ने किस लिए वन्दना की चाह की थी माँ? कैसी उ.. का खात्मा हुआ?'

मन ही मन दयामयी लज्जा से मर गई, किसी भी तरह अपने को प्रकट न कर सकीं। केवल बोलीं—'वे बाते आज नहीं, और बताऊँगी।'

'अक्षय बाबू की कन्या के सम्बन्ध में क्या कुछ तय कि. उत्तर तो उन्हें देना चाहिए?'

'मुझे उज्र नहीं विपिन, तुम लोगों की सलाह हो तो ठीक है। द्विजू से भी पूछना, वह क्या कहता है।' इतना कहकर वह भी घर से बाहर चली गईं। विप्रदास उधेड़बुन में पड़ा रहा। बात कुछ विशेष स्पष्ट नहीं हुई, किन्तु स्पष्ट कर लेने के लिए अब वक्त भी नहीं था।

जब विप्रदास कलकत्ता गया तो देखा मकान खाली है। वन्दना और उसके पिता कुछ ही घण्टे पहले चले गये हैं। इसकी आशङ्का उसे बिल्कुल नहीं थी ऐसी बात नहीं, किन्तु इतनी आशङ्का भी उसने की नहीं थी। अन्नदा को मालूम नहीं, सिर्फ इतना जानती है कि राय साहब का जाने का उतना मन नहीं था, लड़की हठ करके पिता को घसीट ले गई है। वन्दना पर कोई दबाव नहीं है, रहने की जिम्मेदारी भी उसकी नहीं है, वह सिर्फ मेहमान है, फिर भी वह भेंट किये बिना ही पीड़ित द्विजदास को बेहोश छोड़कर अकारण व्यस्तता से चली गई सोचकर उन्हें दुख हुआ। ...ोभ में जैसे निर्दय कठोर कहकर मानो दण्ड देने का मन होता है; लेकिन ...ाहिर करना उनका स्वभाव नहीं, वह मनोभाव उनके दिल में रह गया।

भयानक बुखार लेकर चार दिन के बाद विप्रदास हाईकोर्ट से लौटा। ...ायद मलेरिया है, अथवा और कुछ। नेत्र लाल हैं, सिर में पीड़ा भी ...हुत अधिक है, अन्नदा के पास आने पर वह बोला—'अनु बहिन, ...ुखार तो कभी होता नहीं, बहुत दिनों तक बीमारी को चकमा देता ...ाया हूँ, इस बार शायद वह सूद के साथ वसूल करेगी। जान पड़ता भुगतना पड़ेगा, सरलता से रिहाई न मिलेगी।'

अन्नदा ने दशा देखी तो चिन्तित हो गई, किन्तु निर्भय स्वर में ...स देते हुए कहा—'नहीं भैया, तुम्हारा पुण्य का शरीर है, इसमें ...त्य-दानव का जोर चलेगा नहीं, तुम दो दिन में चंगे हो जाओगे। ...क्टर को बुलवाऊँ। मुझसे तो असावधानी नहीं हो सकती।'

'ऐसा ही करो! बहिन!' कहकर विप्रदास बिस्तर पर लेट गया।

अन्नदा विपत्ति में पड़ गई। उधर बासुदेव की बीमारी की खबर ...कर कल द्विजदास घर गया है, दत्त शहर में नहीं हैं, मालिक के ...ं से वह भी ढाका में हैं। अकेली क्या करे, यह न समझकर विप्रदास ... पास आकर बोली—'भाई विपिन, एक बात कहूँ, नाराज तो न होगे?'

'कभी तुम्हारी बात पर नाराज हुआ हूँ अनु बहन ?'

बगल में बैठी अन्नदा सिर पर हाथ से सहलाते हुए बोली—'जान देकर बीमार की सेवा ही कर सकती हूँ, कुछ जानती तो नहीं, घर भी खबर नहीं भेज सकती, लड़का बीमार है, उसे छोड़कर बहू कैसे आयेगी, लेकिन क्या वन्दना को खबर नहीं भेजी जा सकती ?'

हँसकर विप्रदास ने कहा—'बम्बई क्या आसपास का मुहल्ला है बहिन कि खबर पाकर वह देखने आ जायगी! शायद उसके नमक-मिर्च लाते-लाते इधर चबैना समाप्त हो जायगा। इसकी आवश्यकता नहीं।'

जीभ को दाँतों से काटकर अन्नदा ने कहा—'तुम्हारी बलैया लूँ भैया, ऐसी बात मुख पर नही लाई जाती। वन्दना दीदी कलकत्ते में है, अभी वह बम्बई नहीं गई।'

'कलकत्ते में ही है!'

'हाँ, बालीगञ्ज में अपनी मौसी के घर है, मौसा पञ्जाब में बड़े डॉक्टर हैं, बेटी की शादी करने घर आये हैं। हावड़ा स्टेशन पर अचानक भेंट हो गई। वे गाड़ी से उतर रहे थे और ये लोग बम्बई जा रहे थे। मौसी जबर्दस्ती घर लौटा लाकर बोलीं—अचानक जब मिल गई तो बेटी की शादी न होने तक किसी भी दशा में जाने नहीं देगी। केवल एक दिन रोक कर उसके पिता को उन्होंने बिदा किया।

विप्रदास ने पूछा—'क्या मौसी को पहचानती हो ?'

'हाँ, अपनी बड़ी मौसी हैं और दूर रहती हैं। सदा भेंट-मिलाप नहीं होता, लेकिन आदमी हैं अपने ही।'

'अनु बहिन, इतनी बात तुमने कैसे जान ली ?'

'वे कल घूमने आई थीं, द्विजू का हाल पूछने। दोपहर के समय ऊपर के बरामदे में बैठी नाती के लिए कथरी सी रही थी, देखा बाहर के आँगन में दो गाड़ियों में बहुत से औरत-मर्द आये हैं। कौन हैं ये ? झाँककर देखा अपनी वन्दना दीदी हैं! लेकिन पोशाक ऐसी बदल गई कि है एकाएक पहचान में नहीं आती। जैसे वह लड़की ही नहीं है। कैसे करूँ, कहाँ बैठाऊँ, परेशान हो गई। थोड़ी देर के बाद दीदी ऊपर आई, सबका कुशल-[illegible] पूछा, बतलाया—उनके मुँह से ही सुना कि कम से कम एक मही-

...ते में ही रहेंगी। बोलीं—'सब अच्छी तरह हैं। थियेटर, सिनेमा, ...बाड़ी जाने का ठिकाना नहीं, नित्य नये-नये प्रबन्ध होते रहते हैं।'

क्षण भर चुप रहकर विप्रदास ने कहा—'अनु बहिन, उसे खबर देने से होगा क्या? मैं भी चङ्गा हो ही जाऊँगा। इतने दिनों तक तुम अकेली मेरी देखभाल न कर पाओगी?'

जोर देकर अन्नदा ने कहा—'क्यों नहीं कर पाऊँगी भैया, किन्तु फिर भी सोचती हूँ कि खबर देनी चाहिए, वर्ना बहू जी को शायद दुःख होगा। कुछ भी क्यों न हो, आखिर है तो बहिन ही।'

'पता मालूम है?'

'हमारा सोफर उन्हें पहुँचा आया था। उसे मालूम है।'

देर तक चुप रहकर विप्रदास बोला—'अच्छा, खबर भेज दो, किन्तु ...तना ऐश-आराम छोड़कर क्या वह आवेगी? विश्वास तो नहीं पड़ता ...ज।'

कुछ ठीक विश्वास तो मुझे भी नहीं पड़ता भैया। उसकी पहनावे ...ी बात ही स्मरण हो आती है। फिर भी खबर भेज देती हूँ।'

अनुत्सुक भाव से विप्रदास बोला—'यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो ...र भेज दो।'

सत्रहवाँ परिच्छेद

एकाएक हावड़ा स्टेशन पर बड़ी मौसी से जब मुलाकात हो गई। बम्बई जाना रोक कर वन्दना को घर लौटा लाने में मौसी को कोई ...कत नहीं हुई। वह लड़की के विवाह के सिलसिले में स्वामी के कार्य-...ल उत्तर पश्चिमाञ्चल से घर आ रही थी। मौसी की बात को मानने के ...ल कारण के अलावा और एक बात थी, जिसे यहाँ जाहिर करना जरूरी। वन्दना के इतने दिन परदेश में ही व्यतीत हुए हैं, उसकी शिक्षा-दीक्षा ...ी वहीं की है, किन्तु जिस समाज के अन्दर वह है, उसका बड़ा अंश ...कत्ते ही में है, इससे आज भी उसका अधिक परिचय नहीं है। थोड़ा परिचय जो है वह केवल अखबार, मासिक पत्र तथा साधारण साहित्य

..नी उपन्यास के द्वारा। जिनका सदा कलकत्ते आना-जाना होता है, उनकी जबानी बहुत सी बातें बीच-बीच में उसके कानों में पड़ती हैं— अनिला चटर्जी एम० ए०, विनीता बैनर्जी बी० ए०, अनुसूया, चित्रलेखा, प्रियम्बदा आदि बहुतेरे आडम्बरमय नाम और विचित्र कहानियाँ— ..सवीं सदी के नवीनतम मनोभव तथा रोमाञ्चक जीवन-यात्रा का विवरण। किन्तु इसमें कितना अंश सही है और कितना बनावटी, दूर से निःसंशय अनुमान करना उसके लिए मुश्किल था। इसीलिए अपने समाज का एक चित्र उसके मन में था अतिरञ्जित, पेचीदा, और एक था बेहद फीका, इन्हीं तस्वीरों को प्रत्यक्ष परिचय से स्पष्ट और सत्य कर लेने का अवसर मौसी की लड़की प्रकृति के विवाह के सिलसिले में जब मिला, तो वन्दना इसकी उपेक्षा न कर सकी, सहज ही में राजी होकर अपनी मौसी के बाली-गञ्ज वाले घर में आकर उपस्थित हुई। अपने दल के बहुतेरों से उसका परिचय है, विशेषकर प्रकृति ने यहीं के स्कूल-कॉलेजों में पढ़कर बी० ए० उत्तीर्ण किया है, उसकी अपनी सखी-सहेलियों की तादाद भी एकदम कम नहीं है। अपने आने के पश्चात् इस दल के बीच ही वन्दना के कितने ही दिन बीते। पिता अनाथराय बम्बई लौट गये लेकिन सुधीर कलकत्ता में ही रहा। निकट आये विवाह का आनन्दोत्सव नित्य ही चलता रहा, उस दिन बेलघरिया के एक बगीचे में पिकनिक खत्म करके दल के साथ घर लौटने के रास्ते में वह द्विजदास की खबर लेने के लिए इस घर में आ उपस्थित हुई थी। उस दिन विप्रदास को यही खबर अन्नदा ने दी थी।

दल के लोगों का मौसी के घर में आना-जाना, खाना-पीना, बातचीत की कमी नहीं। आज भी बहुतेरों की चाय की दावत थी। मेहमान लोग आ पहुँचे हैं, ऊपर के कमरे में धूमधाम के साथ चाय-पानी चल रहा है इसी वक्त विप्रदास की शानदार मोटर आकर अन्दर दाखिल हुई। नौक.. चौकन्ने हो गये, किन्तु शोफर के फाटक खोलने पर जो प्रौढ़ महिला उत.. उसकी साधारण वेशभूषा और साधारण पहनावा देखकर सभी अचम्भि.. और परेशान थे। मोटर से महिला का सामञ्जस्य नहीं है। अन्नदा दि.. किनारी की सफेद धोती पहने हुए थी, शरीर पर उसी तरह की एक .. मोटी चादर थी, पैर नंगे, सिर पर के कपड़े ने आधे माथे को ढँक ..

था—मानो वह खुद भी लज्जा-सङ्कोच से कुछ घबराई थी। नौकर-बेयरों की अँगरखा-पगड़ी की सजावट देखकर यह बतलाना मुश्किल है कि कौन कहाँ का है, तब भी सामने वाले आदमी को बङ्गाली समझकर अन्नदा ने पूछा—वन्दना दीदी घर में हैं?

वह बङ्गाली ही था, बोला—'ऊपर चाय पी रही हैं, आप बैठिए।'

'नहीं, मैं यहीं खड़ी हूँ, क्या तनिक सूचना दे सकोगे?'

'अवश्य, कहना क्या होगा?'

'जाकर कहना कि विप्रदास बाबू के घर से अन्नदा आई है।'

बेयरा चला गया, वन्दना ने फौरन नीचे अन्नदा को हाथ पकड़कर घर में ला बैठाया। ऐसा उसने कभी किया नहीं है, भूल गई कि सामाजिक स्तर में यह विधवा उससे बहुत छोटी है—उस घर की दासी मात्र है। अकारण ही उसके नेत्रों मे जल भर आया, बोली—'अनु दीदी, यह मैंने नहीं सोचा था कि मेरी खबर लेने आओगी। सोचा था, तुम लोग मुझे भूल गये होगे।'

'क्यों भूलूँ दीदी, भूली नहीं हूँ। बड़े बाबू ने आपके पास मुझे यह कहने भेजा है कि ···।'

'नहीं अनु दीदी, मुझे 'आप' कहने से अब बोलूँगी नहीं।'

अन्नदा ने उज्र नहीं किया, केवल हँसकर बोली—'उन लोगों को पाला-पोसा है इसीलिए 'तुम' कहकर बुलाती हूँ, नहीं तो उस घर की सेविका ही तो हूँ।'

वन्दना ने कहा—'भले ही हो, किन्तु मुखोपाध्याय जी को कलकत्ते आये तो पाँच-छः दिन हो गये, स्वयं क्या एक बार आ नहीं सकते थे? उन्हें मालूम है कि मैं बम्बई नहीं गई।'

हाँ, उन्होंने यह खबर मेरी जबानी सुनी है। किन्तु जानती तो हो दीदी कि उन्हें कितना काम रहता है। बिलकुल भी अवकाश नहीं था।'

वन्दना को यह सुनकर प्रसन्नता नहीं हुई, बोली—'काम तो सभी को रहता है अनु दीदी। हम गये थे इसीलिए भद्रता के बहाने तुम्हें उन्होंने भेजा है वर्ना मेरी याद भी न आती। उनसे जाकर कहो कि मेरी मौसी के पास उन लोगों जैसा ऐश्वर्य नहीं है, फिर भी मेरी खबर लेने

.र एक बार इस घर में पैर धरते तो उनकी जात चली न जाती। :दा भी कम न हो जाती।'

इन सब उलहनों का जवाब देना अन्नदा का काम नहीं है। वह उस में वन्दना से जाने की प्रार्थना करने गई, लेकिन सुनने का सब्र दना मे नहीं है, अन्नदा की अधूरी बातों के बीच ही बोली—'नहीं नु दीदी, यह हो नहीं सकता। मुझे कहीं जाने के लिए अवकाश नहीं। परसों मेरी बहिन का विवाह है।'

'परसों?'

'हाँ परसों।'

इस अवसर पर बीमारी की सूचना देना उचित है या नहीं अन्नदा ोच रही थी किन्तु वन्दना उसी समय पूछ उठी—'मुझे आने का आदेश कसने दिया? छोटे बाबू ने तो नहीं, शायद बड़े बाबू ने? जाकर उनसे हना कि आदेश करते-करते उनकी आदत बिगड़ गई है। मै कर्जदार ी नहीं हूँ, उनकी जमींदारी की प्रजा भी नहीं हूँ। स्वय आकर मुझसे ाग्रह करना चाहिए। मझली दीदी अच्छी हैं न?'

'हाँ, अच्छी है।'

'और लोग?'

अन्नदा ने कहा—'खबर आई कि लड़का बीमार है।'

'कौन बीमार है—बासु? उसे हुआ क्या है?'

'मुझे ठीक तरह मालूम नहीं।'

चिन्तित होकर वन्दना ने कहा—'लड़का बीमार है फिर भी मुखोपाध्यायजी खुद न जाकर यहाँ कैसे बैठे हुए हैं? अदालत-मुकदमे और रुपये पैसे के प्रति आकर्षण ही उनका इतना ज्यादा है अनु दीदी! कुछ हिताहित ज्ञान भी तो होना चाहिए।'

अन्नदा ने कहा—'रुपये का मोह नहीं दीदी, आज दो रोज से वह स्वयं भी खाट पकड़े हुए हैं। लड़के की बीमारी से लोग वहाँ परेशान हैं, खबर नहीं दी जा सकती, किन्तु यहाँ दत्तजी भी नहीं है—वह ढाका गये हैं, मैं अकेली मूर्ख औरत कुछ जानती-बूझती नहीं, डरती हूँ कि कहीं रोग बढ़ न जाय। शादी हो जाने पर तनिक आ सकोगी नहीं दीदी?'

वन्दना ने आशङ्का से पूछा—'डॉक्टर आये हैं ? वह क्या कहते हैं ?'

'कहा है कि भय की बात नहीं, लेकिन साथ ही डॉक्टर बुलाने के लिए भी कह गये।' अन्नदा के नेत्र जल से भर गये, वन्दना हाथ दबाकर बोली—ये दोनों दिन किसी भी तरह बिता लूँगी, लेकिन शादी हो जाने पर भी क्या जाओगी नहीं ? हम लोगों पर नाराज ही रहोगी ? तुम लोगों का कहाँ क्या हो रहा है, यह मेरे जानने की बात नहीं है, जानती भी नहीं, किन्तु यह जानती हूँ कि गलती चाहे और किसी ने क्यों न की हो, लेकिन विपिन ने कभी नहीं की। उसके न जानते गलती हो सकती है, लेकिन जान लेने पर नहीं हो सकती।'

क्षण भर चुप रहकर वन्दना उठ खड़ी हुई, बोली—'चलो मैं अभी चलती हूँ।'

'अभी चलती हो ?'

'हाँ, अभी नहीं तो फिर ?'

'घर में कहकर नहीं जाओगी ? लोग चिन्तित होंगे तो ?'

'कहने जाऊँगी तो देर हो जायगी। तुम चलो अनु दीदी।' कहकर वह प्रतीक्षा न करके मोटर मे जा बैठी। सकेत से बेयरे को बुलाकर कह दिया मौसी से कहने के लिए कि वह मझली दीदी के घर गई, वहाँ विप्रदास बाबू बीमार हैं।

विप्रदास के कमरे मे आकर जब वन्दना ने प्रवेश किया, तब दिन ढल चुका था, किन्तु चिराग का वक्त नहीं हुआ था। विप्रदास तकियों को इकट्ठा करके दीवार के सहारे बिस्तर पर बैठा हुआ था। चेहरा देखकर ऐसा नहीं जान पड़ता था कि बीमार ज्यादा है। मन ही मन चैन की साँस लेकर कहा—'मुखोपाध्याय जी, प्रणाम स्वीकार करें। मझली दीदी उपस्थित होतीं तो नाराज होतीं, कहतीं—गुरुजनों की पदधूलि लेकर ही प्रणाम करना चाहिए। किन्तु छूने मे भय लगता है कि कहीं छू न जायँ !'

विप्रदास चुप रहा, केवल थोड़ा हँस दिया। वन्दना बोली—'क्यों बुलवा भेजा है—सेवा करने के लिए ? अनु दीदी कह रही थी, दवा पीने का समय हो गया है। किन्तु यह मामला क्या है ? डॉक्टरी दवा की शीशी क्यों ? वैद्य की गोली कहाँ ? आपको डॉक्टर बुलाने की सलाह किसने दी ?'

विप्रदास ने कहा—'हमारी भाषा में 'प्रगल्भ' नाम का एक शब्द उसका अर्थ मालूम है वन्दना ?'

वन्दना ने कहा—'मालूम है जी मालूम है। आदमी होकर जो आदमी को नफरत से नहीं छूते, उन्हीं को कहते हैं।'

'क्या उनसे बढ़कर प्रगल्भ दुनिया में और कोई है ?'

विप्रदास ने कहा—'है। जिनमें झूठ-सच के परख करने का सब्र नहीं है, बेकार ही निर्दोष को डङ्क मारकर जो वाहवाही चाहते हैं, उस दल की प्रधान मुखिया तुम स्वयं हो।'

'जरा बतलाइए तो किस निर्दोष व्यक्ति को डङ्क मारा है। सुनूँ तो ?'

'बतलाने की मुझे आवश्यकता न होगी वन्दना, वक्त आने पर तुम खुद जान जाओगी।'

'अच्छा, उसी दिन की इन्तजारी में रही।' कहकर वन्दना पलङ्ग के पास एक कुर्सी खींचकर बैठ गई, बोली—'बतलाइए।'

'अच्छा हूँ, किन्तु ज्वर अभी है। जान पड़ता है, रात को कुछ और बढ़ेगा।'

'फिर मुझे क्यों बुलवाया ? मेरी क्या आवश्यकता है ?'

'आवश्यकता मुझे नहीं, अनु बहिन को है, वह डर गई है। उससे मालूम हुआ कि परसों तुम्हारी बहिन की शादी है। शादी खतम हो जाने पर एक दिन आना। तुम्हारी मझली दीदी ने खबर भेजी है, सुना दूँगा।'

'क्या आज नहीं सुना सकेंगे ?'

'आज नहीं।'

दो-एक मिनट तक वन्दना चुप बैठी रही, फिर बोली—'मुखोपाध्याय जी, आपकी बीमारी भयङ्कर नहीं है, दो दिन में ही अच्छे हो जाओगे। मैं जानती हूँ कि मेरी आवश्यकता नहीं है, फिर भी आपकी सेवा के निमित्त ही मै रहूँगी, वहाँ वापस नहीं जाऊँगी। अपना बक्स लाने के लिए आदमी भेज दिया है, आपत्ति नहीं कर सकेंगे ?'

हँसकर विप्रदास बोला—'किस बात की आपत्ति वन्दना, तुम्हारे रहने की, लेकिन बहिन की शादी है न ?'

'मेरे साथ तो शादी है नहीं—मेरे न जाने पर भी बहिन की

रुक नहीं सकती।'

'क्या सचमुच शादी में रहोगी नहीं?'

'नहीं।'

'लेकिन इसी के लिए तो कलकत्ते में ठहर गई हो?'

वन्दना ने कहा—'बम्बई जा रही थी, स्टेशन से लौट आई, किन्तु एक दम इसी के लिए ही नहीं। दूर रही हूँ, अपने समाज के प्रायः किसी को पहचानती नहीं, लोगों के मुँह से कितनी बातें सुनती हूँ, कहानी-उपन्यासों में क्या-क्या पढ़ती हूँ, उनसे अपना मेल नहीं बैठा सकी हूँ, लगता है जैसे हम समाज से निकाले गये हैं। मौसी ने बुलाया, सोचा प्रकृति की शादी के उपलक्ष में अचानक जो अवसर मिल गया और नहीं मिलेगा। इसीलिए वापस चली आई।'

हँसकर विप्रदास ने कहा—'किन्तु वह शादी जो बाकी है, अभी दल के लोगों को पहचानने का अवसर कहाँ मिला?'

'पूरा अवसर नहीं मिला है, यह सच है, किन्तु जितना मिला है, मेरे लिए उतना ही बहुत है।'

'इनसे अपने साथ कितना मेल हुआ वन्दना? बता सकती हो?'

वन्दना हँसकर बोली—'आप चंगे हो जायें, तब खुलासा बताऊँगी।'

नौकर चिराग जला गया। सिरहाने की खिड़की बन्द करके वन्दना ने औषधि पिलाई। बोली—'अब बैठना नहीं, लेट जाइए।' इतना कहकर सिकुड़े बिस्तर को झाड़कर तकियों को ठीक कर दिया। विप्रदास के लेट जाने पर पैर से छाती तक चादर से ढँककर बोली—'अच्छे हो जाने पर अपने को पवित्र करने के लिए न जाने कितना गोबर-गङ्गाजल आपके लिए लगेगा!'

दोनों हाथों को फैलाकर विप्रदास ने कहा—'इतना! लेकिन अचरज की बात यह है कि सेवा-शुश्रूषा करना कुछ जानती हो देखता हूँ।'

'थोड़ा जानती हूँ। लेकिन नहीं मुखोपाध्याय जी, यह हो नहीं सकता! इस विषय में आपको तनिक और खबर लेनी होगी।'

'यानी…?'

एक और खबर लेनी होगी।'

'यानी...?'

'यानी हमारी बुराई ही अगर करने है तो जानकारी हासिल करके करनी होगी। इस प्रकार आँखें बन्द कर मनमाना मैं बोलने नहीं दूँगी।'

विप्रदास ने परिहास की दबी हुई हँसी हँसकर कहा—'यह 'हमारे' कौन हैं वन्दना? किसके विषय में और जानकारी हासिल करनी होगी? जनके यहाँ से अभी-अभी भाग आई, उनके विषय में?'

'मैं भाग आई हूँ, यह कहता कौन है?'

'मैं कहता हूँ।'

'कैसे मालूम हुआ आपको?'

'तुम्हारा मुँह देखकर।'

क्षण भर वन्दना उसके मुख की तरफ देखकर बोली—'द्विजू बाबू ने एक दिन कहा था कि भैया की आँखों से कुछ छूटता नहीं। बात कितनी सच है, मैंने यकीन नहीं किया था। आपकी बीमारी मैं नहीं चाहती थी, किन्तु इसने सचमुच ही मेरा उद्धार किया है। सचमुच ही भागकर मैंने रक्षा पाई है। जितने दिन आप बीमार रहेंगे, मैं आपके ही पास रहूँगी, इसके बाद सीधी पिता जी के पास चली जाऊँगी—मौसी के घर अब नहीं आऊँगी। दूर से जिन्हें देखने की इच्छा थी, अब ऐसी इच्छा नहीं है कि एक दिन भी उनके यहाँ बिना आऊँ।'

विप्रदास चुपचाप देखता रहा। वन्दना कहती गई—'वे साड़ी, गाड़ी और झूठे प्रेम की गप्प मारती हैं। कहाँ नैनीताल और कहाँ मसूरी के वे होटल! उनकी जबान पर उनके कैसे बेहूदे इशारे रहते हैं, सुनते-सुनते भाग जाने की इच्छा होती थी। आज इस घर में बैठे यही जान पड़ रहा है कि ये कई दिन मानो बराबर अस्त-व्यस्त, गर्द-रेत की आँधी में बीते हैं। वे कैसे जीवित रहती हैं मुखोपाध्याय जी?'

विप्रदास ने कहा—'यह रहस्य मैं कैसे जान सकता हूँ। शायद उसी तरह जैसे रेगिस्तान में कब्र बनी रहती है।'

लम्बी साँस लेकर वन्दना ने कहा—'दुःख की जिन्दगी है। उनमें न तो धैर्य है और न किसी धर्म की परवाह। कुछ भी भरोसा नहीं करतीं;

केवल शक करती हैं।' थोड़ा रुककर बोलीं—'अखबार पढ़ती हैं, वे जानती हैं बहुत कुछ। दुनिया में कहाँ क्या हो रहा है, सब कुछ उन्हें मालूम है। किन्तु उन्हें तो मैं पढ़ती नहीं। इसी कारण आधी बातें तो समझ ही में न आती थीं। सुनते-सुनते जब सिर में पीड़ा होने लगती थी, तब वहाँ से हट जाने पर चैन पड़ती थी। किन्तु वे थकती नहीं, बकते-बकते वे सभी मानो मतवाली हो जाती थीं।'

'लेकिन वन्दना, अगर तुम्हारे पिता जी साथ होते तो सुविधा होती। अखबार की सारी खबरें उनसे पूछकर जान लेती— उनके सामने लज्जित न होना पड़ता।'

हँसकर समर्थन करते हुए वन्दना ने कहा— 'हाँ, पिता जी को यह बीमारी है। सारी खबरें पढ़े बिना उन्हें शान्ति नहीं मिलती। किन्तु हम लड़कियों को आवश्यकता क्या है बतलाइए न? दुनिया में दिन रात, कहाँ क्या हो रहा है यह जान कर क्या मिलेगा?'

'तुम्हारी मझली दीदी को यह शोभा देती है, वन्दना, तुम्हारे मुख से नहीं।' हँसकर विप्रदास ने कहा।

वन्दना बोली—'क्या वे मेरी मझली दीदी से ज्यादा जानती हैं ऐसा आप समझते हैं? कुछ भी नहीं! गगरी आधी भरी होने के कारण से ही छलकती है। उनके विषय में और कुछ न जान सकी होऊँ लेकिन यह जान लिया मुखोपाध्याय जी।'

'आखिर ज्ञान तो चाहिए।'

'नहीं, न चाहिए। ज्ञान के डींग से उनके मुख का शहद जहर बन रहा है। मालूम है उन्हें मेरी मझली दीदी की तरह सबको प्यार करना? नहीं जानतीं। क्या मझली दीदी की तरह श्रद्धा कर सकती हैं? नहीं कर सकतीं। कोई मित्र भी है? शायद कोई है नहीं, ऐसा है आपस में विद्वेष। उनकी कमी भी क्या है। बाहरी आडम्बर से जान ही न पड़ेगा कि अन्दर से वे इतनी खोखली हैं। उछल-कूद वे क्यों मचाती हैं? उनका सारा भेदभाव तो घुन से जर्जरित हो गया है।'

हँसकर विप्रदास ने कहा—'बस ठहरो वन्दना, इतना क्रोध क्यों? किसी ने रकम तो नहीं ठग ली है?'

'नहीं, ठग नहीं ली, उधार ली है।'

'कितनी ?'

'अधिक नहीं, चार-पाँच सौ।'

'जानती हो न उनका नाम ?'

'पहले याद था, लेकिन अब भूल गई। हँस कर वन्दना ने कहा—छिः ! छिः ! इतनी थोड़ी जान-पहचान में भी कोई किसी से रुपये माँग सकता है, यह मैं सोच भी नहीं सकती। बोलने में जबान रुकती नहीं, शर्म रेखा भी नेत्रों में नहीं दिखाई देती, मानो यह उनके लिए नित्य की बात है ! यह मुमकिन होता है मुखोपाध्याय जी !'

विप्रदास का मुख गम्भीर हो गया। थोड़ी देर तक चुप रह कर बोला—'उन्होंने तुम्हारे दिल को बहुत विषैला बना दिया है, वन्दना, किन्तु सभी ऐसे नहीं हैं, मौसी जी का दल ही तुम्हारा सारा दल नहीं है। जो बाहर रह गये, शायद उन्हें भी किसी दिन खोजने पर पाओगी।'

वन्दना ने कहा—'पाती हूँ तो शायद अच्छा ही होगा, तब अपनी धारणा में संशोधन कर लूँगी, किन्तु जिन्हें देखा वे सभी शिक्षित हैं, सभी पदस्थ लोगों के नातेदार हैं। कहानी-उपन्यास की रङ्गीन भाषा में सज्जित होकर ये दूर से मेरी दृष्टि में कैसी आश्चर्यमय मालूम होती थीं ! मन में सीमा नहीं था, सोचती थी हमारी लड़कियों के पिछड़े रहने का कलङ्क अब दूर हुआ। अब मेरा वह भ्रम दूर हुआ मुखोपाध्याय जी।'

हँसते हुए विप्रदास ने कहा—'किस बात का मोह ? ये तेजी से बढ़ चली हैं यह तो असत्य नहीं है।'

वन्दना ने हँसकर कहा—'नहीं, असत्य क्या होगा, सत्य ही है। फिर भी मेरे लिए सन्तोष की बात यह है कि इनकी तादाद बहुत कम है, इनका किले के मैदान में मनुमेंट पर चढ़कर शोर-गुल मचाना जितना व्यर्थ है, उतना ही हास्यकर।'

विप्रदास ने कहा—'और एक तरह की यह तुम्हारी कट्टरता है। अपना धर्म छोड़ने में भय है वन्दना—सावधान !'

इस बात पर वन्दना ने गौर नहीं किया, कहती गई—'इस तुच्छ दल के बाहर है बङ्गाल का विशाल महिला-समाज। आज भी मैंने उसे नहीं

देखा, शायद बाहर से देखा भी नहीं जा सकता, फिर मालूम होता है कि हवा की तरह वे ही बङ्गालियों की साँस में घुली-मिली हैं। जानती हूँ, इनमें छोटी-बड़ी हैं—बड़ा दृष्टान्त हैं मेरी मझली दीदी, उनकी सास, इस बार कलकत्ता आना मेरा सार्थक हुआ मुखोपाध्याय जी। क्यों हँस रहे हैं?'

'रुपये का शोक आदमी को किस तरह वक्ता बना देता है यही सोचता हूँ। मुझमें भी यह दोष है।'

'किन रुपयों का शोक—उन पाँच सौ का?'

'जान तो यही पड़ता है।'

हँसकर वन्दना बोली—'रुपयों के लिए अब घबराहट नहीं। आपकी सेवा करके मजदूरी में दूना वसूल करके रहूँगी। अगर आप न देंगे तो माँ से वसूल करूँगी।'

कमरे में घुसकर अन्नदा ने कहा—'आठ बज रहे हैं, विपिन के भोजन का समय हो गया।'

परेशान होकर वन्दना ने कहा—'चलो अनु बहिन चल रही हूँ, क्यों, जाऊँ मुखोपाध्याय जी?'

हँसकर विप्रदास ने कहा—'जाओ। किन्तु सेवा में गलती होने पर मजदूरी काट ली जायगी।'

'गलती नहीं होगी।' इतना कहकर वह बाहर निकल गई

अठारहवाँ परिच्छेद

वन्दना ने पूछा—'भोजन तैयार है, ले आऊँ?'

हँसकर विप्रदास बोला—'तुम बराबर मेरी जान लेने का प्रयत्न कर रही हो। लेकिन सन्ध्या-प्रार्थना अभी तक नहीं की, पहिले उसका प्रबन्ध करवा दो।'

'मैं स्वयं कर दूँ मुखोपाध्याय जी?'

'वर्ना वहाँ और कौन है जो करे? लेकिन माँ के पूजा घर में नहीं जा सकता, शरीर में शक्ति नहीं है—इसी कमरे में कर देना होगा। पहले

देखूँगा कैसा प्रबन्ध करती हो, कोई त्रुटि रहती है या नहीं, तब विचार कर देखूँगा कि भोजन तुम लाओगी या हमारे महाराज।'

वन्दना सुनकर फूली न समाई, बोली—'मैं इसी शर्त पर राजी हूँ। अगर परीक्षा में पास हो जाऊँ तो झूठे बहाने से फेल नहीं कर पावेंगे। वादा कीजिए।'

'वादा किया! लेकिन मुझे अपने हाथों का बना खिलाने से तुम्हें क्या लाभ होगा?'

'यह मैं बतलाऊँगी नहीं।' कहकर वन्दना तेजी से चली गई। दस मिनट के भीतर उसने स्नान कर अन्दर प्रवेश किया। कमरे के जिस तरफ खुली खिड़की से पूरब की धूप आकर पड़ रही है, उसी स्थान को जल से अच्छी तरह धोकर अपने आँचल से पोंछ दिया। पूजा-घर से आसन वगैरह लाकर सजाया, धूपदानी लाकर धूप जलाई, फिर विप्रदास की धोती, अँगौछा और हाथ मुँह धोने के बर्त्तन ला उसके पास रखकर बोली—'आज फूल तोड़ कर माला गूँथने का वक्त नहीं है, वर्ना गूँथ देती, कल यह गलती नहीं होगी। किन्तु आधा घण्टा वक्त दिया इससे ज्यादा नहीं। अभी नौ बजे हैं। ठीक साढ़े नौ बजे फिर आऊँगी। इसके बीच आपको कोई कष्ट नहीं देगा।' कहकर वह द्वार बन्द कर चल दी।

विप्रदास कुछ नहीं बोला, केवल देखता रह गया। आध घण्टे के बाद वन्दना जब लौट आई, तब सन्ध्या-प्रार्थना समाप्त करके विप्रदास एक आराम कुर्सी के सहारे बैठा हुआ था।

'पास या फेल, मुखोपाध्याय जी?'

'पहले दर्जे में पास। मेरी माँ को पराजित कर दिया है किसका साहस है जो तुम्हें म्लेच्छ कहे, केवल म्लेच्छों के स्कूल कॉलेज में पढ़कर बी० ए० पास किया है।'

'तो अब भोजन लाऊँ?'

'लाओ, किन्तु उसके पहले इन्हें धर आओ।' कहकर विप्रदास कोशा-कोशी वगैरह को दिया—'यह मुझे कहना नहीं होगा, महाशय—जानती हूँ।' कहकर पूजा के बर्तनों को हाथों में उठा लिया। ऐसे में कमरे के बाहर बरामदे में ऊँची एड़ी के जूतों का खट्खट् स्वर एका-

नों में पड़ा और दूसरे क्षण अन्नदा द्वार से गर्दन बढ़ाकर बोली—
'वन्दना दीदी, तुम्हारी मौसी···।'

इतने में ही मौसी और दो-तीन लड़कियाँ एकदम अन्दर आ पहुँचीं, विप्रदास ने उठकर कहा—'बैठिए !'

मौसी बोलीं—'नीचे ही खबर मिली, अच्छे हैं—विप्रदास बाबू···!'

विप्रदास ने कहा—'हाँ, अच्छा हूँ।'

आगन्तुक लड़कियों ने वन्दना को देखा तो बहुत आश्चर्य हुआ, पैरों में जूते नहीं हैं, बदन पर कुर्त्ता नहीं, भीगे बालों से कन्धे की साड़ी तर हो गई है। खुले काले बाल पीठ पर फैले हुए हैं, दोनों हाथों में पूजा की सामग्री, उसकी यह मूर्ति उनकी केवल पहले की अनदेखी अपरिचित ही नहीं है, अचिन्तनीय भी है। वन्दना बोली—'द्वार छोड़ कर आप लोग जरा हट जायँ, मैं जाकर इन्हें रख आऊँ।'

एक लड़की बोल पड़ी—'छू जायगा।'

'हाँ !' कहकर वन्दना चल दी।

पलभर के बाद उसी वेश में ही आकर विप्रदास की कुर्सी से लगकर खड़ी हो गई। मौसी ने कहा—'हमें बिना बतलाये ही तुम चली आईं, इसके लिए बड़ा क्रोध आया किन्तु आज तुम्हारी बहिन की शादी है, तुम्हें चलना पड़ेगा।'

दोनों लड़कियों ने कहा—'आपको पकड़ ले जाने के लिए हम आई हैं।'

वन्दना ने कहा—'नहीं मौसी जी, मेरा जाना न हो सकेगा।'

'क्या कह रही हो वन्दना ! न जाने से जानती हो प्रकृति को कितना दुःख होगा ?'

आश्चर्य और दुःख से बेचैन होकर मौसी ने कहा—'किन्तु इसीलिए तुम्हारा बम्बई जाना नहीं हो सका इसीलिए तुम्हारे पिता तुम्हें मेरे पास छोड़ गये। बतलाओ तो, वे सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?'

उस लड़की ने कहा—'इसके अलावा सुधीर बाबू—मिस्टर डाटा—बहुत गुस्सा हुए हैं। आपका चला आना उन्हें बिलकुल अच्छा न लगा।'

उसकी तरफ वन्दना ने देखा। लेकिन जवाब दिया मौसी जी को मेरे न जाने से प्रकृति की शादी रुकी न रहेगी, पर जाने से मुखोपा— जी की सेवा-शुश्रूषा में कमी होगी। यहाँ उनकी देख-भाल करने को कोई है नहीं।'

'किन्तु वह तो चंगे हो गये हैं। तुम्हें जाने के लिए उन्हें कह— चाहिए।' कहकर मौसी ने विप्रदास की तरफ देखा। विप्रदास ने हँसकर कहा—'ठीक है। मुझे जाने के लिए कहना चाहिए, वन्दना को भी जाना चाहिए। बल्कि न जाना ही अनुचित होगा।'

सिर हिलाकर वन्दना ने कहा—'नहीं, मैं नहीं समझती कि अनुचित होगा। आप जाने के लिए कह रहे हैं अच्छी बात है, मैं जाऊँगी लेकिन रात को ही चली आऊँगी, वहाँ रह न सकूँगी। यही सलाह मौसी जी को भी देना।'

'एक रात भी न रह सकोगी?'

'नहीं।'

'यही अच्छा होगा।' कहकर मौसी मन ही मन नाराज होकर दलबल लेकर चल दीं।'

विप्रदास बोला—'देख लिया न तुम्हारी मौसी नाराज होकर चल दीं। अचानक यह तरङ्ग आई कैसे?'

वन्दना ने कहा—'यह जानती हूँ, नाराज होकर गईं लेकिन तरङ्ग में आकर जाना चाह रही हूँ, ऐसी बात नहीं है। उनके सब कुछ से मुझे नफरत हो गई है। इसलिए अब वहाँ जाना नहीं चाहती।'

'वन्दना, यह तो तुम्हारी ज्यादती है।'

'ज्यादती है या नहीं, यह कहना कठिन है। मैं सदैव अपने आप से पूछती हूँ, लेकिन भली प्रकार समझती कि उनके भीतर जाने से मुझे न तो खुशी मिलती है और न शान्ति। एकबार बम्बई में कपड़े की मिल देखने गई थी, मुझे केवल वही बात स्मरण आती है। उसकी कितनी मशीनें, कितने पहिए, इधर-उधर आगे-पीछे बिना रुके घूम रहे हैं, जरा भी चूक जाने से मानो सिर से पैर मरोड़कर उनके अन्दर खींचकर निगल जावेंगे। देखने में वे अच्छे नहीं लगते ऐसा नहीं, फिर भी लगता है कि

पहुँच जायँ तो जान में जान आये । किन्तु अब देर न करूँगी । आपका भोजन लाऊं ?' कहकर बाहर निकलने के लिए तैयार होते ही द्वार के पैरों की गर्द, जूतों का चिह्न दिखाई पड़ा, रुककर खड़ी होकर बोली—भोजन लाना नहीं हुआ मुखोपाध्य यजी, तनिक धैर्य धरना होगा । नौकर से पहले यहाँ से धुलवा लूँ ।' कहकर वह कमरे से बाहर जाने लगी तो विप्रदास ने अचरज से प्रश्न किया—'इतनी बातें किससे सीखी वन्दना ?'

वन्दना को सुनकर भी आश्चर्य हुआ । बोली—'किसने सिखाया यह मुझे स्मरण नहीं है मुखोपाध्याय जी ।' कहकर तनिक चुप रहकर बोली—'शायद किसी ने भी नहीं सिखाया । मुझे खुद ही जान पड़ रहा है कि आपकी सेवा करने के ये अभिन्न अङ्ग हैं, नहीं करने से त्रुटि होगी ।' कहकर वह चल दी ।

सन्ध्या की अभ्यस्थ और यथोचित साज-सज्जा करके, वन्दना विप्रदास के कमरे के खुले द्वार के सामने खड़ी होकर बोली—'मुखोपाध्याय जी, अब मैं जा रही हूँ बहिन की शादी देखने ! मौसी ने छोड़ा नहीं इसलिए जाना पड़ रहा है ।'

विप्रदास ने कहा—'तुम जल्द ही इस अत्याचार का बदला ले सको यही आशीर्वाद देता हूँ । तब उस मौसी को पञ्जाब से घसीटकर बम्बई ले जाना ।'

'मौसी पर क्रोध नहीं है, पर आपको घसीटकर खींच ले जाऊँगी । इसलिए नहीं । किराया हम ही देंगे, आपको नहीं देना पड़ेगा । किन्तु सब इन्तजाम किये जाती हूँ, अन्याय होने पर आकर नाराज होऊँगी ।'

'होगी क्यों नहीं । न होने से ही सबको आश्चर्य होगा । सोचोगी, तबीअत अच्छी नहीं है ! शादी की दावत खाकर शायद बीमार हो गया हूँ ।'

वन्दना हँस पड़ी । सिर हिलाकर बोली—'रहने दीजिए मेरा गुण बखानना । लेकिन यह जाने दीजिए, आप सन्ध्या करने के लिए नीचे न जाइए । इसी कमरे में अनु दीदी सब ला देगी । उसके आधा घण्टे के बाद ही महाराज भोजन दे जायगा, एक घण्टे के बाद झण्डू दवा देकर बत्ती बुझा कर द्वार बन्द कर जायगा । यह आदेश सबको दिये जाती हूँ । समझ गये न ?'

'हाँ, समझ गया।'

'तो जाती हूँ।'

'जाओ। किन्तु बहुत अच्छी लग रही हो वन्दना, यह बात ... ही पड़ेगी। बात यह है कि जो पोशाक पहनी है, यही तुम्हारी असली ... जो यहाँ पहने रहती हो वह नकली है।'

'यह क्या कहते हैं मुखोपाध्याय जी, वे कहते हैं कि लड़कियों का जूता पहनना आप देखना भी पसन्द नहीं करते?'

'वे गलत कहते हैं, जैसा कि वे कहते हैं कि मैं तुम्हारे हाथ का नहीं खा सकता।'

ताज्जुब करके वन्दना ने पूछा—'गलत क्यों है मुखोपाध्याय जी, सचमुच ही मेरे हाथ का खाने में उज्र था?'

विप्रदास ने कहा—'उज्र था, किन्तु उज्र सच्चा होता तो वह आज भी रहता, दूर न हो जाता।'

वन्दना की समझ में बात न आई, पर विप्रदास की बात को झूठ समझना भी मुश्किल है। बोली—'द्विजू बाबू ने एक दिन कहा था कि भैया के मन की बात कोई जान नहीं सकता, जो बाहरी है उसी को ही लोग जान सकते हैं, लेकिन जो अन्तर का है, वह अन्तर में ही दबा रहता है। क्या यह सच है मुखोपाध्याय जी?'

उत्तर में विप्रदास ने केवल थोड़ा सा हँस दिया, फिर बोला—'वन्दना तुम्हें देर हुई जा रही है। अगर सचमुच ही इच्छा नहीं है, तो न रहना चली आना।'

'आ ही जाऊँगी मुखोपाध्याय जी, वहाँ नहीं रह सकूँगी!' यह कह वन्दना अब देर न करके नीचे चली गई।

अगले दिन सवेरे भेंट होने पर विप्रदास ने पूछा—'बहिन का ... निर्विघ्न समाप्त हो गया न?'

'हो गया—कुछ विघ्न नहीं हुआ।'

'अपनी ही हठ बनाये रखी, मौसी की बात नहीं मानी! कितनी ... बीते लौटीं?'

'तीन बजे थे रात के। मौसी की बात न मान सकी, रात ही लौटना पड़ा।' तनिक रुककर शायद वन्दना ने सोच लिया कि बो—

[illegible] । एक साल में जो नहीं कर सकी,
[illegible] वह हो गया। सुधीर से समाप्त कर आई।'

[illegible] से विप्रदास ने पूछा 'क्या कहा?'

'[illegible] तो। लेकिन उसे [illegible] में नहीं छोड़ आई हूं। कल सवेरे [illegible] लड़की को देखा था, उसका नाम है हेम। हेमनलिनी राय। उसी के सुपुर्द सुधीर को कर आई। फिर मुझे बम्बई के उसी कारखाने की बात याद हो आती है, उसी तरह उनके यहाँ भी प्रेम की ताना पाई देखते-देखते मनुष्य के भविष्य का निर्माण हो जाता है। और उसी तरह टूटता भी है।'

विप्रदास ने उसी तरह अचरज से पूछा—'मामला क्या हुआ? सुधीर के अचानक समाप्त कर आने का क्या मतलब है?'

वन्दना ने कहा—'समाप्त कर आने का मतलब है समाप्त करना। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वहाँ अचानक नाम की कोई चीज है। उनकी चाल बहुत तेज होने के कारण ही बाहर से 'अचानक' होने का शक होता है। पर असल में ऐसा नहीं। सुधीर ने मुझे बुलाकर कहा—'मुझसे बहुत बड़ी गलती हो गई है', पूछा—'क्या गलती हुई है सुधीर?' वह बोला—'किसी को बताये बिना यानी उसे बिना खबर दिये अचानक इस घर में, मेरा चला आना निन्दित कार्य है। विशेष कर वहाँ जब विप्रदास के अलावा और कोई नहीं है। बोली—'वहाँ अन्नदा दीदी है।' सुधीर ने कहा—लेकिन वह महरी के अलावा तो और कुछ नहीं है।' मैंने कहा—'उस कुटुम्ब में सभी उन्हें बहिन कहते हैं' सुनकर वह हेम नाम की लड़की जरा दबी हुई हँसी हँसकर बोली—'बम्बई में उस तरह बुलाने का रिवाज है सुना है, लेकिन उससे महरी-नौकरों का घमण्ड बढ़ने के अलावा और कुछ नहीं होता। वे स्वयं भी बड़े नहीं हो जाते।' सुधीर ने कहा—'इन लोगों से तुमने कहा है कि यहाँ नहीं रह सकोगी, रात ही को लौट जाओगी। लेकिन उस घर में तुम्हारा अकेले रहना हममें से कोई पसन्द नहीं करता। तुम्हारे पिता जी सुनेंगे तो क्या कहेंगे?' बोली—'पिता जी क्या कहेंगे, यह चिन्ता तुम्हारी नहीं, मेरी है। किन्तु आज भी जो पसन्द

नहीं करते, उनमें क्या तुम स्वयं भी हो ?' हेम ने कहा—
सबको छोड़कर वह अलग तो नहीं हैं। इस लड़की के बिना पूछे सवाल का उत्तर देने की इच्छा नहीं हुई, इसीलिए सुधीर से कहा—तुम्हारी इस बात के उत्तर में मैं भी यह कह सकती थी कि बेकार छुट्टी लेकर तुम्हारा कलकत्ते में रहना मैं भी पसन्द नहीं करती। किन्तु यह मैं नहीं कहूँगी। हेम ने जो भद्दा इशारा किया, वह साधारण असभ्य समाज में ही चलता है, किन्तु तुम्हारे बड़े दल में भी वह इसी प्रकार चलता है, यह मैं नहीं जानती थी, पर मुझे अब फुरसत नहीं है, गाड़ी तैयार है, मैं चली। उस लड़की ने कहा—'जो अशोभन है, अनुचित है उसकी आलोचना छोटे बड़े सभी दलों में चलती है।' बोली—'आप लोगों की जितनी इच्छा हो आलोचना करें. उज्र नहीं। मैं चली।' सुधीर अचानक कैसा हो गया—चेहरा पीला पड़ गया—'अपने को सँभालकर बोला—'अपनी मौसी जी को भी न बताकर जाओगी ?' बोली—'उनको कह दी गया है, शादी हो जाने पर ही मैं जाऊँगी, रात कितनी भी क्यों न हो।'

सुधीर ने कहा—'क्या कल तुमसे एक बार भेंट हो सकती है ?'

बोली—'नहीं।' वह बोला—'परसों ?' बोली—'परसों भी नहीं।'

'उसके अगले दिन ?'

'नहीं, उस दिन भी नहीं।'

'तुम्हें कब समय मिलेगा ?'

'मुझे समय नहीं मिलेगा।'

'किन्तु मुझे जो एक आवश्यक बात कहनी है ?'

'शायद तुम्हें जरूरत है, लेकिन मुझे नहीं है।' कहकर वह चल दी।

'मुझे सुधीर नहीं जानता, साथ आगे बढ़ आने का साहस न हुआ। वहीं चुपचाप खड़ा रहा। मैं आकर गाड़ी में बैठ गई।'

विप्रदास जरा हँसकर बोला—'इसका मतलब क्या समाप्त कर देना है वन्दना ? तनिक-सा झगड़ा। यदि सन्देह है तो भेंट होने पर अपनी मझली दीदी से पूछ लेना।'

वन्दना ने हँसा नहीं, गम्भीर होकर बोला—'किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं मुखोपाध्याय जी। मैं जानती हूँ कि हमारा मामला

उसके मुख की तरफ देखकर विप्रदास हतबुद्धि हो गया—'क्या कहती हो वन्दना, इतनी बड़ी चीज क्या इतने थोड़े में ही समाप्त हो जाती है?' एक बार सुधीर के आघात का ही विचार कर देखा न?'

वन्दना ने कहा—'सोच देखा है, मुखोपाध्याय जी, यह आघात सहने में सुधीर को ज्यादा दिन नहीं लगेंगे, मैं जानती हूँ वही हेम नाम की लड़की ही उसे रास्ता दिखा देगी। किन्तु मैं अपनी बात सोच रही थी। केवल गाड़ी में ही बैठकर सोचा है ऐसा नहीं, कल बिछौने पर लेट कर सारी रात मै सो न पाई। बेचैनी अनुभव की है जरूर, लेकिन मुझे कष्ट बिल्कुल नहीं हुआ है।'

'गुस्सा उतर जाने पर कष्ट होगा। तब इसी सुधीर के लिए ही फिर बाट जोहती रहोगी।' कहकर विप्रदास हँसा। इस हँसी मे वन्दना सम्मिलित नहीं हुई, शान्त भाव से बोली—'गुस्सा मुझे नहीं है। सिर्फ यही दुख होता कि चली आने के समय अगर वही बात मेरे मुँह से नहीं निकलती। दिखा आई कि दोष उसका है, बतला आई मानो मर्माहत होकर मैंने विदा ली। लेकिन यह तो सत्य नहीं है - इस मिथ्याचरण के लिए ही केवल लज्जा अनुभव करती हूँ मुखोपाध्याय जी, और किसी के लिए नहीं!' आखिरी बात कहते-कहते नेत्रों मे जल आ गया।

विप्रदास के मन का आश्चर्य कई गुना बढ़ गया, यह रहस्य इतनी देर के बाद समझ पाया। बोला--'सचमुच ही सुधीर को अब तुम प्रेम नहीं करती हो?'

'नहीं करती।'

'अब तक तो प्रेम करती थीं? इतनी सरलता से यह प्रेम कैसे छूटा?'

'इतनी सरलता से छूटा। इस लिए तो इतनी सरलता से इसका जवाब मिला। वर्ना आप से असत्य बोलना पड़ता।' यह कह कर वह कुछ देर मौन हो देखती रही। बोली—'आपने प्रश्न किया है कि मैंने किसी दिन सुधीर को सचमुच ही प्रेम किया है या नहीं? उस दिन सोचती थी सचमुच ही प्रेम करती हूँ। किन्तु उसके बाद ही और एक आदमी निगाह में आया, सुधीर गुम हो गया। अब देखती हूँ कि वह भी गुम हो गया।

इसे मानना नहीं चाहती है, मानो यह उनके चरित्र को [illegible]
देता है। शायद मैं किसी के सामने 'स्वीकार' नहीं कर सकती थी, ..
न जाने क्यों आपके सामने कोई भी बात करने में मुझे लज्जा नहीं
लगती।'

विप्रदास मौन रहा। वन्दना कहने लगी—'शायद मेरा स्वभाव है, शायद यह मेरी अवस्था का स्वधर्म है, अन्तर शून्य नहीं रहना चाहता : खोजता फिरता है चारों तरफ शायद यह सभी लड़कियों का स्वभाव है, प्रेम का पात्र कौन है, जीवन भर खोज नहीं पाती हैं।' यह कहकर स्थिर होकर मन ही मन मानो कुछ सोचने लगी, इसके बाद ही बोल उठी—'शायद यह खोजने की चीज नहीं है, यह मृगतृष्णा है, मुखोपाध्याय जी!'

उसी तरह विप्रदास चुप रहा। वन्दना की लज्जा तो खुल गई है। कहने लगी—'पिछले वर्ष सुधीर ही के साथ मेरी शादी तय हो गई थी, केवल उसकी माँ की बीमारी की वजह से ही न हो सकी। कल घर जाकर सोच रही थी कि अगर तब शादी हो जाता तो आज क्या मेरा मन उसे इसी प्रकार ठोकर लगा देता? कैसे मन को वश में रखती? धर्म बुद्धि से? संस्कार से? लेकिन अबाध्य मन वश में अगर नहीं रहता, तब जिनके अन्दर ये कई दिन बिता आई क्या बिलकुल उन्हीं की तरह? इस प्रकार के षड्यन्त्र और लुकाछिपी से दिल को भर कर सूखी हँसी हँसकर लोगों को भुलावा देता फिरती? इसी प्रकार आपस की बदनामी करके, डाह करके, शत्रुता करके? किन्तु आप क्यों नहीं बोल रहे हैं मुखोपाध्याय जी?'

विप्रदास ने कहा—'तुम्हारे दिल के भीतर जो तूफान बह रहा है, उसकी भयानक रफ्तार के साथ मैं कैसे चल सकूँगा वन्दना, इसीलिए खामोश हूँ।' वन्दना ने कहा—'नहीं, ऐसा नहीं होगा, इस प्रकार कतराकर मैं आपको न जाने दूँगी, दीजिए न उत्तर।'

'किन्तु बिना शान्त हुए उत्तर देने से क्या लाभ? तुम्हारी आज की दशा स्वाभाविक नहीं है, यह तुम कैसे समझ पाओगी?'

'समझ क्यों न सकूँगी मुखोपाध्याय जी, बुद्धि तो मेरी कहीं चली नहीं गई।'

'चली नहीं गई है लेकिन चकरा गई है। अभी रहने दो, सन्ध्या के बाद सब काम-धाम से फुर्सत पाकर जब मेरे पास आकर स्थिर होकर बैठोगी, तब बताऊँगा, तब इसका उत्तर दे सकता हूँ।'

'तब तो यही ठीक है, इस समय मुझे भी तो फुर्सत नहीं है।' कहकर वन्दना बाहर चली गई। असल में उसके कामों का ठिकाना नहीं। अन्नदा सवेरे छुट्टी लेकर कालीघाट गई है, आज उसके काम उसी के कन्धों पर आ पड़े हैं। कितने नौकर-चाकर, कितने ही लड़के यहाँ रहकर स्कूल-कॉलेज में पढ़ते हैं। उनकी कितनी ही तरह की आवश्यकताएँ हैं। अधिक काम के कारण उसे याद भी नहीं रहा कि वह सारी रात नहीं सोई है, आज बहुत थकी हुई है।

सन्ध्या के उपरान्त विप्रदास का भोजन समाप्त हुआ, नीचे की सारी व्यवस्था पूरी करके वन्दना उसके बिस्तर के पास एक कुर्सी पर बैठकर बोली—'एक बात का सही-सही उत्तर दे सकेंगे मुखोपाध्याय जी?'

विप्रदास ने कहा 'अक्सर ऐसा ही तो दिया करता हूँ। क्या प्रश्न है?'

वन्दना ने कहा- 'आप मझली बहिन को क्या सचमुच ही प्रेम करते हैं? लड़कपन में आप लोगों की शादी हुई बहुत दिनों की बात है, क्या इसमें कभी विपरीत नहीं हुआ है?'

विप्रदास चुप रह गया। ऐसी बात किसी के दिल में आ सकती है, उसका खयाल भी उसने नहीं किया था। किन्तु अपने को सँभालकर हँसकर बोला—'अपनी मझली बहिन से ही पूछना यह प्रश्न।'

वन्दना ने कहा—'वह कैसे जानेगी? सुना है आपके दिल की असली बात कोई नहीं जान सकता। न बतलाना चाहते हों तो न बतलाएँ, मैं किसी प्रकार समझ लूँगी, अगर बतलाएँ तो सत्य बात ही आपको बतलानी पड़ेगी?'

'तब सत्य ही बतलाऊँगा, लेकिन क्या तुम मुझपर सन्देह करती हो?'

'अवश्य। आप बहुत बड़े आदमी हैं, लेकिन फिर भी आदमी हैं।

जान पड़ता है कहीं मानो आप एकदम अकेले हैं, वहाँ आपका कोई भी साथी नहीं। क्या यह बात सत्य नहीं?'

विप्रदास ने इस सवाल का जवाब ठीक-ठीक नहीं दिया, बोला—'स्त्री को प्रेम करना तो मेरा धर्म है वन्दना।'

वन्दना ने कहा—'जहाँ तक धर्म फैला हुआ है वहाँ तक आप बड़े हैं, किन्तु क्या संसार में उससे भी बड़ा कुछ है नहीं?'

'दृष्टि में तो नहीं आता वन्दना?'

वन्दना ने कहा—'मेरी दृष्टि में आता है, मुखोपाध्याय जी! वह बात बतलाऊँ?'

विप्रदास का चेहरा अचानक पीला पड़ गया, मेरे गोरे चेहरे पर मानो खून का नाम भी नहीं, दोनों हाथों को सामने बढ़ाकर बोला—'नहीं, एक बात भी नहीं वन्दना। तुम अपने कमरे में जाओ, कल हो, परसों हो, फिर जब प्रकृतिस्थ होगी आलोचना की बुद्धि लौट आयेगी, तब इसका उत्तर दूँगा। तब शायद स्वयं ही जान जाओगी कि जिन्होंने मौसी के घर में तुम्हारी बुद्धि को छिपाया है, वे ही सब कुछ नहीं हैं। धर्म जिनके लिए अत्याज्य है वे भी हैं, संसार में वे भी रहते हैं। नहीं-नहीं, अब जाओ, दलील न करो।'

वन्दना जान गई कि इस आदेश का तिरस्कार नहीं किया जा सकता। यह तो वही चीज है जिससे घर के सब लोग डरते हैं। वन्दना बिना बोले कमरे से बाहर निकल गई।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

अगले दिन सन्ध्या समय वन्दना ने आकर कहा—'मुखोपाध्याय जी, फिर जा रही हूँ मौसी जी के यहाँ! अब की बार कई घण्टे के लिए नहीं, बल्कि जब तक मौसी मुझे बम्बई भेजने का इन्तजाम नहीं कर देती उतने समय के लिए।'

'यानी?'

'यानी आवश्यक तार आया है, पिता जी का आदेश है कल ही सवेरे मौसी मुझे ले जाने के लिए गाड़ी भेजेगी।'

विप्रदास ने कहा- 'यानी मालूम हुआ कि तुम्हारी मौसी में प्रतिशोध का उत्साह और बुद्धि है। शायद यह उन्हीं के जवाबी तार का उत्तर है।

'नहीं, इसे मैं आपको नहीं दिखा सकती।'

विप्रदास ने सुना तो पल भर चुप रहा, फिर थोड़ा हँसकर बोला—'भगवान् किसी का घमण्ड सहन नहीं करते, यह उसी का उदाहरण है। इतने दिनों तक धारणा थी मुझे कि समेटा नहीं जा सकता, लेकिन देखता हूँ समेटा जा सकता है। कम से कम ऐसे आदमी भी हैं। तुम्हारी मौसी की बुद्धि में फन्द सूझा है। दीजिए न, पढ़ देखूं जुर्म कितना गम्भीर है' कहकर उसने हाथ लपकाया। अबकी बार वन्दना ने तार उसे दे दिया।

राय साहब का लम्बा-चौड़ा तार है—तार को आदि से अन्त तक पढ़कर उसे लौटाकर विप्रदास बोला—'कुछ भी सही, लेकिन तुम्हारे पिता ने अनुचित कुछ भी नहीं लिखा है। निःस्वार्थ परोपकार में भय रहता है बीमार आत्मीय की सेवा करने आना भी दुनिया में सरल काम नहीं।'

वन्दना ने पूछा—'क्या आप मुझे मौसी के घर ही लौट जाने की राय देते हैं?'

'तुम्हारे पिता का आदेश तो यही है वन्दना। यह तो बलरामपुर के मुखोपाध्यायों का कुटुम्ब नहीं है—आदेश देने वाले मालिक यहाँ तुम्हारे मुखोपाध्याय नहीं हैं—मौसी हैं—और आदेश दिया है दूसरे के मुँह से; इसलिए पालन करना ही होगा।'

वन्दना ने कहा—'आप तो यह कहेंगे ही। पिता जी को कुछ भी नहीं मालूम, फिर भी यह आदेश, उचित-अनुचित कुछ भी हो, मानना होगा?' मौसी का घर कहाँ है यह तो आप को मालूम ही है।'

विप्रदास ने कहा—'नहीं मालूम, लेकिन तुम्हारी जबानी सुना है अच्छी जगह नहीं है। मैं चङ्गा होता तो स्वयं बम्बई जाकर तुम्हें पहुँचा आता, परन्तु इतनी ताकत है कहाँ!'

'क्या इस दशा में ही आपको छोड़कर चली जाऊं! जिस मौसी को पहचानती भी नहीं, उसी का हठ बना रहेगा?'

'किन्तु उपाय क्या है?'

'उपाय यह है कि मैं जाऊँगी नहीं।'

'तब तो रहो। एक तार पिता को भेज दो। किन्तु मौसी ले जाने के

लिए आवें तो उनसे क्या कहोगी ?'

वन्दना ने कहा—'केवल यही कहूँगी कि मैं जा नहीं सकती। इससे ज्यादा नहीं।'

विप्रदास ने कहा—'किन्तु तुम्हारी मौसी इतने ही से चुप न होंगी। शायद इस बार घर पर मेरी माँ के पास तार भेजेंगी।'

इसकी उम्मीद वन्दना को नहीं थी, सुनकर चिन्तित हो उठी। बोली—'आप ठीक ही कह रहे हैं मुखोपाध्याय जी, शायद खत्म हो ही गया है—कुछ करने में मौसी ने बचा नहीं रखा है। लेकिन मालूम है क्यों ?'

विप्रदास ने कहा—'जानना तो मुमकिन नहीं है, किन्तु इतने का अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका यह उद्यम बेकार भी नहीं है, सिर्फ तुम्हारी भलाई ही के लिए भी नहीं है। उनके मन में शायद कोई बात है।'

वन्दना ने कहा—'जो है वह मैं जानती हूँ। भतीजा बैरिस्टरी पास करके आया—मौसी ने हमारी बातचीत, परिचय करा दिया है। उनका पक्का विश्वास है कि वही मेरे लिए योग्य वर है। क्योंकि पिता की मैं अकेली बेटी हूँ, जो जायदाद वह छोड़ जायँगे, उसकी आमदनी से कुछ न कमाने पर भी भतीजे का काम मजे में चल जायगा।'

विप्रदास ने कहा—'भतीजे की भलाई की बात सोचना बुआ के लिए कोई दोष की बात नहीं है। लड़का कैसा है देखने में ?'

'अच्छा है।'

'मेरी तरह होगा ?'

वन्दना ने हँसकर कहा—'यह तो आप गर्व की बात कह रहे हैं। मन ही मन अच्छी तरह जानते हैं कि इतना रूप दुनिया में नहीं है। किन्तु इसकी बराबरी करने पर तो संसार की सभी लड़कियों को ही कुँवारी रहना पड़ेगा मुखोपाध्याय जी। सिर्फ आपकी ही तरफ देखकर उन्हें दिन बिताने पड़ेंगे। फिर भी कह सकती हूँ कि अशोक देखने में अच्छा ही है। दोष देखते फिरना मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'तो यह कहो कि पसन्द आ गया ?'

'यदि आया भी है, तो उस पसन्दगी को कोई दोष नहीं समझेगा, इतना कह सकती हूँ।' यह कहकर वन्दना हँसकर उठ खड़ी हुई। बोली—'पाँच बज गये। आपका बार्ली पीने का वक्त हो गया है—जाकर ले आऊँ। इस बीच मे अशोक की बात जरा और सोच ले।' कहकर वह चली गई। पाँच मिनट के बाद जब वह लौट आई, उसके हाथों में चाँदी के कटोरे मे बार्ली थी—बरफ के अन्दर रखकर ठण्डी की हुई—बार्ली में नींबू का रस निचोड़कर कहा—'यह सब पी लेना होगा। रखने से काम नही बनेगा। सेवा की त्रुटि दिखाकर कोई मुझसे कैफियत तलब करेगा, यह मैं न होने दूँगी।'

विप्रदास ने कहा—'जीतने की विद्या सोलहो आने सीख ली है, देख रहा हूँ किसी से भी हारना न पड़ेगा।'

वन्दना ने कहा—'नहीं, कोई पूछेगा तो कहूँगी, मुखोपाध्याय जी पर हाथ साफ करके पक्की हो गई हूँ।'

पानी समाप्त होने पर जूठे बर्तन को लेकर वन्दना चली जा रही थी, लौटकर पूछा—'मेरी एक बात का उत्तर देंगे मुखोपाध्याय जी ?'

'किस बात का उत्तर ?'

'आपको संसार में सब से अधिक कौन प्यार करता है बता सकते हैं ?'

'बता सकता हूँ।'

'तो बतलाइए क्या नाम है उसका ?'

'नाम है वन्दना देवी।'

सुनकर वन्दना क्षण भर में बाहर चली गई, लेकिन लगभग पन्द्रह मिनट के बाद ही फिर लौटकर खाट के पास एक कुर्सी खींचकर बैठ गई। हँसकर विप्रदास ने पूछा—'इस प्रकार क्यों भाग गईं, बोलो ?'

पहले तो वन्दना उत्तर न दे सकी। फिर धीरे-धीरे बोली—'बात न जाने क्यों अचानक सहन न कर सकी मुखोपाध्याय जी, सोचा कि मानो मेरी कोई भद्दी चोरी अचानक आपने पकड़ ली है।'

'शायद इसीलिए इस समय भी सिर उठाकर देख नहीं पा रही हो ?'

हँसना चाहा, किन्तु शर्म से उसका सारा मुख लाल हो गया, बाद आत्म संवरण करती हुई बोली—'आपने इस बात को कैसे जान लिया, बोलिए तो ?'

विप्रदास ने कहा—'यह सवाल बेकार है वन्दना। मैं क्या ऐसा पत्थर हो गया हूँ कि इतना भी नहीं समझ सकता ? इसके अलावा अगर कभी सन्देह था भी तो आज तुम्हारी तरफ देखकर अब तो मुझे नहीं रहा।'

फिर वन्दना ने सिर झुका लिया। विप्रदास ने कहा—'किन्तु यह नहीं हो सकता वन्दना, सिर उठाकर तुम्हे देखना ही होगा। शर्म के योग्य तुमने कुछ भी नहीं किया है, मुझसे तुम्हे शर्माने की कोई आवश्यकता नहीं है। देखो, ऊपर सिर उठाओ, सुनो मेरी बात।'

यह वही आज्ञा है। वन्दना ने सिर उठाकर देखा, पल भर स्तब्ध रह कर बोली—शायद आप मेरे ऊपर बहुत नाराज हैं न मुखोपाध्याय जी...?

विप्रदास ने कहा—'कुछ भी नहीं। यह क्या नाराज होने की बात है ? मुझे सिर्फ यही उम्मीद है कि यह भूल तुम किसी दिन स्वयं ही जान लोगी।'

'उसी दिन ही इसका प्रतिकार होगा।'

'अगर पकड़ मे नही आ सकी और इसे अगर कभी भूल ही नहीं समझ सकी तो ?'

'समझ जाओगी। इससे दुनिया में कितने अनर्थों का आरम्भ होता है, अगर समझ नहीं सकी तो मैं समझूँगा कि तुमने मुझे प्रेम नहीं किया है। सुधीर को प्रेम करने की तरह यह भी तुम्हारी एक तरङ्ग थी, दिल के अन्दर किसी को खींच लाकर केवल हमारे को भुलावा देना। इससे ज्यादा नहीं।'

वन्दना का मुख पल भर मे फक हो गया, अत्यन्त दुखी स्वर में वह बोली—'सुधीर से बराबरी न करे मुखोपाध्याय जी, वह मुझसे सहन न होगा। किन्तु इससे दुनिया मे अनर्थों का श्री गणेश होता है, आपकी यह बात मानती हूँ। यह अमङ्गल को खींच लाता है, किन्तु इसी कारण असत्य बोल कर नहीं। असत्य ही अगर होता तो आपका इतना प्रेम भी क्या पाती ? मैंने क्या नहीं पाया ?'

साँस बन्द किये विप्रदास इन बातो को सुन रहा था, पूछना च

करके सिर उठाते ही वह आश्चर्यचकित होकर बोल उठा—'क्यों नहीं पाया है वन्दना, तुमने बहुत-सा पाया है। वर्ना तुम्हारे हाथों का मैं कैसे खाता? तुम्हारी रात-दिन की सेवा मैं स्वीकार करता किस बूते पर? लेकिन इसीलिए क्या ग्लानि में, अधर्म पर स्वयं उतर आऊँ, तुम्हें खींच लाऊँ? जो लोग मेरी तरफ देखकर सदा विश्वास से सिर ऊँचा किये हुए हैं, सब कुछ तोड़ फोड़कर क्या उन्हें नीचा दिखा दूँ? यही कहना चाहती हो?'

वन्दना कहा—'तो आप भी स्वीकार कीजिए कि आज जो कुछ छोड़ नहीं सकते हैं, वह है केवल अभिमान ही। सच-सच बतलाइए उनकी निगाह में इस बडे बने रहने के मोह को ही आपने बड़ा समझा है। वर्ना ग्लानि किस बात की मुखोपाध्याय जी—किस बात को हम अधर्म समझने जायँ? मनुष्य की एक गढ़न्त व्यवस्था—मनुष्य ने ही जिसे बार-बार माना है, बार-बार तोड़ा है—उसी को? आप चाहे मानें लेकिन मुझसे यह होगा नहीं।'

गम्भीर होकर विप्रदास ने कहा—'तुमसे चाहे न हो, मुझसे होगा, और इसी से हमारा काम चल जायगा। अङ्गरेजी पुस्तकें पहुत पढ़ी हैं वन्दना, मौसी के घर मे आलोचना भी बहुत सुनी है, जान पड़ता है उन्हें भूलने में देर लगेगी।'

वन्दना ने कहा—'आप मेरा मजाक उड़ा रहे हैं, लेकिन मैंने जरा भी मजाक नहीं उड़ाया है मुखोपाध्याय जी, जो कुछ भी कहा है सब सच ही कहा है।'

'अब समझा है। किन्तु यह पागलपन बुद्धि मे घुसा किसने दिया?'

'आपने ही तो।'

'यह कहती क्या हो! यह अधर्म-बुद्धि क्या मैंने ही दी?'

'हाँ, आपने ही दी है। शायद अनजाने, किन्तु आपके अलावा और दूसरा कोई नहीं।'

अब विप्रदास आश्चर्य से चुपचाप देखता रह गया। वन्दना कहने लगी—जिसको अधर्म कह कर बुराई की, उसे तो मैं नहीं मानती—मैं जानती हूँ, धर्म जिसे समझ रहे हैं वह है आपका केवल संस्कार। बहुत

गहरा संस्कार, फिर भी वह उससे बड़ा है नहीं।'

सिर हिलाकर विप्रदास ने स्वीकार करके कहा—'शायद तुम्हारी यह बात सत्य है वन्दना, यह मेरा संस्कार है, बहुत गहरा संस्कार। किन्तु मनुष्य का धर्म जब इस संस्कार का रूप धरता है वन्दना, तभी वह सही होता है, तभी वह सरल होता है। जीवन के कर्त्तव्य में तब मुठभेड़ नहीं होती, उसके मानने के लिए अपने साथ ही सङ्घर्ष करके परेशान नहीं होना पड़ता। तब हो जाती है शान्ति, अबाध जल धारा की भाँति वह सरलता से ही बहता रहता है। शायद उस दिन यही कहा था, यह है विप्रदास का अत्याज्य धर्म—इसमें रद्दोबदल नहीं हो सकता।'

'क्या कभी भी इसमें रद्दोबदल नहीं होता, मुखोपाध्याय जी?'

'समझता तो यही हूँ वन्दना। आज भी सोच नहीं सकता कि इस जीवन में इसका रूपान्तर है।'

इतने समय में वन्दना के दोनों नेत्र भर आये, विप्रदास सावधानी से उसके हाथों को खींच कर बोला—'लेकिन इसके परिवर्त्तन की ही कौन सी आवश्यकता है? तुम्हें प्रेम किया है—रहा तुम्हारा वह प्रेम मेरे हृदय में—अब से वह मुझे दुःख में धैर्य देगा, दुर्बलता में बल, जब अकेले बोझ ढोया न जा सकेगा तब तुम्हें बुलाऊँगा, आज से उसे भी तुम्हारे लिए रख छोड़ा। तब आओगी न?'

बायें हाथ से आँखें पोंछ कर वन्दना बोली—'आऊँगी अगर आने की सामर्थ्य रही—रास्ता अगर तब भी खुला रहा—वर्ना आ तो न सकूँगी मुखोपाध्याय जी।'

बात सुनकर विप्रदास मानो विस्मित हो गया, बोला—'कहती हो ठीक ही। आने का रास्ता अगर खुला रहता है—सदैव के लिए अगर वह बन्द नहीं हो गया, किन्तु तब आना। गुस्सा होकर मुँह फेर न लेना।'

फिर नेत्रों के आँसू पोंछकर वन्दना बोली—'मैं एक बात की भिक्षा माँगती हूँ मुखोपाध्याय जी, किसी से मेरी बात न कहिएगा।'

'नहीं, कहूँगा नहीं। उन आदमियों में से मैं नहीं हूँ। तुम तो खुद

ही जानती हो।'

'जानती तो हूँ।'

कुछ देर तक दोनों जने चुप रहे। विप्रदास ने कहा—'इस दुनिया में मैं इतना अकेला हूँ यह बात तुमने कैसे समझ ली वन्दना?'

वन्दना ने कहा—'न मालूम कैसे समझ ली। आप लोगों के घर से क्रोध करके चली आई, आप साथ आये। गाड़ी के उन मतवाले साहबों की बात स्मरण आती है? बात कोई विशेष नहीं—फिर भी जान पड़ता है कि जिन्हे हम चारों तरफ देखते हैं, उनके दल के आप हैं नहीं, अकेला कोई भी बोझ कन्धों पर लेने में आपको उज्र नहीं होता। उस दिन द्विज बाबू ने यही कहा था—मिलाकर देखा किसी से भी कुछ की आप प्रत्याशा नहीं करते हैं। रात को बिस्तर पर लेटकर केवल आपकी ही बात याद आती रही—सो न सकी। रात के आखिरी पहर में उठकर देखा कि नीचे पूजा घर में चिराग जल रहा है, आप ध्यान में बैठे हुए हैं। एकटक देखते-देखते सबेरा हो गया, नौकर-चाकर कहीं कोई देख न ले, डरती हुई अपने कमरे में भाग आई। आपकी वह तस्वीर फिर भुला न सकी मुखोपाध्याय जी, नेत्र बन्द करते ही मुझे दिखाई पड़ती है।'

हँसकर विप्रदास ने कहा—'क्या मुझे पूजा करते देखा था?'

वन्दना ने कहा—'पूजा करते तो आपकी माँ को भी देखा है, किन्तु यह वह नहीं है। वह कुछ और ही है। आप किसकी पूजा करते हैं मुखोपाध्याय जी?'

फिर हँसकर विप्रदास ने कहा—'यह जानकर तुम करोगी क्या? तुम तो यह करोगी नहीं।'

'नहीं, करूँगी नहीं। फिर भी जानने का मन होता है।'

विप्रदास मौन रहा। वन्दना कहने लगी—'मुझे उसी दिन जान पड़ा कि आप सबके अन्दर रहते हुए भी सबसे अलग हैं, आप अकेले हैं। जिस ऊँचाई पर पहुँचने से आपका साथी बना जा सकता है, उस ऊँचाई पर उनमें से कोई भी नहीं पहुँच सकता। एक बात और पूछूँ मुखोपाध्याय जी? बतलाएँगे न?'

इच्छा भी नहीं करते हैं—आपके लिए एकदम तुच्छ हो गया है या नहीं ?'

विप्रदास ने जवाब नहीं दिया, केवल हँसता हुआ ताकता रहा।

अचानक नीचे के आँगन में गाड़ी की आवाज सुनाई पड़ी। सुनाई पड़ा द्विजदास का कण्ठ-स्वर—और दूसरे ही क्षण द्वार के आ पुकार कर अन्नदा बोली—'द्विजू आया है।'

'क्या अकेला ही ? और कोई साथ आया है रे ?'

'नहीं, अकेला ही तो देख रही हूँ और कोई नहीं दिखाई देता।'

वन्दना सुनकर चञ्चल हो उठी। बोली—'चलूँ मुखोपाध्याय जी, देखूँ उनके भोजन की व्यवस्था ठीक है या नहीं।' इतना कहकर वह चल दी।

प्रातः द्विजू ने आकर जब विप्रदास की चरण-धूलि लेकर प्रणाम किया, तब कमरे के एक कोने में बैठी वन्दना पूजा की सामग्री तैयार कर रही थी, द्विजदास बोला—'इसी पञ्चमी को माँ पोखरे की प्रतिष्ठा करने जा रही हैं। बड़ी व्यवस्था है भैया।'

'माँ के कामों की व्यवस्था तो बड़ी ही होती है द्विजू, इसमें फि. की कौन सी बात है ?' हँसकर विप्रदास ने कहा।

द्विजदास बोला—'बासू के अच्छे होने की मनौती की पूजा इस के साथ ही होगी—वह भी एक अश्वमेध यज्ञ ही है। पण्डितों की बिदाई सूची तैयार हो रही है—आत्मीय-स्वजन, अतिथि-अभ्यागत की जो सं तालिका भाभी के मुख से सुनी, उससे सन्देह होता है कि आपकी मे वे कुछ बड़ा हाथ मारेंगी। समय के भीतर चेत जाइए।'

वन्दना ने सिर नहीं उठाया, सँभालने में असमर्थ हो हँसकर गई। विप्रदास सांसारिक आदमी है, विप्रदास कंजूस है, यह शिका एक माँ के अलावा और कोई भी अवसर मिलने पर करने में नहीं चूक विप्रदास स्वयं भी इस हँसी में शामिल होकर बोला—'इस बार नम्बर है। इस बार तेरा खर्च होगा।'

... पड़ेगा। यदि ... हुआ, वह पाठशाला का ... समुदाय नहीं, बल्कि पाठशाला का द्वार बन्द करके जिन्हें धक्के देकर बाहर रखा गया है—वे होंगे।'

उसी तरह हँसकर विप्रदास बोला—'पाठशाला पर तू नाराज क्यों है? लोगों के मुँह से सिर्फ निन्दा ही सुनी है, स्वयं कभी नेत्रों से नहीं देखी। उनके दल का होने के कारण तेरे समय में रोटी न मिलेगी।'

द्विजदास ने नजदीक आकर एक बार फिर पद-धूलि ली, बोला—'ऐसा न कहें। आप दोनों दल के बाहर हैं, लेकिन तीसरी जगह कौन सी है, उसे भी मैं नहीं जानता। केवल यही जानता हूँ कि मेरे भैया मेरे फैसले से दूर हैं।'

विप्रदास ने बात टाल दी। पूछा—'मेरी बीमारी की खबर माँ ने तो नहीं सुनी?'

'नहीं। बल्कि यह अच्छा होता कि पोखरे की प्रतिष्ठा का हङ्गामा बन्द हो जाता।'

'सम्बन्धियों के लाने की व्यवस्था हुई?'

'हो रही है। भूत, भविष्यत, वर्त्तमान सभी की। लड़की सहित अक्षय बाबू को निमन्त्रण दिया गया है। माँ समझती हैं बड़े आयोजन में मैत्रेयी की अग्नि-परीक्षा हो जायगी। उन्हें ले जाने का भार मेरे ऊपर दिया गया है।'

'और किसी को ले जाने की बात माँ ने नहीं कही है?—हाँ, अनु बहिन को ले जाना होगा। कॉलेज के लड़कों में अगर कोई जाना चाहता है, उन्हें भी।'

'तेरी भाभी की कोई माँग नहीं है?'

'नहीं।'

फिर नीचे मोटर की आवाज सुनाई पड़ी। भोंपू की पहचानी आवाज कानों में जाते ही वन्दना खिड़की से गर्दन बढ़ाकर बोली—'मौसी जी की गाड़ी है। मैं जाकर देखूँ तो मुखोपाध्याय जी। आप सन्ध्या-पूजा से फुर्सत पा लें—विलम्ब होता जा रहा है।' कहकर वह चल दी।

'मैं भी जाऊँ हाथ-मुँह धो लूँ। एक घण्टे के बाद आऊँगा।' कहकर

के लिए आई है, उसी को लेकर वन्दना व्यस्त है। उसी ने यह ...

ठीक वक्त पर द्विजदास लौट आया। उसके हाथ में बड़ी लम्बी ... थी, कलकत्ते की आधी चीजें मोल लेकर गाड़ी में भरकर भेजनी होंगी। दोनों भाई जब इसी में व्यस्त थे, उसी समय बाहर से आवाज आई—'अन्दर आ सकती हूँ मुखोपाध्याय जी? किन्तु मैं जूते पहने हूँ।'

'जूते पहने ही चली आओ!' वन्दना कमरे में आकर दाखिल हुई। जिस वेश में पहिले वह बलरामपुर में दिखाई पड़ी थी, यह वही है! विप्रदास ने आश्चर्य से पूछा—'कहीं जा रही हो वन्दना?'

'हाँ, मौसी जी के घर।'

'कब वापस आओगी?'

वापस आने की बात तो नहीं जानती मुखोपाध्याय जी।' क... उसने झुककर विप्रदास को प्रणाम किया, किन्तु और दिनों की भाँति पैरों को हाथों से छुआ नहीं। सिर नहीं उठाया सिर्फ हाथों को माथे लगाकर द्विजदास को भी प्रणाम किया, इसके बाद कमरे से चल दी।

बीसवाँ परिच्छेद

'अचानक वन्दना क्यों चली गई? मेरा आ जाना ही क्या ... कारण है?'—द्विजदास ने पूछा।

विप्रदास बोला—'नहीं। उसके पिता ने तार दिया मौसी के ... जाकर रहने के लिए, जब तक बम्बई लौट जाना नहीं होता।'—द्वि... एकाएक मौसी कहाँ से टपक पड़ीं? वन्दना ने मुझसे एक प्रकार ... ही नहीं की, बराबर दूर-दूर रही और फिर सवेरा होते ही देखता वह चली गई। हाँ, एक नमस्कार कर गई लेकिन वह भी मुँह फेरक... मेरे विरुद्ध उन्हें क्या हो गया?'

इस सवाल का जवाब विप्रदास ने टाल दिया और मौसी के मा... का संक्षेप करके बोला—'मेरी बीमारी से डरकर इसी मौसी के ... अनु बहिन सेवा करने के लिए उसे बुला लाई थीं। बहुत सेवा की

द्विजदास बोला—'नहीं चाहिए, यह नहीं कहता, किन्तु आपकी सेवा कर पाना भी तो एक सौभाग्य की बात है। अगर उसकी कीमत वह भी समझ सकी है, तो कृतज्ञता उसके यहाँ भी हमारी शेष है।'

विप्रदास हँसकर बोला—घोर नराधम हो तुम।

द्विजदास ने हँसकर कहा—नराधम हूँ पर मूर्ख नहीं हूँ। मेरी बात जाने दीजिए। किन्तु यह सेवा करने की बात माँ के कानों में गई तो वे सदैव के लिए हमारी माँ को ही खरीद लेगी। यही क्या कोई साधारण सम्पत्ति है।

विप्रदास ने हँसकर कहा—तो यह कहो कि इतने दिनों के बाद तू माँ को पहचान पाया है?

द्विजदास ने कहा—अगर पहचान पाया भी हूँ तो केवल आप जानें मैं माँ का पुत्र हूँ कुलाङ्गार हूँ, उनके नजदीक मेरा यही परिचय रहने दें। इसे हिलाने-डुलाने की आवश्यकता नहीं।

'आखिर क्यों? माँ तुम पर विश्वास कर सकती हैं, तुझे अच्छा समझ सकती हैं, यह क्या तू सचमुच ही नहीं जानता? इस नाराजी में लाभ क्या है, बता तो?'

'यह नहीं जानता लाभ क्या है, लेकिन लोभ विशेष नहीं है। मुझे मिला है आपका स्नेह, भाभी का प्यार, यही मेरे लिए सात राजाओं की धनराशि के बराबर है. सात जन्म में भी दोनों हाथों से लुटाकर समाप्त नहीं कर पाऊँगा।' यह कहकर उनके नेत्र और मुख लज्जा से लाल हो गये। इन हृदयावेगों, उच्छ्वासों को प्रकट करने में वह विमुख रहा है, सदा निस्पृहता के आवरण में घूमना ही उसका स्वभाव है। पल भर में अपने को सँभालकर बोला—किन्तु इन बातों पर विवाद करना बेकार है। जिसकी आवश्यकता है वह यह है कि मेरी निगाह में बन्दना के चले जाने का हाव-भाव मुझे गुस्से से भरा लगा। इसका क्या कारण है?

शायद कारण यह है कि जब तू आ पड़ा है तो उसकी आवश्यकता नहीं। अब से सेवा शुश्रूषा का भार तेरे ऊपर रहा।' इतना कहकर विप्रदास हँसने लगा।

द्विजदास बोला—आप दिल्लगी कर रहे हैं सही, लेकिन मैं कहता

हूँ कि … आप …
में आपकी सेवा करने का दिन न आवे, पर आने पर प्रभ
विलम्ब न लगेगा कि भैया की सेवा में हराना दस वन्दनाओं
भी सम्भव नहीं होगा। यह बात उससे कह दें।'

स्नेह-हास्य से विप्रदास का चेहरा चमक उठा। बोला—'अच्छा,
दूँगा, किन्तु विश्वास करेगी या नहीं बता नहीं सकता। पर भैया के
इस परीक्षा की आवश्यकता नहीं है, केवल एक आदमी के सामने
हैं माँ। तुम लोगों का समझौता होना आवश्यक है, समझा न द्विज

द्विजदास बोला—'नहीं भैया, नहीं समझा लेकिन जब माँ हैं,
जीवित रहने पर समझौता एक दिन होगा ही, पर अभी आवश्यकता
पड़ गई, यही समझ में नहीं आ रहा है।' यह कह पल भर चुप
बोला—'मेरे भाग्य में सब कुछ उल्टा लिखा है। पिता ने
किन्तु फूटी कौड़ी की सम्पदा भी नहीं दे गये—वह दिया आपने
गर्भ में धारण किया, किन्तु पालन किया अन्नदा बहिन ने
बोझों को ढोकर आदमी बनाया भाभी ने—दोनों ने दूसरे के
आकर 'पिता धर्मः माता स्वर्गादपिगरीयसी'—इस श्लोक को
कर मन को कितना ताजा रखूँ भैया, आप ही बतायें?'

विप्रदास बोला—'माँ के मामले की पैरवी अब नहीं करूँगा
तू स्वय ही किसी दिन समझ जायगा, किन्तु पिता के बारे में
खयाल है वह गलत है। आधी सम्पदा का सचमुच तू ही हकदार

द्विजदास बोला—'हो सकता है सच, लेकिन पिता की मृत्यु
क्या घर द्वार बन्द करके आपने उनका वसीअत नामा जला दिया

'तुझसे किसने कहा?'

'इतने दिनों तक जो मेरी सभी ओर से रक्षा करती आई हैं,
की जबानी सुना है।'

'यह हो सकता है, किन्तु तेरी भाभी ने तो वह वसीअतनामा
नही था। ऐसा भी तो हो सकता है कि पिता जी तुझे ही सब
गये हो, मैंने क्रोध में आकर उसे जला दिया। नामुमकिन तो

खूब हँस लेने के बाद द्विजदास ने कहा—'भैया, आप

असत्य नहीं बोलते ? द्वापर में युधिष्ठिर की झूठ को नोट कर गये थे वेदव्यास, और कलियुग में आपके झूठ को नोट कर रखेगा द्विजदास। दोनों ही बराबर होंगे। जो कुछ भी हो यह समझ में आ गया कि मुसीबत में पड़ने पर सभी कुछ मुमकिन होता है। अब मेरा पाप न बढ़ाइए, बतलाइए अब से मुझे क्या करना पड़ेगा ?'

'अपना कारोबार, सम्पदा सभी तो देखना होगा।'

'आखिर क्यों ? बतलाइए न, किसलिए इतना बोझ ढोने जाऊँ। क्या अकेले आप से नहीं हो रहा है ? नामुमकिन है। मैं निकम्मा अपदार्थ होता जा रहा हूँ। नहीं-नहीं, हो रहा हूँ। फिर भी माँ पूछे तो बता दें कि पदार्थ की मुझे आवश्यकता नहीं, अपदार्थ रहकर ही मैं अपने दिन बिता दूँगा, उन्हें फिक्र न करनी होगी। रुपये-पैसे, जमीन-जायदाद का बोझ आपके रहते मैं न ढोऊँगा। आखिर में क्या आपकी भाँति सांसारिक बन जाऊँगा ? लोग कहेंगे उसकी नसों में खून नहीं बहता, केवल रुपये की धारा बहती है।' किन्तु बोलते-बोलते उसने देखा कि विप्रदास उदास होकर न जाने क्या सोच रहा है, उसकी बातों पर ध्यान नहीं है। अक्सर ऐसा होता नहीं है—यह विप्रदास का स्वभाव नहीं है। कुछ अचरज करके बोला—'भैया क्या सचमुच चाहते हैं कि मैं जमीन-जायदाद देखूँ, अपने चिरदिन के स्वप्न, देश-सेवा को तिलाञ्जलि दे दूँ ?'

विप्रदास ने कहा—'तिलाञ्जलि दे दे, ऐसी बात तो कभी भी तुझे नहीं कही है द्विजू। जो तेरा स्वप्न है वह तेरा ही रहे, चिरदिन रहे—फिर भी कहता हूँ गृहस्थी का बोझ तू सँभाल ले।'

'आखिर क्यों, बतलाइए न ? बिना कारण जाने मैं किसी भी दशा में इस बात को मानूँगा नहीं।'

क्षण भर मौन रहकर विप्रदास बोला—'इसका कारण तो बहुत साफ है द्विजू। आज मैं हूँ लेकिन ऐसा भी तो हो सकता है कि मैं न रहूँ।'

जोर देकर द्विजदास ने कहा—'न, यह कभी नहीं हो सकता।'

उसके विश्वास की प्रबलता ने विप्रदास पर असर किया, किन्तु हँसकर बोला—'संसार में सब कुछ ही होता है, यहाँ तक कि नामुमकिन भी। इस बात को सोचने में जो डरते हैं वे स्वयं अपने को ही ठगते हैं और

ऐसा भी होता है कि मैं थका हूँ, मुझे छुट्टी की आवश्यकता है—ति... भी तू देगा नहीं ?'

'नहीं, दे नहीं सकूँगा भैया। उससे सरल है आपकी आज्ञा का पालना करना। बतलाइए, कब से मुझे क्या करना पड़ेगा ?'

'आज ही से।'

'इतना शीघ्र ! अच्छा, ऐसा ही सही। आपकी बात टाल नहीं सकता।' कहकर वह चल दिया।

विप्रदास बोला—'लेकिन भैया की बात सुनी—तुझे कहना नहीं पड़ेगा रे, मैं जानता हूँ कि तू मेरी बात टाल न सकेगा।'

द्विजदास ने काम शुरू कर दिया। वह आलसी है, अकर्मण्य, उदासीन, यही सदा से सभी को शिकायत थी, किन्तु भैया के आदेश से माँ की व्रत-प्रतिष्ठा के विशाल अनुष्ठान को सम्पूर्ण करने का सभी प्रकार का दायि— जब अकेले उसी पर आ पड़ा तो इस बदनामी को दूर करने में उसे ज्याद. वक्त न लगा। इस अनभ्यस्त भारी बोझ को वह इतनी आसानी से ढोवेगा, इतनी उम्मीद विप्रदास ने नहीं की थी, किन्तु उसके निरालस, सुश्रृङ्खलाबद्ध कर्म-पटुता से वह बिल्कुल विस्मित हो गया। जो कुछ मोल लेकर भेजना था उसे द्विजदास ने गाड़ी में भरकर भिजवा दिया, जो साथ ले जाना था उसे साथ रखा, आत्मीय स्वजनों को इकट्ठा कर यथायोग्य समादर के साथ रवाना कर दिया। यहाँ के सारे कामों को खत्म करके आज घर लौटने के दिन उसने भैया का आखिरी उपदेश लेने के लिए उनके कमरे में प्रवेश करके देखा कि वहाँ बैठी हुई है वन्दना ! उसके जाने के दिन से वह आई नहीं, कामों की झंझट में द्विजदास उसकी बात भूल गया था। आज अचानक उसे देखकर मन ही मन उसे अचरज हुआ, किन्तु उस मनोभाव को प्रकट न करके केवल एक मामूली नमस्कार कर शिष्टाचार खत्म कर बोला—'भैया, आज रात्रि की ट्रेन से मैं घर जा रहा हूँ, साथ जा रहे हैं अक्षय बाबू, उनकी स्त्री और बेटी मैत्रयी। आपके कॉलेज के विद्यार्थी शायद कल-परसों जायँगे, उन्हें किराया दिये जा रहा हूँ। क्या अनु बहिन को आप ही साथ लेते जायँगे ? किन्तु तीन-चार दिन से ज्यादा देर न कीजिएगा।'

'क्या मुझे जाना ही होगा ?'

सिंहासन पर धर दूँगा।'

हँसकर विप्रदास बोला—'बड़ा बदमाश हो गया है तू! किन्तु चुप दिया अक्षय बाबू की बात से। वह आयेंगे कैसे? उनकी छुट्टी तो है—काम पर नागा जो हो जायगी?'

द्विजदास ने कहा—'हाँ, होगी, लेकिन हानि नहीं है—उधर उससे भी लाभ है, बड़े घर में लड़की देने का। धनवान् दामाद भविष्य का बड़ा भरोसा है,—कॉलेज की बँधी-बँधाई तनखाह से बहुत बड़ा।'

विप्रदास नाराज होकर बोला—'तेरी बातें जैसी रूखी हैं, वैसी ही हैं। आदमी के सम्मान का विचार करके बातें नहीं करना जानता?'

द्विजदास ने कहा—'जानता हूँ या नहीं भाभी से पूछ लो। सौजन्य व्यर्थ अपव्यय नहीं किया है, यही मेरा दोष है।'

विप्रदास सुनकर बिना हँसे न रह सका, बोला—'तेरा एक गवाह भाभी! जैसे मतवाले का गवाह कलवार!'

द्विजदास ने कहा—'होने दीजिए। किन्तु आपकी बातें भी मधुमय हो रही हैं भैया। क्योंकि न तो मैं मतवाला हूँ, वह भी शराब नहीं है। देती हैं अमृत, छिपाकर देती हैं बहुतेरे लोगों को अन्न जो कि बड़े आदमियों का किया नहीं होता है।'

विप्रदास ने कहा—'उन्हें करने की आवश्यकता भी नहीं है। प्रेम से देवर को जानवर बना डालने के सिवा बड़े आदमियों को और भी दूसरे काम हैं।'

सिर नीचा करके वन्दना हँसने लगी। यह देखकर द्विजदास बोला—'इसे लेकर अब दलील नहीं करूँगा भैया। आपकी भाभी नहीं हैं—बङ्गालियों के घराने में उनका स्नेह कौन सी वस्तु है, इसे आप एकदम ही नहीं जानते हैं। अन्धे को रोशनी समझाने से कोई लाभ नहीं।' तनिक हँसकर बोला—'वन्दना आड़ में हँस रही हैं, किन्तु मौसी के घर के बजाय अगर कुछ दिन हमारे घर में बिता आतीं तो शायद मेरी बातें समझतीं। लेकिन रहने दीजिए यह दलील। बतलाइए आप कब घर जा रहे हैं?'

'मैं बहुत थका हूँ द्विजू, माँ को समझाकर बता नहीं सकेगा?' विप्र-

दास का ऐसा निर्जीव निस्पृह कण्ठ-स्वर उसने कभी नहीं सुना
विस्मित होकर देखा, धीमी हँसी की रेखाएँ अब भी ओठों पर हैं—
मानो यह उसके भैया नहीं और कोई हैं। अचरज और दुख से
होकर पूछा—क्या अभी बीमारी अच्छी नहीं हुई है भैया ?

'नहीं, अच्छी तो हो गई है।'

'तब भी माँ के अनुष्ठान में घर नहीं जा सके, यह बात माँ
समझाऊँगा किस तरह ? डरकर वह चली जायेंगी, उनका सारा आयो
नष्ट हो जायगा।'

पल भर सोचकर विप्रदास बोला—मुझे जाने के लिए तू क
कहता है ?

द्विजदास ने कहा—आज, कल, परसों—जब भी हो सके।
आज्ञा दीजिए मैं स्वयं आकर आपको ले जाऊँगा।

विप्रदास हँसकर बोला—अच्छा, ऐसा ही होगा। मैं स्वयं ही
सकूँगा, तुझे आना न होगा।

वन्दना ने द्विजदास के चले जाने पर पूछा—यह क्या
मुखोपाध्याय जी, घर जाने में उज्र किस लिए किया ?

विप्रदास ने कहा—कारण तो अपने ही कानों से सुन लिया।

'सुना, किन्तु यह उत्तर ... के लिए है, मेरे लिए नहीं।
लाइए किस लिए घर जाना ... है ? आपको बतलाना ही होगा ?'

'मैं थका हुआ हूँ।'

'नहीं।'

'नहीं कैसे ? थकावट पर सभी का दावा है, केवल मेरा ही
आप का भी है, लेकिन वह दावा सच होता तो सबसे पहले मैं
जाती। और सभी की आँखों को धोखा दे सकते हैं, केवल मेरी
को न दे सकेंगे। जाते वक्त मझली बहिन को पत्र लिख जाऊँगी
आप कभी बीमार पड़े तो मुझे बुला लें।'

'मझली बहिन स्वयं बीमारी पकड़ नहीं सकेगी, तुम्हें पकड़ा
होगा। यह बात सुनकर वह प्रसन्न न होगी।'

वन्दना ने कहा—प्रसन्न नहीं होगी सच है, लेकिन कृतज्ञ
होगी मझली बहिन हैं उस युग की महिला, उन्हें स्वामी खोजना

नहीं पड़ा, भगवान् ने आशीर्वाद की तरह अञ्जलि भर कर दिया था। तब से स्वस्थ शक्तिशाली पुरुष को लेकर वह चली रही हैं। किन्तु उस पुरुष का भी अचानक एक दिन मन टूट सकता है, इसका पता उन्हें [illegible] लगेगा ?

विप्रदास चुप रहा, केवल थोड़ा सा हँस दिया।

वन्दना ने पूछा—आप हँसे क्यों ?

विप्रदास ने कहा—हँसी खुद आती है वन्दना। स्वामी ढूँढने पसन्द करने के अभियान में आज तक जिन्हें तुमने देखा है, उनके सिवा भी कोई और है यह तुम लोग नहीं सोच सकती हो। संसार में सामान्य नियम को ही मानती हो, उसके अपवाद को मानना नहीं चाहती हो। पर इसी अपवाद के बल पर ही टिका हुआ है धर्म और पुण्य, काव्य-साहित्य और अविचलित श्रद्धा विश्वास। यह नहीं होता तो पृथ्वी बिल्कुल रेगिस्तान हो जाती। आज भी इस सत्य को नहीं जानती।

वन्दना विद्रूप के स्वर में बोली—यह अपवाद शायद स्वयं आप ही हैं मुखोपाध्याय जी। किन्तु उस दिन तो कहा था कि मुझे भी आप प्रेम करते हैं ?'

[illegible] बड़े आ[illegible]

'आज भी वही कहता हूँ किन्तु प्रेम एक मात्र ही राह तुम्हें दिखाई पड़ता है और सब बन्द रहते हैं, इसीलिए मेरी उस दिन की बातों को तुम समझ न सकी। तनिक देख आओ द्विजू और उसकी भाभी को। यदि अन्धी नहीं हुई तो देखोगी किस तरह श्रद्धा जाकर प्रेम में मिल गई है। हँसी दिल्लगी, लाड़-प्यार, घनिष्ठता से वह केवल उसकी भाभी ही नहीं है, वह उसकी बान्धवी है, वह उसकी माँ है। वह सम्बन्ध तो हमारा तुम्हारा भी है, ठीक उसी प्रकार तुम मुझे क्यों न देख सकी वन्दना।' उसकी बोली में था गम्भीर स्नेह के साथ मिला हुआ तिरस्कार का स्वर, वन्दना पर उसने गहरी चोट की। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद आँखें ऊपर करके बोली—'आपको मैंने गलत समझा था मुखोपाध्याय जी, मेरी मझली बहिन से यदि आप सचमुच ही करते तो मुझे दुःख न होता, लेकिन आप प्रेम तो नहीं करते हैं। आप केवल धर्म का पालन करते हैं, सिर्फ कर्त्तव्य [illegible] कर चलते हैं। आपका स्वभाव कठोर है, किसी को प्रेम करना

जानते नहीं। कितना भी गुप्त रखें, यह सचाई किसी दिन जाहिर ही होगी।

थोड़ी देर चुप रहकर बोली—'आज मेरी शङ्का भी दूर हुई। अब शून्य में हाथ बढ़ाकर पुरुष खोजने न जाऊँगी, यही आशीर्वाद मुझे दें।'

विप्रदास ने दिल्लगी में हाथ बढ़ाकर कहा—'तुम्हें यही आशीर्वाद दिया। आज से तुम्हारा पुरुष खोजना खत्म हो, जो तुम्हारा चिर दिन का है, उसे वह तुम्हें प्रदान करें।'

बात को अपमानजनक मजाक समझकर वन्दना नाराज होकर बोली—'आप भूल कर रहे हैं मुखोपाध्याय जी, पुरुष खोजना ही मेरा पेशा नहीं है, वे और हैं। किन्तु अचानक आज क्यों आ रही हूँ अभी तक तो यह आपको बतलाया भी नहीं। एक तरह सचमुच ही मेरी एक बहुत बड़ी शङ्का दूर हो गई। यहाँ आप लोगों के संसर्ग में आकर सोचा था ये आचार-विचार मानो सचमुच ही अच्छे हैं, खाने-पीने, छूने-छाने का नियम मानकर चलना, फूल-तोड़ना, चन्दन घिसना, पूजा की सामग्री तैयार करना—और भी कितनी ही बातें—सोचती थी ये सब सचमुच ही मनुष्य को पवित्र कर देती हैं, किन्तु इस बार मौसी जी के घर जाकर मूर्खता दूर हो गई। एक दिन कैसा पागलपन मुझ पर सवार था मुखोपाध्याय जी! मानो सचमुच ही इसमें विश्वास करती हूँ, मानो हमारी शिक्षा में, संस्कार में सचमुच ही कहीं इससे अन्तर नहीं है।' यह कहकर वह कृत्रिम हँसी हँसने लगी। सोचा कि बात से विप्रदास को शायद गहरा आघात पहुँचेगा लेकिन देखा एकदम कुछ भी नहीं हुआ। उसकी कृत्रिम हँसी में प्रसन्नता की हँसी मिलाकर बोला—'मुझे मालूम था वन्दना। तुम्हें क्या स्मरण नहीं है कि मैंने सावधान करते हुए एक दिन कहा था, यह सब तुम्हारे लिए नहीं है, इन्हें तुम करने मत जाओ। वह मूर्खता दूर हो गई सुनकर प्रसन्नता हुई। सोचा था कि सुनकर बहुत दुख होगा, किन्तु बात वैसी नहीं है। जिसके लिए जो स्वाभाविक नहीं है, उसे यह न करे तो मुझे दुख न होता। तुम्हें तो याद है, मैं किसकी ध्यान करता हूँ—जब तुमने पूछा तो मैं चुप रह गया। बोलने में कोई रुकावट थी इसलिए नहीं, बेकार है इसलिए। किन्तु ये बातें इस समय रहने दो। तुम्हारे बम्बई जाने का कोई दिन निश्चित हुआ?'

...ने में वह केवल बोली—नहीं।

'अपनी मौसी के भतीजे अशोक की बात उस दिन कहा था। कहा था कि लड़का तुम्हें अच्छा ही जँचा है। इन कई दिनों में उसके सम्बन्ध में और कोई बात जान सकी?'

'नहीं!'

'अगर तुम्हारी शादी होती ही है तो मैं आशीर्वाद दूँगा, किन्तु मौसी के दबाव में कुछ मत कर बैठना। उनके जाल से थोड़ा सँभलकर रहना।'

वन्दना के नेत्रों में आँसू आ गये, पर मुँह नीचा करके सँभालकर बोली—ठीक है।

विप्रदास ने कहा—'परसों मैं घर जाऊँगा। दो-तीन दिन से ज्यादा न रह पाऊँगा। वापस आने के बाद भी यदि कलकत्ते में रही तो एक बार आ जाना।

वन्दना का मुँह नीचे झुका था, सिर हिलाकर उत्तर दिया, पर उसका साफ मतलब समझ में न आया।

विप्रदास बोला—'सुना तो कि मेरी छुट्टी स्वीकार हो गई—अब से सब भार द्विजू पर है। गृहस्थी के कोल्हू में पिता जी ने मुझे लड़कपन में ही जोत दिया था, कभी कहीं जाने का मौका न मिला। आज मालूम पड़ता है जैसे चैन की साँस लूँगा।'

मुँह उठाकर वन्दना ने पूछा—क्या सचमुच ही साँस लेने की इतनी आवश्यकता पड़ गई थी मुखोपाध्याय जी, सचमुच ही आज आप इतने थके हैं?'

विप्रदास इस प्रश्न के उत्तर से बात फेर गया। बोला—'अच्छी बात है वन्दना, अपनी बीमारी में तुम्हारी सेवाओं की चर्चा करके कहा था, उन्हें तुम्हारा कृतज्ञ रहना चाहिए। इसका आधा भी उनमें से किसी से नहीं होता। द्विजू कृतज्ञता स्वीकार करते हुए भी तुम्हें कहने के लिए कह गया है कि यदि वैसा समय कभी आया तो भैया की सेवा में उसका बराबर होना दस वन्दनाओं की शक्ति से बाहर की बात होगी।

वन्दना बोली—'उनसे भी कह दीजिएगा कि मैंने शर्त स्वीकार कर ली है, लेकिन परीक्षा का समय कभी आया तब वह जिसमें दिखाई पड़े।

विप्रदास ने सुना तो हँसकर बोला—दिखाई पड़ेगा वन्दना, वह

'जानती हूँ मुखोपाध्याय जी। ठीक तरह जानती हूँ, आपके कान उनसे प्रतिद्वन्द्विता करना असल में वन्दना की शक्ति की बात नहीं है।

भाई के गर्व से विप्रदास का मुख चमक उठा—बोला—मालूम है वन्दना, मेरा द्विजू साधु है।

'आपसे भी क्या?'

'हाँ, मुझसे भी।' कहकर विप्रदास क्षण भर इधर-उधर करके बोला—किन्तु उसने कहा था कि तुम शायद उस पर नाराज हो गई हो। बोली क्यों नहीं?

'बोलने की आवश्यकता नहीं पड़ी, मुखोपाध्याय जी।'

हँसकर विप्रदास बोला—तब तो देखता हूँ कि तुम सचमुच ही नाराज हो। किन्तु आज तुमसे एक बात कहूँ वन्दना, द्विजू का व्यवहार रूखा है, बातें भी कोई मुलायम नहीं होती हैं, लेकिन उसके इस कड़े आवरण को पाकर अगर कभी देख सकी तो, देखोगी, कि ऐसा मधुर पुरुष नहीं होता है मेरी बात पर भरोसा करो, ऐसा विश्वास करने के योग्य पुरुष भी तुम सरलता से पाओगी नहीं।

वन्दना दूसरी तरफ देखती रही, जवाब नहीं दिया। अचानक वह खड़ी होकर बोली—गाड़ी बहुत देर से खड़ा है मुखोपाध्याय जी, मैं जाऊँ। यदि रही तो आपके वापस आने पर भेंट करूँगी! यदि न कर सकी तो यह मेरा अन्तिम नमस्कार स्वीकार करें।' कहकर उसने पदधूलि ली और तेजी से चल दी। कुछ भी कहने का अवसर विप्रदास को नहीं दिया।

बरामदे को लाँघ करके सीढ़ी के सामने आकर अचरज से देखा कि द्विजदास हाथ जोड़े खड़ा है।

हँसकर वन्दना ने पूछा—'अब क्या?

'एक प्रार्थना है। एक बार भैया को साथ लेकर हमारे घर पर आपको जाना होगा।'

'मुझे साथ क्यों ले जाना होगा? इसका मतलब?'

द्विजदास ने कहा—बतलाने के लिए ही खड़ा हूं। एक दिन बिना बुलाये ही हमारे घर में पदार्पण किया था, आज वही दया आपको करनी होगी।

होगी।

वन्दना ने क्षण भर इधर-उधर किया, फिर बोली—किन्तु मुझे जाने का न्योता किसने दिया? माँ, भैया, या स्वयं आपने?

'मैं स्वयं ही कह रहा हूँ।'

'किन्तु आप तो उस घर मे गैर आदमी हैं, बुलाने का आपको क्या हक है?'

'जीवित रहने का हक तो है। उसी हक के बल पर यह प्रार्थना पेश की। बोलिए, स्वीकार किया? बिना सख्त जरूरत के मैं किसी से कोई विनय नहीं करता।'

बहुत देर तक वन्दना दूसरी तरफ देखती रही, फिर बोली—अच्छा यही सही—जाऊँगी, किन्तु मान-अपमान का दायित्व आपके ऊपर रहा।

कृतज्ञ होकर द्विजदास ने कहा मेरी शक्ति थोड़ी है, फिर भी वह भार लेता हूँ।

वन्दना ने कहा—मुसीबत के वक्त यह बात न भूलना।

कई दिन के बाद विप्रदास नीचे दफ्तर मे आकर बैठा है। मेज पर कागज-पत्रो का ढेर लगा है, कई दिन का काम रुका पड़ा है। शरीर थका है, पर द्विजू के भरोसे तो नहीं छोड़ा जा सकता। एक मोटी बही लेकर वह वरक उलट रहा था तभी बाहर से मोटर के भोंपू की आवाज कानों मे पहुँची और फौरन् पूरब के खुले फाटक से वन्दना ने प्रवेश किया। आज अकेली नहीं है, साथ मे एक अपरिचित युवक है। शरीर पर धोती-कुर्त्ता, पैरों में चप्पल और कन्धे पर टेढ़ी लिपटी हुई मोटी सफेद चादर है। अवस्था तीस के अन्दर है, शरीर की बनावट थोड़ी और लम्बी होती तो आसानी से सुन्दर पुरुष कहा जा सकता था। विप्रदास स्वागत करने के लिए कुर्सी से उठा।

वन्दना ने कहा—'यही मिस्टर चौधरी बार-एट-ला हैं मुखोपाध्याय जी। किन्तु यहाँ अशोक बाबू कहने पर बुरा न मानेंगे। इसी शर्त पर परिचय कराने के लिए राजी होकर साथ लाई हूँ। बातें करने के पहले अपने

कर्त्तव्य को तो पूरा कर लूँ।' यह कहकर वह पास आकर नमस्कार करके बोली—लेकिन पद-धूलि इनके सामने न ले सकी, कहीं समझ न बैठें कि मैं उनके समाज की कलङ्क हूँ। किन्तु आप भी कहीं नाराज होकर यह न समझ बैठे कि नया नियम मैंने मौसी के यहाँ सीखा है। उन पर आपकी खुशी की गहराई मैं जानती हूँ न।

विप्रदास ने कहा—क्या अपनी मौसी जी के सामने मेरा इसी तरह गुणगान करती हो? नवागत युवक की तरफ देखकर बोला—वन्दना के मुख से आपके विषय में इतनी बातें सुनी हैं कि बीमार न होता तो स्वयं मिलने जाता! देख कर ही जान पड़ा कि चेहरे को मानो कितनी ही बार देखा है। ठीक ही हुआ जो बेकार की देरी न करके वह स्वयं ही साथ ले आई।

सज्जन ने प्रत्युत्तर में कुछ कहना चाहा, लेकिन इसके पहले ही वन्दना आदेश के स्वर में अँगुली उठाकर बोली—'मुखोपाध्याय जी, अत्युक्ति अतिशयोक्ति जो पार कर अब मिथ्या की सीमा में गये, अब रुकिए, वर्ना शोर मचा दूँगी।'

'मतलब?'

'मतलब यह है कि हम बहुत साधारण लोगों की तरह झूठ-सच जो मन में आया आप बकने लगे! आप हर्गिज असाधारण आदमी नहीं हैं, हम लोगों की भाँति ही साधारण आदमी हैं।

विप्रदास ने कहा—'नहीं। पूछ देखो तो वे एक स्वर से स्वीकार करेंगे कि तुम्हारा अनुमान अश्रद्धेय, अग्राह्य है!'

वन्दना ने कहा—'अब आपको ले जाकर उन्हीं के पास बाहर की इस शेर की खाल को दोनों हाथों से नोच डालूँगी। जब वे असली चेहरा देखेंगे, तब उनका डर दूर हो जायगा। मुझे आशीर्वाद देकर कहेंगे कि तुम राजरानी बनो।'

हँसकर विप्रदास ने कहा—'आशीर्वाद दें, मुझे उज्र नहीं, यहाँ तक स्वयं भी देने के लिए तैयार हूँ, किन्तु तुम लोग आशीर्वाद तो नहीं चाहती हो, कहती हो, वह बुरा संस्कार है, बात की बात है!

फिर वन्दना ने अँगुली उठाकर कहा—'फिर छेड़ने का प्रयत्न ! कौन कहता है गुरुजनों का आशीर्वाद हम नहीं चाहते हैं—कौन बुरा संस्कार कहता है ? लेकिन अब सचमुच ही क्रोध आ रहा है मुखोपाध्याय जी।'

गम्भीर होकर विप्रदास बोला—क्या सचमुच ही क्रोध आ रहा है ? तब रहने दो इन झमेले की बातों को। किन्तु अचानक सबेरे ही आगमन कैसा ? क्या कोई काम है ?

वन्दना ने कहा—बहुत से। पहला काम है आप से कैफियत तलब करना। बिना मेरी आज्ञा के नीचे आकर काम क्यों शुरू किया है ?

'शुरू नहीं किया है, करने का इरादा भर किया था। यह रहा।' कह कर उस मोटी बही को विप्रदास ने दूर खिसका दिया।

प्रसन्न होकर वन्दना बोली—'कैफियत संतोषजनक है, अवाध्यता क्षमा की जाती है। भविष्य में इसी प्रकार आज्ञाकारी रहे तो मेरा काम चल जायगा। अब मन लगाकर सुनिए। तब तक बैठकर इनसे बातचीत कीजिए—मुखोपाध्यायों के ऐश्वर्य का विवरण, प्रजा-शासन की अनेक रोमांचक कहानियाँ—जो भी जी चाहे। अनु बहिन को साथ लेकर सब कुछ ठीक-ठाक कर लेने के लिए मैं ऊपर जाती हूँ। कल प्रातः की ट्रेन से हम बलरामपुर जायेंगे, दिन ही दिन ठण्ड लगने का भय न रहेगा। मिस्टर चौधरी के साथ जाने की इच्छा है—बड़े घर का बड़ा यज्ञ क्रिया-कलाप, दीयता, भुज्यता घटाटोप कभी आँखों से नहीं देखा है - और देखें भी तो किस तरह !

विप्रदास ने पूछा—अवश्य ही तुमने बहुत से देखे हैं ?

वन्दना बोली—'यह प्रश्न बिलकुल अप्रासंगिक और भद्ररुचि विगर्हित है। उन्होंने नहीं देखा यही बात हो रही थी। तो सुनिए। उन्हें साथ चलने की अनुमति दी है इससे इतने प्रसन्न हुए हैं कि इसके बाद मुझे साथ ले जाकर बम्बई पहुँचा देने के लिए राजी हो गये हैं।

चेहरे को बहुत गम्भीर बनाकर विप्रदास ने कहा—यह कहती क्या हो ? इतना त्याग हमारे समाज में देखने में नहीं आता है. तुम्हारे अन्दर ही दिखाई पड़ता है। सुनकर आश्चर्य हो रहा है !

वन्दना ने कहा—आश्चर्य होने ही की तो बात है। जप-तप भी है; सोलहो आने ईर्षा भी है। यह कहकर नेत्रों की एक चितवन से बिजली चमकाकर बाहर चली जा रही थी कि तभी विप्रदास ने पुकारकर कहा—यह मानो पञ्चतन्त्र के उस सानीवाली नाँद के कुत्ते की कथा है। न तो वह स्वयं खायगा न साँड़ों के झुण्ड को ही खाने देगा। बतलाओ तो मनुष्य कैसे जीवित रहे ?

किवाड़ के किनारे खड़ी होकर बनावटी गुस्से से भौंहें तानकर वन्दना ने कहा—एकदम हम लोगों की ही तरह साधारण आदमी हैं, कुछ भी अन्तर नहीं है। व्यर्थ ही लोग भय से परेशान रहते हैं।

'इस बार जाकर तुम उनका भय दूर कर आओ।'

'इसीलिए तो जा रही हूँ और सानी में उपमा देने की दुर्बुद्धि का प्रतिशोध भी लेती आऊँगी।' यह कहकर वन्दना दीप्त कटाक्ष से फिर बिजली चमकाकर ओझल हो गई।

विप्रदास ने कहा—मिस्टर···!

अशोक ने सविनय बाधा दी- नहीं-नहीं, यह नहीं होगा। उसे छोड़ देने में हिचकिचाहट नहीं होगी इसीलिए धोती-कुर्ता और चप्पल पहनकर आया हूँ विप्रदास बाबू। उन्होंने भी विश्वास दिलाया था कि···।

मन ही मन प्रसन्न होकर विप्रदास ने कहा—अच्छा ही हुआ अशोक बाबू, सम्बोधन सहज हो गया। देहात का आदमी हूँ, याद भी नहीं रहता और आदत भी नहीं है। अब मजे में डटकर बातें होंगी। सुना है आप हमारे देहात चलना चाहते हैं, सचमुच ही अगर चलें तो कृतार्थ होऊँगा। हमारे कुटुम्ब की मालकिन मेरी माँ हैं, उनकी तरफ से मैं सादर निमन्त्रण दे रहा हूँ।

विप्रदास की विनीत बातें सुनकर अशोक प्रसन्न होकर बोला—अवश्य जाऊँगा, कितने गरीब, अनाथ दुखी न्यौते में आयेंगे, कितने ही अध्यापक पण्डित उपस्थित होंगे विदाई लेने के लिए, आनन्दोत्सव में कितनी ही तरह का खान-पान होगा, कितने ही विचित्र प्रबन्ध होंगे···।

हँसकर विप्रदास बोला—सब बातें बढ़ा-चढ़ाकर कही गई हैं अशोक बाबू, वन्दना ने सिर्फ व्यङ्ग किया है !'

'व्यङ्ग करने से उसे लाभ क्या विप्रदास बाबू ?'

'हमें असमञ्जस में डालना एक यही लाभ है। बलरामपुर के मुखोपाध्यायों पर मन ही मन वह नाराज है। दूसरा लाभ किसी भी बहाने बम्बई घसीट ले जाना।'

अशोक ने कहा—आवश्यकता पड़ी तो बम्बई तक मुझे साथ जाना पड़ेगा, इसका वादा है, किन्तु मुखोपाध्यायों पर वह नाराज, आप लोगों को वह लज्जित करना चाहती है, यह नहीं हो सकता। कल भी बलरामपुर जाना निश्चय नहीं था। लेकिन आप लोगों की बात को लेकर मौसी से उसका विवाद हो गया था। मौसी बोलीं—विप्रदास की माँ ने अगर सर्वसाधारण के हितार्थ पोखरा खुदवाया है, तो इसकी प्रशंसा करती हूँ, पर घटाटोप के साथ प्रतिष्ठा करना बेईमानी है—वह कुसंस्कार है। कुसंस्कार में सम्मिलित होना मैं अन्याय समझती हूँ। वन्दना बोली—वे बड़े आदमी हैं, बड़े आदमियों के काज-प्रयोजन में घटाटोप तो हुआ ही करता है मौसी जी, आश्चर्य की कौन सी बात है? मेरी बुआ बोलीं, बड़े आदमियों की फिजूलखर्ची मैं मानती हूँ, कोई आश्चर्य की बात नहीं है, किन्तु बात तो केवल यही नहीं है, यह एक कुसंस्कार भी तो है। तुम्हारे जाने में ही मुझे उज्र है।

वन्दना बोली—जो नहीं जानती, जानने की कभी इच्छा भी नहीं की है, उसका वैसे ही न्याय करना भी कुसंस्कार है। उसका उत्तर सुनकर बुआ जी क्रोध से आगबबूला हो गईं, पूछा—अपने पिता जी की राय ली है?

वन्दना ने उत्तर दिया—मैं जानती हूँ, पिता जी मना नहीं करेंगे। मझली बहिन के पति बीमार हैं, उन्हें साथ ले जाने का भार मुझ पर आया है।'

'सुना तो किसने भार दिया? शायद उन्होंने स्वयं ही?' प्रश्न सुनकर वन्दना मानो चुप होकर देखती रह गई, मुझे ऐसा मालूम हुआ, उसका रक्त उबल रहा है, अब न जाने क्या बोल बैठे। किन्तु यह सब कुछ भी नहीं किया, धीरे-धीरे केवल बोलीं— जिसका जो जी चाहे पूछे उसी का उत्तर देना होगा। बचपन से ही मुझे यह शिक्षा नहीं मिली है मौसी जी। परसों सबेरे मुखोपाध्याय जी को साथ लेकर मैं बलरामपुर जाऊँगी, ज्यादा कुछ भी नहीं कह सकती।

बुआ जी क्रोध से उठकर चली गईं।

चलेंगी? अपनी आँखों से इन मद्दे अनुष्ठानों के देखने की मुझे बड़ी इ— होती है। वन्दना बोली—लेकिन ये तो कुसंस्कार हैं अशोक बाबू! नेत्रों से देखने से भी आपकी जात चली जायगी। बोला—अगर आपकी जात नहीं जाती तो मेरी भी नहीं जायगी। और यदि जाती है तो दोनों की एक साथ ही जात जाय, मेरी कोई हानि नहीं है।

वन्दना ने कहा—आप तो विश्वास नहीं करते, उन्हें नेत्रों से देखकर मन ही मन हँसेंगे।

बोला—आप ही क्या विश्वास करती हैं?

वह बोलीं—नहीं करती, लेकिन मुखोपाध्याय जी करते हैं। मैं सिर्फ उम्मीद करती हूँ कि उन्हीं का विश्वास एक दिन सचमुच ही मेरा भी विश्वास बन जाय। वन्दना आपकी मन ही मन पूजा करती है विप्रदास बाबू! इतना विश्वास दुनिया में वह किसी पर नहीं रखती।

बात अनजानी नहीं है, नई भी नहीं है, तथापि दूसरे के मुख से सुनकर विप्रदास का चेहरा एकदम सफेद हो गया।

पल भर के बाद पूछा—'आप लोगों को जो शादी की बात हुई थी, क्या वह तय हो गई? वन्दना ने क्या सम्मति दे दी है?

'नहीं। किन्तु असम्मति भी प्रकट नहीं की है।'

'आशा की बात यही है अशोक बाबू! चुप रहना अधिकांश में सम्मति का द्योतक है।'

अशोक सकृतज्ञ नेत्रों से पल भर मौन रहकर बोला—नहीं, यह नहीं हो सकता। फिर ज़रा थमकर बोला—कठिनाई यह है कि मैं गरीब हूँ और वन्दना धनवती है। ऐसा नहीं कि धन का लोभ मुझे नहीं है, लेकिन बुआ जी की तरह वही मेरा एक मात्र लक्ष्य नहीं है। यह कैसे समझाऊँ कि बुआ जी के साथ मिलकर मैंने षड्यन्त्र नहीं किया है।

इस मनुष्य के प्रति विप्रदास के मन में तिरस्कार का भाव था, उसकी बात की सरलता से वह कुछ कम हो गया। सरल कण्ठ-स्वर में बोला—बुआ के षड्यन्त्र में आप सम्मिलित नहीं हुए हैं, यदि बात सत्य हुई तो वन्दना किसी दिन समझेगी ही, तब प्रसन्न होने में भी उसे

उत्सुक स्वर में अशोक ने प्रश्न किया—आपको यह निश्चित रूप से मालूम है विप्रदास बाबू ?

इसका जवाब देने में विप्रदास चक्कर में पड़ गया, कुछ सोचकर बोला—उसे जितना जानता हूँ उतना ही मालूम होता है !

अशोक ने कहा—'मुझे क्या लगता है, जानते हैं? लगता है, उनकी निजी खुशी से भी मुझे ज्यादा जरूरत है आपकी खुशी की। उसे जब पाऊँगा, तो मुझे न मिलने योग्य कोई चीज न रह जायगी।

विप्रदास सहास्य बोला—मेरे प्रसन्न नेत्रों से यह स्वामी चुनेगी, ऐसा विचित्र संकेत किसने दिया—स्वयं वन्दना ने ? यदि दिया है तो कहूँगा कि एकदम मजाक किया है अशोक बाबू !

'नहीं, मजाक नहीं है. यह सही है।'

'किसने बताया ?

पल भर मौन रहकर अशोक बोला—'ये बातें मुँह से कहने की नहीं हैं विप्रदास बाबू ! उस दिन मौसी जी से तकरार करके वन्दना मेरे कमरे में आई—ऐसा कभी नहीं करती—एक कुर्सी खींचकर बैठ कर बोली—मुझे बम्बई पहुँचा आना होगा।' अब भी आज्ञा दें तैयार हूँ। बोलीं—बलरामपुर जा रही हूँ. वक्त आने पर इसके बाद कहूँगी।' बोला—'अच्छी बात है. लेकिन मौसी को इस प्रकार नाराज क्या कर दिया ? उनके पूजा-पाठ, होम-जप, देवी-देवता में वे सचमुच ही विश्वास तो नहीं करती हैं, फिर भी बोलीं—असत्य नहीं कहा है अशोक बाबू। उन लोगों की तरह सचमुच ही यदि कभी विश्वास कर सकी तो कृतज्ञ हो जाऊँगी। मुखोपाध्याय जी की बीमारी में सेवा की थी, उनसे एक दिन विश्वास कर वरदान माँग लूँगी। इसके पश्चात् आपकी बात आरम्भ हुई। इतना विश्वास भी कोई किसी पर करता है, किसी की शुभ कामना में कोई हरदम तल्लीन रह सकता है, इसके पहले कभी कल्पना भी न की थी। बात ही बात में उन्होंने एक दिन की घटना का जिक्र किया। तब आप बीमार थे, आपकी सन्ध्या-पूजा का प्रबन्ध वही करती थीं, ज्यादा वक्त हो गया था, जल्दी आने में पैरों में कुछ लगा, जितना ही अपने को समझाती कि वह

गलती न हो जाय, इसीलिए स्नान करके सारा प्रबन्ध कर शुरू पड़ा। किन्तु आप उस दिन नाराज होकर बोले थे- वन्दना, बाद सबेरे तुम्हारी नींद खुलती है, तो अन्नदा बहिन को पूजा का प्रबन्ध करने देना स्मरण है न विप्रदास बाबू ?

विप्रदास ने सिर हिलाकर कहा—हाँ, स्मरण है।

अशोक कहने लगा—इस प्रकार कितने दिन की छोटी-मोटी घटनाओं की चर्चा करते-करते उस दिन बहुत रात हो गई, अन्त मे बोलीं—मौसी ने उन लोगों के कुसंस्कार का ताना दिया, मैंने स्वयं भी एक दिन दिया था अशोक बाबू, किन्तु आज कौन अच्छा है, कौन बुरा, समझने में चकरा जाती हूँ। खाने-पीने का विचार तो कभी किया नहीं है, जन्म भर का विश्वास है इसमे दोष नहीं, किन्तु मानो अब सङ्कोच होता है। बुद्धि के कारण शर्म लगती है, लोगो से गुप्त रखना चाहती हूँ, किन्तु जिस क्षण याद आती है कि इन्हे वे नहीं चाहते हैं, उसी क्षण मन जैसे उससे मुँह मोड़ लेता है!

विप्रदास का चेहरा सुनते सुनते पीला पड़ गया, जबरन हँसने की कोशिश करके बोला—'तो वन्दना अब खाने-छूने का विचार करने लगी है! किन्तु उस दिन तो आकर गर्व के साथ कह गई कि मौसी के घर जाकर उसमे अपना समाज, अपनी सहज बुद्धि वापस आ गई है, मुखोपाध्याय वंश की हजारों तरह की कुभिमान से छुटकारा पा गई है।' अशोक आश्चर्य से कुछ कहना चाहता था, लेकिन विघ्न हुआ। अन्दर घुस कर वन्दना बोली—मुखोपाध्याय जी, सब कुछ सँभाल कर रख आई। कल प्रातः साढ़े नौ बजे ट्रेन है। पूजा-पाठ बेकार के कामों को इसी के अन्दर खत्म कर लें। इतनी विडम्बना भगवान् ने आपके भाग्य में लिखी थी।

हँसकर विप्रदास ने कहा—सम्भव है लिखी हो।

'सम्भव नहीं, निश्चय ही। सोचती हूँ यदि कोई इन्हें आपके अन्दर से दूर कर देता! कल सुबह के भोजन का प्रबन्ध भी कर आई—मैं स्वयं आकर खिलाऊँगी, फिर कपड़े पहनाऊँगी, इसके बाद साथ लेकर घर जाऊँगी। कमजोर आदमी हैं इसी लिए। चलिए अशोक बाबू, हम लोग चलें। पद

...लि अब नहीं लूंगी मुखोपाध्याय [illegible] स्वभाव में नहीं चलता।' हँसकर दोनों हाथों को माथे से लगा कर बाहर चल दी।

बाईसवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन सबेरे ही सब लोग बलरामपुर के लिए रवाना हो गये। घर के पास आते ही दिखाई पड़ा कि द्विजदास ने राजसूय यज्ञ जैसा आयोजन किया है। सामने वाले मैदान में कुटियों की कतार खड़ी है, कुछ तैयार हो गई हैं और कुछ हो रही हैं। अभी से ही निमन्त्रित तथा अनिमन्त्रित लोगों से बहुत सी भर गई हैं। अभी कितने लोग आयेंगे यह बताना मुश्किल है।

विप्रदास को देखकर माँ विस्मित हो गई—'शरीर की यह क्या दशा भैया, बिलकुल आधा रह गया है!'

पद-धूलि लेकर विप्रदास बोला—'अब भय की बात नहीं माँ, अच्छा होने में अब देर न होगी।'

किन्तु कलकत्ता वापस जाने न दूँगी, तेरा कितना भी जरूरी काम क्यों न हो। अब से अपने नेत्रों के सामने रखूँगी।'

विप्रदास हँसते हुए चुप रह गया।

वन्दना के उन्हें प्रणाम करने पर दयामयी आशीर्वाद देकर बोलीं—'आओ बेटी, आओ, चिरञ्जीवी हो!'

किन्तु उनके कण्ठ स्वर में उत्साह नहीं था, मालूम पड़ा कि यह साधारण शिष्टाचार से ज्यादा कुछ है नहीं। उसे आने का निमन्त्रण नहीं दिया गया है, वह स्वयं आई है, माँ को इतना ही मालूम था। इसके बाद उन्होंने मैत्रेयी की चर्चा छेड़ी। लड़की के गुणों की सीमा नहीं, दयामयी को इस बात का दुःख है कि एक ही मुँह से उसकी सूची तैयार करना मुमकिन नहीं है। बोलीं—'कोई काम ऐसा नहीं है जो पिता ने न सिखाया हो, कोई काम ऐसा नहीं जो वह न जानती हो। बहू की तबीअत कुछ ठीक नहीं है, इसीलिए मानो उसने अकेले ही सारा भार अपने कन्धों पर ले लिया है। तकदीर की बात है कि उसे लाया था विपिन, वर्ना क्या होता, इसे सोचने पर भी मुझे भय लगता है।'

अचरज करके विप्रदास बोला—'ऐसी बात है!'

दयामयी ने कहा—'सत्य कहती हूँ भैया। लड़की का काम-धाम देखकर जान पड़ता है कि मालिक जो भार मेरे कन्धों पर डाल गये हैं,

उसके लिए अब फिक्र नहीं। बहू को वह आप .
वह सरलता से सँभाल लेगी। कहीं कोई गलती न होगी। इस ...
अब हुआ नहीं किन्तु जीवित रही तो अगली बार बेफिक्र होकर कैलाश ...
का दर्शन करने मैं अवश्य जाऊँगी।'

विप्रदास चुप रहा, दयामयी की बातें शायद असत्य नहीं है, हो सकता मैत्रेयी इसी प्रकार की प्रशंसा के योग्य हो, किन्तु यशोगान की भी तो सीमा है। उनका लक्ष्य कुछ भी हो, उपलक्ष्य भी गुप्त नहीं रहा। एक अकरुण असहिष्णु क्षुद्रता ने उसकी सुपरिचित मर्यादा पर मानो कड़ी चोट की। अचानक बेटे के मुँह की तरफ देखकर दयामयी ने अपनी इस गलती को जान लिया, किन्तु उसी दम प्रतिकार कैसे करें यह भी उनकी समझ में न आया। द्विजदास दूसरी जगह काम में फँसा हुआ था, सूचना पाकर आ गया।

विप्रदास ने कहा—कैसी भयानक घटना की है द्विजू, कैसे सँभालेगा?

द्विजदास ने कहा—बोझ तो आपने स्वयं नहीं लिया है भैया, मुझ पर दिया है। किस बात का भय है आपको?

वन्दना ने जवाब दिया—उन्हें फिक्र हो रही है कि खर्च के सारे रुपये अगर प्रजा की जेब से वसूल न किये गये तो खजाने में हाथ डालना पड़ेगा। उसमें भय न होगा द्विजू बाबू?'

सभी हँस पड़े और इस हास्य के अन्दर से माँ के मन का भार मानो कम हो गया, हँसकर बनावटी नाराजी से बोलीं—उसे तङ्ग करने के लिए तुम भी क्या अपनी बहिन की तरह ही हुई वन्दना। वह मेरा बड़ा धार्मिक बेटा है। सभी मिलकर उसे झूठा ताना दें, यह मुझे सहन न होगा।

वन्दना ने कहा—ताना झूठ होने पर नहीं लगता है माँ, इससे नाराज भी न होना चाहिए।

माँ ने कहा—नाराज तो वह नहीं होता, बल्कि वह सुनकर हँसता है।

वन्दना ने कहा—इसका भी सबब है माँ। मुखोपाध्याय जी को मालूम है कि नाराज होना मूर्खता है। क्यों, ठीक कहती हूँ न मुखोपाध्याय जी?'

हँसकर विप्रदास बोला—ठीक नहीं तो क्या! मूर्ख की बात पर

...न होना मना है, शास्त्र में उसके लिए दूसरी व्यवस्था है।'

वन्दना ने कहा—लेकिन मझली बहिन मुझसे मूर्ख हैं मुखोपाध्याय ... शायद आपसे शास्त्र की इस व्यवस्था के कारण ही सभी आपको ... श्रद्धा करते हैं। यह कह हँसकर उसने मुँह घुमा लिया। द्विजदास हँसी रोकने के लिए दूसरी तरफ देखता रहा और दयामयी स्वयं भी हँस पड़ी। बोली—वन्दना बड़ी नटखट लड़की है, उससे कोई बातचीत में जीत नहीं पाता।

कुछ रुककर गम्भीर होकर बोलीं—बेटी, मालिक के वक्त में प्रजा पर बोझ बिलकुल न पड़ता था यह नहीं कहती, लेकिन तुम्हें तो बतलाया है विपिन मेरा बड़ा धार्मिक लड़का है, जो कुछ अन्याय है, जो यथार्थ में उसका प्राप्य नहीं है, उसे वह किसी भी दशा में ले नहीं सकता। किन्तु मुझे द्विजू से भय है वह ऐसा कर सकता है।

विप्रदास बोला—लेकिन तुम्हारा यह कहना अनुचित है माँ। द्विजू प्रजा को सताएगा! प्रजा का पक्ष लेकर उसने एक दफा हमारे विरुद्ध उन्हें भूमि-कर देने से मना कर दिया था, यह बात क्या तुम भूल गई?

माँ बोली—भूली नहीं हूँ, इसीलिए तो कह रही हूँ। जो न्याय देन चुकाने के लिए मना करता है, अन्याय वसूली भी वही कर सकता है विपिन, दूसरा नहीं। दया-माया उसमें है, और ज्यादा ही है मानती हूँ, फिर भी एक दिन देखेगा कि उसी के द्वारा से प्रजा को बहुत अधिक दुख मिलेगा।

'नहीं, नहीं मिलेगा माँ तुम देखना।'

दयामयी बोली—भरोसा सिर्फ इस बात का है कि तू है। वर्ना ऐसा कोई नहीं है जो उसे ठीक राह पर ले जा सके। वर्ना वह स्वयं भी एक दिन डूबेगा, दूसरों को भी डुबा बैठेगा।

इतनी देर तक द्विजदास मौन था। अब बोला—तुम्हारी अन्तिम बात ठीक नहीं हुई माँ। स्वयं डूबूँगा शायद एक दिन सच हो, पर दूसरों को नहीं डुबाऊँगा यह तुम पक्की जान लेना।

माँ ने कहा—इसमें भी प्रसन्नता की बात नहीं है द्विजू, असल में तुझे चलाने के लिए एक आदमी का रहना आवश्यक है।

द्विजदास ने कहा—यही बात स्पष्ट कहो तो सब की चिन्ता दूर हो। मुझे चलाने के लिए किसी एक की आवश्यकता है। किन्तु इसका प्रबन्ध

तुमने लगभग कर ही लिया है माँ।'

माँ ने कहा—'यदि सचमुच ही कर लिया है, तो इसे ...
सौभाग्य समझना।'

दलील का असली मतलब अब साफ-साफ सभी ने समझ लिया।

माँ कहती गई—'इतनी बड़ी घटना कर डाली, किसी की बात ...
सुनी।' बोली—भैया की आज्ञा है। किन्तु भैया ने क्या अश्वमेध करने ...
लिए कहा था? अब कौन सँभाले बता न? मैत्रेयी आ गई थी यह ...
अच्छा हुआ।'

द्विजदास ने कहा—'काम पहले हो जाय माँ, तब जिसे मन हो सनद देना, मैं भी उज्र न करूँगा। किन्तु जल्दी की बात क्या?'

वन्दना ने पूछा—'तब सनद पर हस्ताक्षर कौन करेगा द्विजू बाबू, तीसरा पक्ष तो नहीं?'

द्विजदास ने कहा—'नहीं, तीसरे पक्ष की क्या हिम्मत! आज भी बड़े बहादुर पहले और दूसरे पक्ष जो उसी तरह तैयार हैं।' कहकर दोनों ने हँस दिया।

विप्रदास और माँ ने एक दूसरे का मुख देखा, लेकिन मतलब समझ में न आया।

अन्नदा ने आकर कहा—'वन्दना बहिन, बड़े बाबू की दवाओं को कल सँभालकर उस कागज के डब्बे में रखा था, वह तो दिखाई नहीं दे रहा है। खो तो नहीं गया?'

'नहीं, खोया नहीं अनु बहिन, कलकत्ते के मकान में ही छूट गया।'

दयामयी ने डरकर कहा—'कौन तदबीर की जाय वन्दना, इतनी बड़ी गलती हो गई?'

वन्दना ने कहा—'भूल नहीं हुई है माँ, आते समय उन्हें जानबूझ कर ही छोड़ आई हूँ।'

'जानबूझ कर छोड़ आई! क्यों?'

'सोचकर कि दवा बहुत खाई है, अब रहने दें। तब माँ पास नहीं थीं, इसलिए दवा की आवश्यकता पड़ी थी, अब बिना दवा के अच्छे हो उठने में जरा भी देर न लगेगी।'

दयामयी को ये बातें बहुत भली लगीं। वह बोलीं—अच्छा नहीं किय। बेटी, देहात है, डॉक्टर-वैद्य नहीं मिलते हैं, आवश्यकता पड़ने पर···।

अन्नदा ने कहा—'आवश्यकता अब नहीं होगी माँ। होने पर वह हर्गिज नहीं छोड़ आतीं। डॉक्टर-वैद्य से भी अधिक वन्दना बहिन जानती हैं।'

दयामयी प्रशंसा भरी दृष्टि से मौन हो देखती रहीं। वन्दना बोली—'बढ़ा-चढ़ाकर कहना ही अनु बहिन का स्वभाव है माँ, वर्ना सचमुच ही मैं कुछ नहीं जानती। जो कुछ सीखा है, वह मुखोपाध्याय जी की सेवा करके ही सीखा है।'

अन्नदा बोली—वह कैसी सेवा है माँ, इसे मैं ही जानती हूँ। अचानक एक दिन कैसे सङ्कट मे पड़ गई। घर मे कोई था नहीं, बासू की बीमारी का तार पाकर द्विजू यहाँ चला आया, दत्तजी ढाका गये थे, विपिन को ज्वर हो आया। पहले दो दिन किसी प्रकार बीते, किन्तु उसके बाद वाले दिन ज्वर अधिक बढ़ गया। डॉक्टर को बुलवा भेजा, उसने दवा दी, लेकिन चौगुना भय दिखाया। मूरख औरत हूँ, क्या करूँ, तुम्हें भी खबर नहीं दे सकती थी, विपिन ने मना किया—बेचैन हो दौड़कर वन्दना के पास गई, उनकी मौसी के घर पर। रोकर बोली—'बहिन, क्रोध मत किये रहो, आओ चलो। मुखोपाध्याय जी बहुत बीमार हैं।' वन्दना बहिन जैसी थी, उसी तरह मेरी गाड़ी में आ बैठी, मौसी को कह आने का वक्त भी उन्हें नहीं मिला। घर आकर विपिन का भार लिया। दिन-रात एक घण्टा भी उन्हें कई दिन तक दम लेने का अवकाश न मिला। केवल दवा पिलाना ही तो नहीं था, सवेरे पूजा की व्यवस्था से लेकर रात को मच्छरदानी गिरा कर सुलाने तक सब कुछ करती थी। अब वन्दना बहिन यदि दवा नहीं देना चाहती हैं, माँ, तो देने की आवश्यकता नहीं, वैसे ही विपिन अच्छा हो जायगा।'

उसी दम हुङ्कारी भर विप्रदास ने गम्भीर होकर कहा—'सचमुच ही अच्छा हो जाऊँगा माँ, तुम लोग अब उसे बाधा मत दो, उन्हें सुबुद्धि मिले, मुझे दवा पिलाना बन्द करें। मैं काय-मन-वाक्य से आशीर्वाद दूँगा कि वन्दना राजरानी हो।'

दयामयी चुपचाप देखती रहीं। उनके नेत्रों मे मानो स्नेह और ममता

छलकने लगी।

महरी ने आकर कहा—'माँ, बहू जी पूछ रही हैं कि कलकत्ते से अभी जो चीजें आई हैं वे कहाँ रखी जायेंगी?'

दयामयी के उत्तर देने के पहले ही वन्दना बोली—'माँ, मैं आपकी म्लेच्छा बेटी हूँ तो क्या, इतने बड़े काम में मुझे किसी भी चीज का भार नहीं मिलेगा, सिर्फ चुपचाप बैठी रहूँगी? ऐसी कितनी चीजें हैं जो मेरे छूने से भी छू नहीं जायँगी।'

दयामयी ने उसका हाथ पकड़ कर अपनी छाती से लगा लिया। आँचल से चाभियों का एक गुच्छा खोल उसके हाथ में देकर बोली—'चुपचाप तुम्हें बैठने ही क्यों दूँ बेटी? यह लो, तुम्हें अपने भण्डार की कुञ्जी दे रही हूँ जिसे बहू को छोड़ किसी दूसरे को नहीं दे सकती। आज इसका भार तुम पर रहा।'

'माँ, इस भण्डार में क्या है?'

'चाभियों के इस गुच्छे से अत्यन्त परिचित हैं' कनखियों से देखकर द्विजदास बोला—'जो कुछ है वह छुआछूत से परे है। है सोना-चाँदी, रुपया-पैसा, चेली-गरद-जोड़ा वगैरह कपड़े। जिसे तुम्हारे छू लेने पर भी घोर धार्मिक आदमी को भी सिर उठा लेने में उज्र न होगा।'

वन्दना ने पूछा—'माँ, मुझे क्या करना होगा?'

दयामयी ने कहा—'अध्यापकों की बिदाई, अतिथि-अभ्यागतों की सम्मान-रक्षा, आत्मीय स्वजनों के कलेवे का प्रबन्ध और उसके साथ इस लड़के पर कड़ी निगरानी।' यह कह वह द्विजदास को दिखाकर बोलीं—'मैं हिसाब नहीं जानती, इसीलिए उसने भुलावा कर न जाने कितने रुपयों का बेकार खर्च किया, इसका लेखा नहीं, यह तुम्हें बन्द करना पड़ेगा।'

द्विजदास ने कहा—'ऐसी बातें भैया के सामने मत कहा करो माँ; वे सोचेंगे बात सच होगी। खर्च के खाते में बाकायदा खर्च का लेखा लिखा जा रहा है, मिलान कर लेने से मालूम हो जायगा।'

दयामयी ने कहा—'किससे मिलाऊँगी? खर्च का लेखा लिखा जा रहा है मानती हूँ, लेकिन अपव्यय का लेखा कौन लिख रहा है बता न यही बात मैं वन्दना को बता रही थी।'

वन्दना बोली—'जानकर ही क्या होगा माँ? रुपये उनके हैं, फिजूल खर्च करें तो मैं कैसे रोकूँगी?'

दयामयी ने कहा—'यह मैं नहीं जानती। तुमने भार लेना चाहा था, मैंने भार देकर छुट्टी पाई। किन्तु एक बात कहूँ वन्दना, तुम्हें भी एक दिन गृहस्थी चलानी होगी, तब फिजूल खर्च को रोकने की जिम्मेदारी अगर आ पड़ी तो 'जानती नहीं' कहने से छुट्टी न मिलेगी।'

द्विजदास की तरफ देखकर वन्दना बोली—'माँ का आदेश सुना न?'

द्विजदास बोला—'अवश्य सुना। लेकिन भैया ने खर्च करने का भार मुझे दिया है, माँ ने तुम पर खर्च न करने का भार दिया। इसलिए

खण्ड युद्ध होगा ही तब दोष देने से काम नहीं बनेगा।'

हँसकर वन्दना बोली—'दोष देने की आवश्यकता न पड़ेगी द्विजू बाबू, हममें झगड़ा न होगा। आपके रुपयों को लेकर आपसे ही युद्ध करने की मूर्खता मुझमें नहीं है। यह शिक्षा मुझे बङ्गाल में मिली है। झगड़े के पहले माँ का दिया हुआ भार माँ के हाथों में ही सौंपकर अलग हो जाऊँगी।'

पूरी तौर पर न समझने पर भी दयामयी इतना समझ गई कि यह मान स्वाभाविक है। उदास होकर बोलीं—'भार मैं वापस लूँगी बेटी, तुम्हें इसे न ढोना पड़ेगा। लेकिन अब यहाँ नहीं, अन्दर चलो, तुम्हारा काम तुम्हें बता दूँ।' इतना कहकर उसे खींच ले गईं।

उस दिन वन्दना इस घर में सिर्फ कुछ घण्टे रही, कहाँ क्या है देखने का अवसर न मिला। आज देखा महलों पर महलों का जैसे ठिकाना नहीं है। आश्रित नातेदारों की तादाद कम नहीं है, बहू, महरी, दासी वगैरह को लेकर एक-एक परिवार है। उधर कचहरी और उसकी अनुषाङ्गिक सारी व्यवस्था है। किन्तु इस हिस्से में है ठाकुरबाड़ी, रसोई, दयामयी की शानदार गोशाला और ऊँची दीवार से घिरा बगीचा और पोखरा। पहले तल्ले के पूरब वाले कमरे दयामयी के हैं, उन्हीं में से एक के सामने वन्दना को लाकर वह बोला—'बेटी, यह कमरा तुम्हारा है, इसी का सारा भार तुम पर रहा।'

उधर वाले बरामदे में बैठी सती और मैत्रेयी कुछ वस्तुओं को बड़े गौर से देख रही थीं। दयामयी की आवाज सुन सिर उठाकर देखा,

और वन्दना को देखकर दोनों काम छोड़कर पास आ खड़ी हुई। वह सचमुच ही आवेगी इसकी आशा किसी ने की न थी। बहिन के चरणों की धूलि ली और मैत्रेयी को नमस्कार किया। माँ बोली—'मेरी यह म्लेच्छ बिटिया किसी एक काम का भार चाहती है बहू, चुपचाप बैठी रहने के लिए वह सहमत नहीं है। तुम्हें कई तरह का काम दिया है, उसे भण्डार की चाभी दो।'

मैत्रेयी ने पूछा—'माँ, इस भण्डार में है क्या?'

'ऐसी चीजें हैं जो म्लेच्छ बिटिया के छूने से छू नहीं जायँगी।' कहकर दयामयी कौतुक के साथ हँसकर वन्दना से द्वार खुलवाकर भीतर आ खड़ी हुई। फर्श पर चाँदी के बर्तनों की थाक सजाई हुई है, ब्राह्मण-पण्डितों को मर्यादा प्रदान करना होगा। कलकत्ते से भुँजाकर रुपये, चवन्नी वगैरह मँगाई गई हैं, थैलियों का ढेर एक जगह लगा हुआ है, गरद वगैरह कीमती कपड़े अभी बोरे में बन्द पड़े हैं, खोलने की फुर्सत नहीं मिली है, इसके अलावा दयामयी की तिजोरी और बक्स इसी घर में हैं। इशारे से दिखा हँसकर बोली—'वन्दना, उसी के अन्दर मेरा सब कुछ है, उसी पर द्विजू को सबसे अधिक लोभ है। बिटिया, तुम्हें सबसे ज्यादा पहरा वहीं देना होगा जिसमें तुम्हें भी मेरी तरह चकमा न दे सके।'

वन्दना के उदास मुख की तरफ देखकर सती बहिन की तरफ से बोली—'माँ, क्या इतने बड़े काम का भार दिया जा सकता है? मामला बहुत रुपये-पैसे का है···।'

उसकी बात समाप्त होने के पहले ही दयामयी बोली—'मामला बहुत रुपये-पैसे का है, इसीलिए, उनके हाथों में चाभी दी है बहू, वर्ना द्विजू मुझे दिवालिया कर देगा।'

'किन्तु वह तो बाहर से आई है माँ?'

सती की यह बात समाप्त नहीं हुई, दयामयी ने हँसकर कहा—'बाहर से एक तुम भी आई थी और उससे भी बहुत पहले इसी तरह बाहर से ही मुझे भी आना पड़ा था। यह कोई दुख की बात नहीं है बहू। लेकिन मुझे फुर्सत नहीं है, जाती हूँ।' इतना कहकर वह चली गई।

वन्दना बोली—'तुम्हारे घर आकर यह किस फन्दे में फँस गई मझली बहिन। मुझे तो साँस लेने की फुर्सत न मिलेगी।'

'जान तो यही पड़ता है।' कहकर सती ने थोड़ा हँस दिया।

तेईसवाँ परिच्छेद

दुनिया में मुसीबत कहाँ रहती है और किस राह कब आत्मप्रकाश करती है, सोचकर हैरान होना पड़ता है। काम के बीच में कल्याणी ने आ रोकर कहा—'माँ, वह कह रहे हैं कि उनके साथ मुझे अभी घर जाना होगा। गाड़ी का समय नहीं है, स्टेशन पर बैठे रहेंगे वह भी ठीक है, फिर भी इस घर में अब एक पल भी न ठहरेंगे।'

तालाब की प्रतिष्ठा की शास्त्रीय क्रिया अभी-अभी समाप्त हुई है, अभी दयामयी ने मण्डप से आकर घर में पैर ही रखा है। घोर व्यस्तता के बीच वह ठमक कर खड़ी हो गई, बेटी की बात उनकी समझ ही में न आई, भौंचक्का होकर बोलीं—'जाने के लिए तुझे किसने कहा—शशधर ने? क्यों?'

'बड़े भाई ने उनका घोर अपमान किया है—घर से निकाल दिया है।' कह कर कल्याणी फूट-फूट कर रोने लगी।

चारो तरफ आदमी हैं, कहीं भोजन का प्रबन्ध, कहीं गाने की महफिल, कहीं भिक्षुकों के झगड़े, कहीं ब्राह्मण-पण्डितों का शास्त्रार्थ, बेशुमार आदमियों का बेअन्दाज शोर-गुल—उसी के बीच एकाएक यह मामला!

सती और मैत्रेयी आई, वन्दना भण्डार में चाभी लगाकर पास आ खड़ी हुई, आत्मीय सम्बन्धीगणों में बहुतेरों को कौतूहल हुआ, शशधर आ प्रणाम करके बोला—'माँ, मैं जाता हूँ! आने का हुक्म दिया था, हम आये, लेकिन रह नहीं सकते!'

'क्यों बेटा?'

'अपने घर से विप्रदास बाबू ने मुझे निकाल दिया है।'

'किस लिए?'

'शायद कारण यह है कि वह बड़े आदमी हैं। गर्व से आँख-कान से देख-सुन नहीं सकते हैं। सोचा है अपने घर में बुलाकर अपमान करना आसान है। किन्तु लड़के को इतना समझा दें कि मेरे बाप भी जमींदारी छोड़ गये हैं, वह भी बिल्कुल छोटी नहीं है। मुझे भी दर-दर भीख नहीं माँगनी पड़ती।'

व्याकुल होकर दयामयी बोलीं—'विपिन को बुलवा रही हूँ के पूछूँ, क्या हुआ है ? मेरा काम अभी समाप्त नहीं हुआ है, ब्राह्मण-भोज शेष है, वैष्णव-भिक्षुकों की बिदाई नहीं हुई है, उसके पहले ही अगर ... लोग नाराज होकर चले गये शशधर तो जिस तालाब की अभी प्रतिष्ठा की है, उसी में डूब कर मर जाऊँगी, यह तुम सही जान लेना।' कहते हुए उनके दोनों नेत्र भर आये।

शशधर पर सास के आँसुओं का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। भद्र सन्तान होने पर भी शशधर की आकृति कोई भी भद्र जनोचित नहीं है। सटकर खड़े होने मे सङ्कोच होता है। उसका विशाल शरीर और विशालतर मुखमण्डल क्रुद्ध बिल्ली की तरह फूलने लगा। बोला—'रह सकता हूँ यदि विप्रदास बाबू यहाँ आकर सबके सामने हाथ जोड़कर मुझसे क्षमा माँगें वर्ना नहीं।'

प्रस्ताव इतना प्रभावित था कि सुनकर सभी मानो आश्चर्य से चुप हो गये। विप्रदास क्षमा माँगेगा हाथ जोड़कर! और सबके सामने! कई पल सभी चुप रहे, अचानक पीला चेहरा लेकर अत्यन्त अनुनय के स्वर में सती बोल उठी—'अभी नहीं ननदोई जी, काम-काज हो जाय, रात को माँ निश्चय ही इसका न्याय करेंगी। तुम्हारा क्या कभी अपमान किया जा सकता है ? गलती की होगी तो वह अवश्य क्षमा माँगेंगे।'

वन्दना के नेत्रों के कोने कुछ चमक उठे, किन्तु शान्त स्वर में बो... 'मझली बहिन, वह गलती तो कभी करते नहीं।'

डाटकर सती बोली—तू चुप तो रह वन्दना। सभी से गलती होती है

वन्दना बोली—'नहीं, उनसे नहीं होती।'

सुनकर मैत्रेयी मानो आगबबूला हो गई, कड़े स्वर मे बोली—'... को पता क्या ? वहाँ तो आप थी नहीं। तब क्या वह अपनी तरफ बना कर कह रहे हैं ?'

पल भर उसकी तरफ देखकर वन्दना बोली—'बनाकर बोलने की मैं नहीं कहती। मैं कहती हूँ कि मुखोपाध्याय जी से गलती नहीं होती

मैत्रेयी जवाब में उसी तरह दिल्लगी करके बोली—'गलती ...

होती है। कोई भगवान् नहीं है। उन्होंने पिताजी का भी अपमानित करना न छोड़ा।'

वन्दना ने कहा—'तो शशधर बाबू की भाँति उन्हें भी चला जाना चाहिए था, ठहरना उचित नहीं था।'

कड़े स्वर में मैत्रेयी ने उत्तर दिया—'यह कैफियत आपको देने की नहीं, न्याय होगा द्विजू बाबू से, जो बुलाकर लाये हैं।'

सती ने नाराज होकर वन्दना का तिरस्कार किया और कहा—'तेरे पैरों पड़ती हूँ, तू यहाँ से जा वन्दना, अपना काम कर।'

दयामयी को लक्ष्य करके शशधर बोला—'मै न्याय-अन्याय के लिए कचहरी करने नहीं आया हूँ माँ, यह पूछने आया हूँ कि आपका बेटा हाथ जोड़कर क्षमा माँगेगा या नही? वर्ना मैं चला, एक मिनट भी न रुकूँगा! आपकी लड़की मेरे साथ जा सकती है, और नहीं भी, किन्तु इसके बाद ससुराल का नाम मुँह से न ले। आज यही उसका अन्त समझ ले।'

कैसी सत्यानाशी बात है यह! शशधर के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है—बेटी-दामाद को घर बुलाकर यह कैसी मुसीबत! कल्याणी सामने खड़ी थी, रोने लगी, राय देने के लिए आदमी नहीं है, सोचने के लिए समय नहीं है—त्रास, लज्जा और घोर अपमान से दयामयी की बुद्धि आच्छन्न हो गई। क्या करना चाहिए, यह समझ में नही आने पर वह बोली—तुम तनिक ठहरो बेटा, मैं विपिन को बुलवा रही हूँ। मैं जानती हूँ कहीं तुमने बड़ी गलती की है, यदि मेरे गाँव में यह कलङ्क प्रकट हो गया, तो मुझे आत्महत्या करनी पडेगी।

शशधर ने कहा—'अच्छी बात है, उन्हें बुलवाइए, मै खड़ा हूँ। विप्रदास बाबू असत्य ही बोले कि यह काम उन्होंने किया नहीं है।'

'वह असत्य नहीं बोलता है शशधर!' कहकर दयामयी ने विप्रदास को बुलवा भेजा। पाँच मिनट के बाद विप्रदास आ गया। उसी तरह शान्त गम्भीर और आत्म समाहित। केवल नेत्रों की चितवन मे एक उदासीन क्लान्ति की छाया है—उसके अन्तराल में कौन सी बात छिपी है, यह बतलाना मुश्किल है।

उच्छ्वास पूर्ण भावावेग से दयामयी बोली उठीं—'शशधर क्या कहता

है विपिन ? कहता है कि तूने उसे घर से निकाल दिया है। क्या वह कभी सत्य हो सकता है ?'

विप्रदास ने कहा—'सत्य नहीं तो क्या झूठ है माँ !'

'क्या सचमुच मेरे दामाद को घर से निकाल दिया ? मेरे इस ब्याह-काज के घर से !'

'हाँ, सचमुच ही निकाल दिया है और कह दिया है कि इस घर में पैर न धरें।'

दयामयी सुनकर वज्राहत की भाँति हो गई। कुछ देर के बाद व्याकुलता दूर होने पर पूछा—'क्यों ?'

'तभी अच्छा होगा कि उसे आप न सुनें माँ।'

सती चुप न रह सकी, व्याकुल होकर बोली—'हममें से कोई नहीं सुनना चाहता, लेकिन जीजा जी कल्याणी को लेकर अभी चले जाना चाहते हैं, इस घर भरे लोगों के बीच सोचकर देखो यह कैसी बदनामी की बात होगी ! उनसे कहो तुमसे अचानक अन्याय हो गया, उन्हें रहने के लिए कह दो।'

पत्नी के मुँह की तरफ पल भर देखकर विप्रदास बोला—'अचानक अन्याय मुझसे होता नहीं है।'

'अवश्य होता है, कुछ-कुछ अन्याय सभी से होता है। उन्हें ठहरने के लिए कहो।'

सिर हिलाकर विप्रदास ने कहा—'नहीं, अन्याय मुझसे नहीं हुआ।'

पति-पत्नी के कथोपकथन के बीच दयामयी चुप थीं, अचानक किसी ने मानो उन्हें झकझोर सचेत कर दिया, कड़े स्वर में बोलीं—'न्याय-अन्याय का झगड़ा रहने दो। मेरे बेटी-दामाद सदैव के लिए गैर हो जायँगे, यह मुझसे सहन न होगा। शशधर से तुम क्षमा माँग लो विपिन !'

'माँ, यह नहीं हो सकता, असम्भव है।'

'सम्भव-असम्भव मैं नहीं जानती। तुम्हें क्षमा माँगनी ही होगी।'

विप्रदास उत्तर न देकर चुप रहा। दयामयी मन ही मन समझ गईं कि इस असम्भव को सम्भव नहीं किया जा सकेगा, गुस्से को ठिकाना न रहा, बोलीं—'विपिन, घर तुम्हारा अकेले का नहीं है। किसी को भगाने

—ं हक मालिक तुम्हें दे नहीं गये हैं। इस घर में वे रहेंगे।'

विप्रदास ने कहा—'देखो माँ, मुझे न बुलवाकर यदि तुम यह आज्ञा देतीं तो मैं चुप रहता, किन्तु अब रह नहीं सकता। अगर यहाँ शशधर रहता है तो मुझे यह घर छोड़कर चला ही जाना होगा। फिर लौटा न सकोगी। बतलाओ कौन सी बात चाहती हो?'

जिन्दगी में ऐसे भयङ्कर प्रश्न का उत्तर देने के लिए कभी किसी ने उन्हें नहीं कहा था, इतनी बड़ी दुर्भेद्य समस्या का सामना करने के लिए भी किसी ने नहीं कहा था। इधर बेटी-दामाद हैं, उधर उनका विपिन खड़ा है। जिस बच्चे को छाती से लगाकर बड़ा किया था, जो सभी आत्मीयों से बड़ा आत्मीय है, दुख में सान्त्वना, विपत्ति में सहारा है, जो बेटा उन्हें प्राणों से ज्यादा प्यारा है। यह अमर्यादा उन्हें मौत दे सकती है, लेकिन संकल्पच्युत नहीं कर सकती। समझ गई कि सर्वनाश का अतल गड्ढा उनके पाँव के नीचे है, इस भूल का उपाय नहीं हो सकता, वापस आने के लिए रास्ता नहीं है। इसका नतीजा विधाता के लेख की तरह अचूक, निर्मम और अनन्यगति है। फिर भी अपने को वश में न रख सकीं, अदम्य क्रोध और अभिमान के झोंके ने उन्हें सामने की तरफ धकेल दिया, कटु स्वर में बोली—यह तुम्हारी बेजा हठ है विपिन। तुम्हारे लिए बेटी-दामाद को जन्म भर के लिए बेगाना कर दूँ यह हो नहीं सकता बेटा। तुम्हारा जो मन हो, करो। शशधर, तुम लोग मेरे साथ आओ—उसकी बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। यह घर सिर्फ उसी का तो नहीं है।' यह कहकर कल्याणी और शशधर को सङ्ग लेकर वह चल दी। उनके पीछे-पीछे गई मैत्रेयी, मानो वह उन्हीं की अपनी है।

ऐसा जान पड़ा मानो सती अब टूक-टूक हो जायगी। लेकिन उसकी अडिग दृढ़ता को देखकर वन्दना और विप्रदास दोनों को आश्चर्य हुआ। उसके नेत्रों में आँसू नहीं हैं, लेकिन चेहरा बहुत पीला है। वह बोली—'बहनोई जी ने क्या किया है मैं नहीं जानती, पर बेकार ही तुमने भी इतनी बड़ी घटना नहीं क. है यह निश्चित रूप से जानती हूँ। दिल में यह मत समझना कि मैं तुम्हें कभी दोष दूँगी।'

विप्रदास मौन रहा। सती ने पूछा—क्या आज ही चले जाओगे तुम?

'नहीं, कल जाऊँगा।'

'अब इस घर में नहीं आओगे?'

'जान तो नहीं पड़ता।'

'मैं? वासु?'

'तुम्हें भी जाना पड़ेगा। यदि कल न हो सके तो और किसी दिन सही।'

'नहीं, किसी और दिन नहीं, हम भी कल ही चलेंगे।' कहकर सती ने वन्दना से पूछा—'तू क्या करेगी वन्दना, कल ही चलेगी?'

वन्दना ने कहा—'नहीं। मैंने तो झगड़ा नहीं किया है, मझली दीदी, जिससे दलबद्ध होकर कल ही जाना पड़ेगा।'

सती ने कहा—'झगड़ा तो मैंने भी नहीं किया है वन्दना, और न उन्होंने ही किया। किन्तु जहाँ उनके लिए स्थान नहीं है, वहाँ मेरे लिए भी नहीं। एक दिन के लिए भी नहीं! तू विवाहित होती तो यह बात जानती।'

वन्दना ने कहा—'विवाहित न होने पर भी समझती हूँ मझली दीदी, पति के लिए स्थान न होने पर पत्नी के लिए भी नहीं होता। किन्तु भूल तो होती ही है, बिना समझे ही उसी को स्वीकार कर लेना स्त्री का कर्त्तव्य है, तुम्हारी बात न मानूँगी।'

सास के प्रति सती के मान की हद नहीं थी, बोली—'तुम्हारे पति होते तो मानती।' कहकर आँसू रोकने के लिए सती शीघ्रता से चल दी।

वन्दना ने कहा—'यह क्या किया मुखोपाध्याय जी?'

'इसके अलावा कोई जरिया नहीं था वन्दना।'

'लेकिन माँ से विच्छेद, इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।'

विप्रदास ने कहा—'नहीं की जा सकती—सच है, लेकिन नया प्रश्न आकर जब राह रोक कर खड़ा हो जाता है, तब नये समाधान की बात सोचनी ही होती है! बच कर निकल जाने की राह नहीं रहती। तुम्हारी मझली दीदी मेरे साथ जायँगी ही, रोकना बेकार है। पर तुम? सोचती हो दो-चार दिन और रहोगी।'

वन्दना ने कहा—'कितने दिनों तक रहना होगा, मैं जानती न-

किन्तु नये प्रश्न आपके सामने जितने भी आवें, लेकिन मैं उसी पुराने रास्ते पर ही उसके उत्तर की तलाश करूँगी जिस रास्ते को पहले दिन देखा। मैंने जिसकी तुलना कहीं नहीं देखी, जिसने मेरे मन की धारा को सदैव के लिए बदल दिया है।'

द्विजदास ने इसका कोई जवाब नहीं दिया, उसके ओठो के कोने में कुछ म्लान हँसी की रेखा दिखाई पड़ी। वह हँसी जैसी वेदना की है, वैसे ही निराशा की भी। बोला—'मैं बाहर जा रहा हूँ वन्दना, फिर भेंट होगी।'

वन्दना के नेत्रों मे पानी भर आया। बोली—'भेंट हुई तो दूर से ही आपको प्रणाम करूँगी। आपका कठोर स्वभाव है, मन कड़ा है, न स्नेह है और न क्षमा। यदि तब बोल न सकूँ, सुयोग अगर न मिले अभी से बोल दूँ मुखोपाध्याय जी, जिन्हें लेकर हम गृहस्थ हैं, हँसते-रोते हैं, मान अभिमान करते हैं, उन्हीं को लेकर रह सकूँ, इस जिन्दगी में अपना समझना सीखूँ। मृगतृष्णा के पीछे राह न खो दूँ।' कुछ रुककर बोली—'दूर से जब आपकी याद आयेगी, तब—तब एकाग्र होकर इस मन्त्र का जाप करूँगी, वह निर्मल हैं, निष्पाप हैं, वह महान् हैं। उनके मन की पाषाण शिला पर तनिक भी धब्बा नहीं पड़ता। संसार में वह अकेले हैं, किसी के अपने वह नहीं हैं, संसार मे कोई उनका अपना नहीं हो सकता।' यह कहकर दोनों नेत्रों को आँचल से ढँक कर वह कमरे से बाहर निकल गई।

उस दिन काम-काज बहुत रात को समाप्त हुआ। इस घर की सुश्रृङ्खला बद्ध धारा मे कहीं कोई गलती नहीं हुई। बाहर से कोई जान भी न सका कि इस श्रृङ्खला की सब से बड़ी कड़ी आज चकनाचूर हो गई। प्रातः होने में ज्यादा देर नहीं है, काम से थका-मांदा विशाल भवन बिल्कुल स्तब्ध है, जिसे जहाँ जगह मिली, वहीं सोया है, भण्डार की भारी जिम्मेदारी को खत्म कर वन्दना थके पैरों अपने कमरे में जा रही थी, देखा उधर के बरामदे की बगल में द्विजदास के कमरे में बत्ती जल रही है। शंका हुई कि ऐसे समय मे जाना उचित है या नहीं, किसी की निगाह पड़ी तो सुविचार वह नहीं करेगा, बदनामी सौ मुँह से फैलेगी, किन्तु रुक नहीं सकी, जिस उद्वेग ने उसे सारे दिन चञ्चल और बेचैन कर रखा है, वह उसे खींच ले गया। बन्द दरवाजे के

सामने खड़ी होकर पुकारा—'द्विजू बाबू, अब तक जग रहे हैं ?'

'हूँ ! लेकिन इस समय आप कैसे ?' भीतर से आवाज आई।

'अन्दर आ सकती हूँ ?'

'प्रसन्नता से।'

द्वार खोलकर अन्दर घुसकर देखा कि कागजात का ढेर लेकर द्विजदास बिस्तर पर बैठा है। पूछा—'क्या आज का हिसाब है ? किन्तु हिसाब भाग तो जायगा नहीं द्विजू बाबू, इतनी रात तक जागने से तबीअत खराब होगी।'

द्विजदास ने कहा—'होती तो छुट्टी मिलती, इन्हें नेत्रों से देखना न पड़ता।'

'क्या खर्च बहुत अधिक हो गया है ? [illegible] गया।' [illegible] री कैफियत देनी पड़ेगी ?' [illegible] क्या यह [illegible]

कागजात को एक तरफ खिसका कर द्विजदास सीधा होकर बैठा। बोला—'चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि च।—वन्दना देवी, श्री गुरु की कृपा से मेरे पहले के दिन अब नहीं रहे कि भैया को कैफियत दूँ। अब उल्टे मैं कैफियत तलब करूँगा। कहूँगा—लाओ जल्दी से हिसाब, जल्दी से रुपया लाओ, कहाँ क्या किया बताओ ?'

वन्दना ने अचरज करके पूछा—'क्या मामला है ?'

दोनों हाथों की मुट्ठी बाँध सिर पर उठाकर द्विजदास बोला—'मामला बड़ा भयङ्कर है। माँ दयामयी मुझ पर दया करें, बहनोई शशधर मेरे मददगार हों, सावधान विप्रदास ! अब मैं तुम्हें धन-प्राण से बध करूँगा ! हमारे हाथों से अब तुम्हारा छुटकारा नहीं !'

वन्दना की चिन्ता स्वतन्त्र हो उठी, फिर भी वह बिना हँसे न रह सकी, बोली—'सभी बातों में हँसी-तमाशा ! द्विजू बाबू, एक पल भर भी आप गम्भीर नहीं होना जानते ?'

द्विजदास ने कहा—'नहीं जानता ! तो लाओ, शशधर को लाओ, नहीं, उन्हें रहने दो। देखोगी, हँसी तमाशा पल भर में भाग जायगा सहारा में, गाम्भीर्य से मुखमण्डल जङ्गली सूरत जैसा भयानक न [illegible] उठेगा। जाँच कीजिए।'

कुर्सी खींचकर वन्दना बैठ गई—'तो आपने सब कुछ सुना है ?'

'सब कुछ नहीं थोड़ा सा। सब कुछ जानते हैं भैया, पर वह गहन है। शशधर जानता है। वह बोलेगा जरूर, लेकिन कल अपनी से गढ़कर असत्य बोलेगा।'

व्याकुल स्वर में वन्दना बोली—'जो कुछ जानते हैं मुझे बतला ...ते द्विजू बाबू ? मैं सचमुच ही बहुत भयभीत हो गई हूँ।'

द्विजदास ने कहा—'भय भी होना बेकार है। भैया का दृढ़ निश्चय ...ने का नहीं, उन्हें हमने गँवा दिया।'

दीपालोक में दिखाई दिया कि अब आँसुओं से उसके दोनों नेत्र छलछला ...खोपाध्याय जी, ...माकर किसी तरह पोंछकर फिर सीधा होकर बैठ गए... करते ... ...ना ने कहा—'क्या रोका नहीं जा सकेगा ?'

...ना ...लाकर द्विजदास ने कहा—'नहीं। यह चीज जब आती है तब ...सी तरह अबाध होकर, इसी तरह तेज चाल से आती है, मना करने से नहीं मानती। जिसे रोना होता है वह रोता है, लेकिन अन्त वहीं हो जाता है।' पल भर चुप रहकर बोला—'आप कारण जानना चाहती थीं। अधिक नहीं जानता, लेकिन जितना जानता हूँ वह सिर्फ आप को ही बतलाऊँगा और यदि मदद कभी माँगनी पड़ी तो, कहीं भी रहें, वह केवल आपसे ही माँगूँगा।'

'केवल मुझसे ही क्यों ?'

'इसकी वजह है। अगर हाथ फैलाना ही पड़ा, तो महत् के द्वार पर ही फैलाना शास्त्रीय नियम है।'

'लेकिन महत् क्या और कोई है नहीं ?'

'शायद है, लेकिन पता नहीं मालूम। भैया की बात नहीं उठाऊँगा, था सदा से भाभी के समाने हाथ फैलाने की आदत थी, पर वह रास्ता भी बन्द हुआ। आप उनकी बहिन हैं, इसी से मेरा दावा है।'

'लेकिन माँ ?'

द्विजदास ने कहा—'रथ जब तेज चलता है, माँ उसकी असाधारण ...थवान हैं पर पहिया जब कीचड़ में बैठ जाता है, उनके पास उपाय नहीं है। उतर कर वह ढकेल नहीं सकतीं। उस बुरे वक्त में आपके पास

जाऊँगा। भीख नहीं देंगी?'

'भीख का विषय जाने बिना उत्तर कैसे दूँ द्विजू बाबू?'

'उसे स्वयं भी नहीं जानता वन्दना, आसानी से माँगने भी जाऊँगा। जब कहीं न मिलेगी तभी जाऊँगा।'

वन्दना बहुत देर के बाद सिर ऊपर उठाकर बोली—'जो : चाहा था बतलायँगे नहीं?'

द्विजदास ने कहा—'सारी बातें नहीं जानता, जितना जानता शायद वह भी अभ्रान्त नहीं है। किन्तु एक बात पर मुझे शक नहीं है कि भैया आज कङ्गाल हैं। सब कुछ निकल गया।'

वन्दना ने कहा—'मुखोपाध्याय जी कङ्गाल? कैसे हुआ यह?'

द्विजदास ने कहा—'बड़ी सरलता से उसी शशधर की साजिश से। साहा चौधरी कम्पनी जिस दिन अचानक दिवालिया हुई, भैया का सब कुछ उसी में डूब गया। पर यह सिर्फ बाहरी घटना है, जितना नेत्रों से दिखाई पड़ा। भीतर दूसरा इतिहास छिपा रहा।'

व्याकुल होकर वन्दना ने कहा—'इतिहास रहने दीजिए द्विजू बाबू, केवल घटनाओं की ही बातें कीजिए। बतलाइए सब कुछ डूब जाना सत्य है या नहीं?'

'हाँ, सत्य है। इसमें कोई गलती नहीं।'

'लेकिन मँझली बहिन? बासु? उनका कुछ भी शेष नहीं रह गया?

'नहीं। रह गई केवल भाभी के मयके की आमदनी। सिर्फ थोड़े रुपये।'

'लेकिन उसे तो मुखोपाध्याय छुयेंगे नहीं द्विजू बाबू!'

'नहीं। इससे उपवास पर भैया को अधिक विश्वास है। जितने दि चलें।'

दोनों चुप रह गये। कुछ मिनट के बाद वन्दना ने पूछा—'दि. आप? क्या हुआ आपका?'

द्विजदास ने कहा—'बिलकुल निर्भय और निरापद हूँ। भैया स्वयं डू

पर मुझे उबार रखा। पानी का एक छींटा तक बदन में नहीं लगने दिया। कहेंगी, यह असम्भव सम्भव कैसे हुआ? हुआ माँ की सुबुद्धि से, भैया की साधुता से और मेरे शुभग्रहों के फल से। किस्सा यह है सुनिए—यह शशधर था भैया का बाल्यमित्र सहपाठी। दोनों में प्रेम की सीमा नहीं थी। बड़े होकर इसके साथ भैया ने कल्याणी का ब्याह कर दिया। यह अगुआई ही भैया के जीवन की अक्षय कीर्त्ति है। सुनाई पड़ा शशधर के बाप की बड़ी जमींदारी है, विशाल सम्पत्ति और विशाल कारोबार है। इतना बड़ा धनी पावना के इलाके में दूसरा नहीं। चार साल बीते, अचानक एक दिन शशधर ने आकर कहा कि जमींदारी, ऐश्वर्य कारोबार अतल तल में डूबने में देर नहीं, रक्षा करनी होगी।' माँ ने कहा—'रक्षा करना ही उचित है, पर मेरा द्विजू नाबालिग है, उसके रुपये में तो हाथ नहीं लगाया जा सकता भैया।' वह बोला—'साल भी पूरा नहीं होने पावेगा माँ, अदा हो जायगा।' माँ ने कहा—'अशीर्वाद देती हूँ यही हो, लेकिन नाबालिग की सम्पत्ति है, निषेध है मालिक का।'

'रोकर कल्याणी भैया के पैरों पर जा गिरी। बोली—'भैया, ब्याह कराया था तुम्हीं ने, आज बाल-बच्चे लेकर दर-दर भीख माँगती फिरूँगी, तुम अपने नेत्रों से देखोगे? माँ देख सकती हैं, पर तुम?' जहाँ उनका धर्म है, वहाँ उनका विवेक और वैराग्य है, वहाँ वह हम सबसे बड़े हैं, कल्याणी ने वहीं हृदय को स्पर्श किया। भैया अभय वचन देकर बोले—'तू घर जा बहिन, जो बन पड़ेगा मैं करूँगा।' उस अभय-मन्त्र का जाप करती हुई कल्याणी घर लौट गई। उसके बाद का इतिहास संक्षिप्त है वन्दना। लेकिन देखिए प्रातः हो गया।' यह कह खुली खिड़की की तरफ उसने निगाह जमाई।

वन्दना ने खड़े होकर पूछा—'लेकिन आपके ये कागजात कैसे हैं?'

द्विजदास ने कहा—'मेरे निर्भय रहने के दस्तावेज हैं। आते समय भैया साथ लाये थे। आप भी क्या हमें छोड़कर आज ही चली जायँगी?'

'सही-सही नहीं जानती द्विजू बाबू। वक्त नहीं है, मैं चली। फिर भेंट होगी।' कह कर वह आहिस्ता-आहिस्ता बाहर निकल गई।

चौबीसवाँ परिच्छेद

वन्दना मझली दीदी को जबरदस्ती एक कुर्सी पर बैठाकर उनके पैरों में महावार लगा रही थी। यह मङ्गलाचार उसे सिखला कर अन्नदा ने स्वयं आत्मगोपन किया है। उसके नेत्र लाल हैं। अविरत आँसू बहने से पपनियाँ सूज आई हैं, वन्दना के प्रश्न के उत्तर में उसने थोड़े में कहा था—'बहू को मै मुँह नहीं दिखा सकती।'

'तुम दिखा क्यों न सकोगी अनु बहिन, तुम्हें शर्म किस बात की?'

'मुझे शर्म इस बात की है कि मै इसके पहले ही मर क्यों नहीं गई? केवल द्विजू को ही बड़ा नहीं किया था, विपिन को भी किया था। उसकी माँ जब मर गई, किसके हाथों में दिया था अपने दो महीने के बच्चे को? मेरे हाथो मे। दयामयी कहाँ थीं उस दिन? उनके बेटी-दामाद कहाँ थे?' बोलती हुई वह आँचल से मुँह छिपाकर शीघ्रता से कहीं चली गई। फर्श पर बैठ कर अपनी जाँघ पर बहिन के दोनो पैरों को रख वन्दना का महावर लगाना मानो समाप्त ही न होना चाहता है।

एक गरम आँसू टपककर सती के पैर पर गिरा। झुककर भी वह वन्दना का मुख न देख सकी। लेकिन हाथ बढ़ाकर उसके नेत्र पोंछकर बोली—'वन्दना, तू क्यो रो रही है, बतला तो?'

वन्दना उसी तरह सिर नीचा किये हुए रुँधे गले से बोली—'सभी तो रो रहे हैं मझली दीदी। कुछ मैं ही अकेली नहीं रो रही हूँ।'

'सभी रो रहे हैं इसीलिए तुझे भी रोना चाहिए, इतना पढ़-लिखकर यही तेरी बहस है?'

बहिन की बात सुनकर वन्दना ने पल भर के लिए सिर उठाकर देखा, बोली—'बहस करके रोना नहीं होगा तो आदमी रोवेगा भी नहीं, तुम्हारी बहस क्या यही है मझली दीदी?'

हाथ से उसका सिर हिलाकर स्नेह से सती ने कहा—'बहस करने वाले से बहस में पार नही पाया जा सकता। यह नही कहा है रे, यह मैंने नहीं कहा है। उन्होंने समझा है कि मेरा शायद सब कुछ चला गया। इसीलिए वे रो रहे हैं, किन्तु सचमुच में यह बात नहीं है। मेरे

है, मेरे लिए तू दुःख मत कर, मुझे दुख नहीं है।'

वन्दना ने कहा—'दुख तुम्हें हो भी मझली बहिन, लेकिन दुख ही दुनिया में सब कुछ नहीं है। तुम्हारी कितनी हानि हुई, इसे तुम्हीं जानती हो, किन्तु रोते-रोते जिन्होंने नेत्र फोड़ डाले, उनकी क्षतिपूर्ति करेगा कौन बतलाओ न?'

कुछ रुककर बोली—'मुखोपाध्याय जी पुरुष हैं, जो जी में आये कहें, किन्तु जाते वक्त आज सूखे नेत्रों बिदा मत होना बहिन। वह उन्हें बहुत अखरेगा।'

'किन्हें अखरेगा वन्दना?'

'किन्हें? उन्हें तुम जानती नही हो, नौ वर्ष की थी तो इस पराये के घर में आई थी, उस घर को वर्षों में जिन्होंने तुम्हारा अपना बना दिया, उन्हें आज एक ही धक्के मे भूल गई मझली बहिन? तुम्हारी सास, तुम्हारे देवर, तुम्हारे घर के नौकर-चाकर, आश्रित परिजन, ठाकुरबाड़ी, अतिथिशाला, गुरु-पुरोहित—इनकी कमी क्या केवल पति-पुत्र से पूरी हो जायगी? और कोई जीवन मे नहीं है सिर्फ ये ही है?'

वन्दना कहने लगी—'यह किनके मुँह की बात है जानती हो मझली बहिन, जिनके बीच में लालित-पालित हुई हूँ। तुमने सोचा है पतिभक्ति की यह आखिरी बात है? स्त्री के सोचने की कोई विशेष बात नहीं है? यह तुम्हारी गलती है। कलकत्ते मे मेरी मौसी के घर पर चलो देखोगी वहाँ यह बात पुरानी हो गई है, इससे ज्यादा वे भी नहीं सोचती हैं, करती भी नहीं हैं। किन्तु···।' कहकर बीच मे वह थम गई। सहसा उसे मालूम हुआ कि कोई पीछे खड़ा है, मुँह फेरकर देखा—द्विजदास है! कब धीरे से वह आकर खड़ा हो गया, दोनों मे कोई जान भी न सका। लज्जित होकर वन्दना कुछ कहना चाहती थी, द्विजदास रोककर बोला—'डरो मत मौसी को भी नहीं पहचानता, उनके दल के किसी को नहीं जानता, आपकी बातें उनसे कहूँगा। किन्तु आप गलती कर रही हैं। दुनिया में जन्तु-जानवरों का भी दल है, उनके आचरण को आशाबद्ध किया जा सकता है, किन्तु आदमी का दल नहीं है। उनके विषय में मोटा-मोटी फैसला

मौसी के दल से खींच लाकर अचानक ही भैया के दल में भर्ती सकता है, और फिर दयामयी के दल से लाकर सरलता से उस मैत्रेयी आपकी मौसी के दल में भेजा जा सकता है। शर्त रखकर कह सकता कि कहीं रत्ती भर भी झगड़ा न होगा। वाह रे मनुष्य का मन! वाह उसकी प्रकृति!'

सती अचरज करके बोली—'इस बात का मतलब क्या?'

द्विजदास कुछ अधिक अचरज प्रकट करके बोला—'तुम्हें मतलब बतलाना पड़ेगा? द्विजू के काम, द्विजू की बात का यदि मतलब ही होता तो भाभी! इतने दिनों तक दयामयी-विप्रदास के दरबार में जाकर तुम्हारे पास सारी दरखास्तें क्यों पेश करता? मतलब समझने की परवाह तुम्हें नहीं है इसीलिए तो? आज जाने के दिन उतना ही रहने दो भाभी, गलती-सही ये सूक्ष्म विचार रहने दो।' यह कह सामने आकर उसके पैरों पर सिर रख कर प्रणाम किया। ऐसा वह करता नहीं है। पैरों के कच्चे महावर का रङ्ग उसके माथे पर लग गया, सती व्यस्त होकर आँचल से पोंछने लगी, किन्तु उसने गर्दन हिला, सिर हटाकर कहा—'अपने आप ही दाग मिट जायगा भाभी, एक दिन रहता है तो रहने दो। कुछ भी बात नहीं है। द्विजू ने हँसकर ही कहा, किन्तु वन्दना के नेत्रों में आँसू भर आये। छिपाने की चेष्टा में वह सिर ऊपर उठा न सकी।

द्विजदास ने कहा—'मैं याद दिलाने आया था। वक्त हो रहा है, भैया व्यस्त हो गये हैं। चीज भेज दी गई हैं, बासु को कपड़े पहनाकर गाड़ी में बैठा दिया है, मङ्गल-कर्त्ता का आयोजन किसने करा दिया, मालूम नहीं किन्तु वह भी पास मिल गया। डर गया था कि अनु बहन डूब कर मर गई होंगी, किन्तु सन्देह होता है कहीं जीवित हैं। वर्ना वह आया कहाँ से? पर जब उसका पता चलेगा तब उसकी आवश्यकता नहीं होगी। उधर दयामयी के कमरे की सिटकियी बन्द है। मुसीबत से छुटकारा पाने का जो रास्ता उन्होंने अपनाया है, उसमें करने के लिए कुछ नहीं है। किन्तु श्रीमती मैत्रेयी को कह सकती हो, बात यथासमय माँ के कानों तक पहुँच जायगी। पर मैं कहता हूँ आवश्यकता नहीं है। अब तुम तनिक तत्पर होकर चलो,

में बैठो तो भाभी, तुम्हें गाड़ी में चढ़ा आऊँ तो मुझे भी छुट्टी मिले, : काम करूँ !'
सती फीकी हँसी हँसकर बोली—'मुझे विदा करने के लिए देवर को जल्दी है।'
'काम जो पड़ा हुआ है।'
'तुम्हें तो कौन सा काम है?'
'इसके पहले तो कभी सुनना नहीं चाहा है भाभी। जब जो माँगा पूछे ही सदा देती आई हो। यह तुम्हारे सुनने के योग्य है!'
सती और वन्दना दोनों पल भर चुप होकर उसकी तरफ देखती रहीं, सती बोली—'तुम जाओ देवर, अब मुझे देर नहीं होगी।' वन्दना ने बोली—'तू भी यहाँ देरी न करना बहिन, जितनी जल्दी हो सके चली जाना। कलकत्ता जाने की आवश्यकता नहीं, स्मरण रहे : वहाँ अकेले हैं।'
वन्दना ने द्विजू की तरह पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किया, पद-धूलि माथे पर लगाई। बोली—'नहीं मझली बहिन, मौसी के घर अब आऊँगी। वहाँ से पाठ खत्म करके निकली थी, इसे कभी भूल नहीं।' यह कहकर वह आँचल से आँसू पोंछकर बोली—'शायद कल लौट जाऊँगी, किन्तु तुम भी जाने के पहले वचन दे जाओ बहिन कि फिर हम शीघ्र ही तुम्हें देख सकें।'
मन ही मन सती ने क्या आशीर्वाद दिया, यह वह जानती है। हाथ ठुड्डी पकड़कर चुम्बन किया, हँसकर बोली—'वह तो तेरे अपने ही म है वन्दना। काका से कहना शादी का न्योता पाने पर, जहाँ भी जाकर उपस्थित होऊँगी।' कुछ ठहर कर शायद मन में सोचा, कहना था या नहीं, फिर बोली—'बड़ी इच्छा थी, तू इसी घर में आयेगी। के हाथों में तुझे सौंपकर तेरे हाथों में गृहस्थी का भार, बासू का सब देकर माँ जी के साथ कैलाश का दर्शन करने जाऊँगी, लौट न तो कोई बात नहीं, किन्तु आदमी सोचता कुछ है और होता है और।' यह कहकर वह खामोश हो गई। कुछ देर तक खामोश रह बोली—'इस घर में मैंने जो कुछ पाया था, वह दुनिया में किसी को

नहीं मिलता है और फिर सब से ज्यादा पाया था अपनी ...
लेकिन सबसे अधिक बिलगाव उन्हीं से हुआ। जाने के पहले प्रणाम न कर सकी। द्वार बन्द है।' चौखट की धूल मस्तक पर लगाकर बोली 'माँ, इस लड़की पर तुम्हारे पैरों की धूल लगी है, यह मेरा...।' समाप्त नहीं कर सकी, गला रुँध गया, वह बेचैन हो उठी, उसके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली। दो-तीन मिनट सँभालने में आँचल से आँखें पोछकर बोली—'अब अनु बहिन नहीं मिली। मेरी माँ से भी बड़ी है वन्दना। हम चले जायँ तो उनसे कहना कि नाराज हो गई हूँ।' फिर नेत्रों मे पानी भर आया, फिर आँचल से ... पोंछा। निमु नाम की एक बिल्ली पाली थी। काम-काज के घर में कहाँ गई है पता नहीं। सबेरे से कई बार याद आई थी, अब भी ... आई। बोली—'निमु कहाँ गायब हुई, देखकर नहीं जा सकी। अनु ... से कहना तो वन्दना।' यद्यपि थोड़ी देर पहले दावे के साथ कह... उसके एक तरफ हैं पति और दूसरी तरफ सन्तान, ... हानि नहीं हुई है। बात कितनी असत्य है!

'क्या कर रही हो भाभी?' बाहर से द्विजदास ने फिर आवाज ...

'आती हूँ भाई!' कहकर सती शीघ्रता से निकल गई।

* * *

द्विजदास जब अकेला स्टेशन से लौटा तब शाम बीत चुकी थी। घर में उसी तरह चिराग जले हैं, उसी तरह लोग अपने कामों में ... हैं, इस विशाल परिवार मे कहाँ क्या उथल-पुथल हो गया है, ... नहीं जानता। बाहर के खण्ड में ऊपर विप्रदास के बैठकखाने की ... बन्द है, उधर अँधेरा है। ऐसे कितने ही दिन चिराग नहीं जलता है, ... कलकत्ता रहते हैं, कोई अनहोनी बात नहीं है, सीढ़ी के बगलवाले ... में रहता है अशोक, खिड़की से दिखाई पड़ा आराम कुर्सी पर पैर फै... प्रकाश मे दत्तचित होकर कोई पुस्तक पढ़ रहा है। कॉलेज नागा ... अक्षय बाबू आज भी उपस्थित हैं, उनका घर है एक छोर पर, वह ... हैं या हवा खाने बाहर निकल गये हैं, यह मालूम नहीं हुआ। ...
आँगन मे पैर रखते ही द्विजदास की निगाह दोतल्ले की लाइब्रेरी के

पर पड़ी। शाम के बाद इस कमरे में प्रायः अँधेरा रहता है, किन्तु आज खुली खिड़की से प्रकाश आ रहा है। उसे सन्देह नहीं रहा कि वहाँ वन्दना है। पुस्तक पढ़ने नहीं, आँसू बहाने के लिए। लोगों के संसर्ग से पिण्ड छुड़ाने के लिए, उसने इस स्तब्ध कमरे में आश्रय लिया है। आज की रात किसी प्रकार काटकर वह भी कल सुदूर बम्बई चली जायगी, जहाँ वह इतनी बड़ी हुई, जहाँ हैं उसके आत्मीय-स्वजन, उसके कितने ही पुराने सखा और सहेली। कभी किसी भी बहाने इस देहात में उसका आना सम्भव है यह सोचा भी नहीं जा सकता है। न आने पर इस घर को वह आसानी से भूलेगी नहीं। यह संसार विचित्र है, कितनी अचिन्तनीय बातें पल भर में हो जाती हैं। एक-एक करके उस पहले दिन से आज तक की सभी बातें याद आईं। वह अचानक आना और अचानक नाराज होकर चला जाना। बीच में केवल कुछ घण्टों की बातचीत। उस दिन वन्दना ने सहास्य कहा था 'केवल आँखों देखा परिचय नहीं है द्विजू बाबू वर्ना देवर का गुणगान लिख भेजने में मझली बहिन ने कुछ शेष नहीं रखा है। मैं सब कुछ जानती हूँ, आपके विषय में कोई भी बात मेरी अनजान नहीं है। जब कभी घर भर के लोगों को जितना परेशान किया है, उसकी सारी खबरें मेरे पास पहुँची है।' द्विजदास ने पूछा था—'हम एक दूसरे को पहचानते नहीं, फिर भी आपके सामने मुझे बदनाम करने की कौन सी सार्थकता थी?' वन्दना ने हँसकर उत्तर दिया—'वास्तव में मझली बहिन आपको देख नहीं सकती थी, यह उसी का बदला है।'

इसके बाद दोनों ने हँसकर बात को मजाक में बदल दिया था, किन्तु उस दिन दोनों में किसी ने नहीं सोचा था कि यह था सती का वन्दना के प्रति द्विजू के चित्त आकर्षण का कौशल। यदि बहिन कभी करीब आई, अगर कभी उसके हाथों अशान्त देवर को शान्त किया जा सके, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। उसकी छिपी भावना छिपी ही रह गई। आज भी दोनों में कोई भी उन पत्रों का अर्थ न लगा सका।

द्विजदास एकदम ऊपर चला गया। पर्दा हटा भीतर घुसकर देखा वन्दना की गोद में पुस्तक खुली है, किन्तु वह खिड़की के बाहर एकटक देख रही है। एक लाइन भी पढ़ी है कि नहीं, इसमें सन्देह है, जानते हुए

भी उसने बातचीत शुरू करने के लिए ही प्रश्न किया—'कौन सी पुस्तक पढ़ रही थी?'

वन्दना ने पुस्तक बन्द करके मेज पर रखी और उठ खड़ी होकर बोली—'आपको लौटने में इतनी देर हो गई? कलकत्ते की गाड़ी तो कब की चली गई!'

द्विजदास बोला—'देर भले ही हो, लौट तो आया हूँ। न भी आ सकता था तो!'

वन्दना ने कहा—'बड़ी प्रसन्नता से।'

द्विजदास पल भर चुप रहकर बोला—'ठीक यही बात पहले मुझे स्मरण हुई थी।' गाड़ी चल दी, खिड़की में गर्दन बढ़ाकर बासु हाथ हिलाने लगा, धीरे-धीरे उसके नन्हें हाथ मोड़ के पीछे छिप गये। पहले मन में आया सङ्ग चला जाना ही तो बेहतर होता···।'

वन्दना ने कहा—'आप बासु को बहुत स्नेह करते हैं न?'

द्विजदास कुछ सोचकर बोला—'देखिए उत्तर क्या दूँ, इन चीजों का शायद मैं स्वरूप ही नहीं जानता। स्वभाव इतना रूखा है, इतना नीरस है कि पल भर में सब कुछ हवा होकर केवल सूखी बालू पहले की भाँति धू धू करने लगती है। प्लेटफार्म पर खड़ा था, एक बार नेत्रों में आँसू भर आये किन्तु फिर उसी दम अपने आप सूख गये, कहीं कुछ भी न रहा!'

वन्दना ने कहा—'यह भी एक तरह का भगवान् का आशीर्वाद है!'

द्विजदास कहने लगा—'क्या जानें, किन्तु इसी बासु के भय से माँ ने कल से घर का द्वार बन्द कर रखा है। वर्ना भैया के लिए भी नहीं और भाभी के लिए भी नहीं। माँ सोचती हैं कि बासु का उन्होंने लालन-पालन किया है, किन्तु हिसाब लगा कर देखें तो उसकी आयु का आधा तो उन्होंने तीर्थ-यात्रा में व्यतीत किया है। तब वह रहता कहाँ था? मेरे पास। टॉय-फायड बुखार में साठ रात कौन जागा? मैं। आज जाने के समय किसने सजाया? मैंने। मेरी आलमारी में उसके कपड़े रहते हैं, उसकी पुस्तक-स्लेट मेरी मेज पर रहती है, बिस्तर मेरी खाट पर है। माँ घसीट कर ले जाती हैं, लेकिन कितनी ही बार नींद खुलने पर वह मेरे कमरे में भाग आता है।'

...ने तो पल भर से ज्यादा देर नहीं लगती !'

द्विजदास ने कहा—'हाँ। मेरा स्वभाव भी यही है। उसके लिए ... नहीं फिक्र है कि वह अपने माँ बाप के पास जा पड़ा। आप कहेंगी, ...र में यही स्वाभाविक है, इसमें भय की कौन सी बात है ? किन्तु ...भाविक होने के कारण ही डर यह है कि इतनी बड़ी उल्टी बात मैं लोगों को कैसे समझाऊँगा ?'

वन्दना ने यह नहीं कहा कि समझाने की कौन सी आवश्यकता पड़ी है, दूसरी तरफ माँ-बाप के विरुद्ध इतने बड़े इल्जाम पर यकीन कर लेना भी उसके लिए मुश्किल है, खासकर विप्रदास के खिलाफ। लेकिन कोई तर्क न करके वह चुप ही रहा।

दूसरे क्षण बात स्पष्ट करने के लिए द्विजदास स्वय बोला—'धीरज की बात है कि भाभी पास ही हैं, वर्ना भैया के हाथों सौंपकर मुझे रत्ती भर भी शान्ति न मिलती।'

वन्दना ने कहा 'आप तो निर्विकार हैं बासु की भलाई-बुराई के लिए आपका सिर क्यों इतना दर्द कर रहा है ? जो हो, होने दो।'

यह सुनकर द्विजदास के मुख पर गहरे दुःख की रेखा दिखाई पड़ी, पर वह चुप रहा।

वन्दना ने कहा—'भैया के लिए गहरे विश्वास और श्रद्धा की बात एक दिन आप के मुख से सुनी था। वह भी क्या आँसू की तरह पल भर में ही काफूर हो गये ! या जो आदमी अपनी भूल में सर्वस्वान्त होता है, क्या उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है, यही कहना चाहते हैं न ?'

द्विजदास अचरज और दुःख से अभिभूत नेत्रों से पल भर उसकी तरफ देखता रहा, फिर दोनो हाथो को मिलाकर माथा छूकर धीरे-धीरे बोला—'नहीं, यह मैंने नहीं कहा है। मैं कह रहा था कि प्यास बुझाने के लिए आदमी को समुद्र के सामने हाथ नहीं फैलाना चाहिए। लेकिन भैया के विषय में अब बहस नहीं। बाहर के लोग उसे समझेंगे नहीं।'

इस बात से वन्दना के दिल को अधिक चोट पहुँची, किन्तु प्रतिवाद करने के लिए कुछ न मिलने की वजह से चुप हो गई।

आओगी ?'

वन्दना ने कहा—'हाँ।'

'अशोक बाबू को ही साथ ले जाओगी ?'

'हाँ, उन्हें ही ले जायगे !'

द्विजदास बोला—'बम्बई मेल यहाँ से बहुत रात को जाता है, आप लोगों को स्टेशन पर पहुँचा आऊँगा। किन्तु दिन को न जा कुछ काम है।'

'एक तार पिता जी को भेज देंगे।'

'ठीक है।'

दो मिनट चुप रह, इधर-उधर करके द्विजदास ने कहा—'एक बात आप से प्रायः पूछने की सोचता हूँ लेकिन अनेक कारणों से दिन बीतते जा रहे हैं, पूछ नहीं पाता हूँ! कल चली जाओगी, अब अवसर न मिलेगा। अगर नाराज न हों तो पूछूँ ?'

'पूछिए।'

देर होने लगी।

वन्दना ने कहा—'नाराज न होऊँगी, आप निर्भय होकर कहिए।'

द्विजदास ने कहा—'कलकत्ते के घर से माँ एक दिन नाराज होकर भाभी को लेकर अचानक चली आईं, आपको याद है ?'

'हाँ याद है।'

'बिना कारण जाने आपको अचरज हुआ। चित्त अच्छा नहीं था, मैंने कमरे में आकर उस दिन कहा था कि आपको अच्छी लगती हूँ। स्मरण है।'

'है, किन्तु बहुत लज्जा के साथ।'

'उस बात की कोई कीमत नहीं है ?'

'नहीं।'

द्विजदास पल भर चुप रहकर बोला—'मैं भी यही सोचता हूँ कि उसकी कोई कीमत नहीं है।'

थोड़ी देर के बाद बोला—'भाभी ने कहा था कि आपकी मौसी साध है कि अशोक से आपकी शादी हो। क्या यह निश्चित हो गया है

वन्दना ने कहा—'यह हमारे परिवार की बात है। बाहर वालों सामने यह आलोचना नहीं हो सकती।'

द्विजदास बोला—'आलोचना तो नहीं, केवल एक खबर पूछ रहा था।'

कड़ुए स्वर में वन्दना ने कहा—'आपसे ऐसा कोई नजदीक सम्बन्ध नहीं है कि आप यह सवाल करें। द्विजू बाबू, आप शिक्षित पुरुष हैं, आपका यह कौतूहल लज्जाजनक है।' सुनकर द्विजदास सचमुच ही लज्जित हुआ, उसका मुख पीला पड़ गया। बोला—'मुझ से गलती हो गई है वन्दना! स्वभावतः मैं कौतूहली नहीं हूँ, पराये की बात सुनने का लोभ भी मुझे बहुत ही कम है। किन्तु कैसे, नहीं जानता, मुझे लगता था कि संसार में जिस बात को किसी से नहीं कह सकता, आपसे कह सकता हूँ। जिस मुसीबत में किसी को पुकारा नहीं जा सकता है, उसमें आपको पुकारा जा सकता है। आप...।'

उसकी बात के बीच ही में वन्दना ने हँसकर कहा—'किन्तु अभी कह रहे थे कि भइया के विषय में बातचीत बाहर के लोगों के सामने आप नहीं करना चाहते हैं। मैं तो गैर हूँ, बिलकुल परायी!'

द्विजदास ने कहा—'यदि यही तो फिर आपने ही क्यों उनके विषय में ताना दिया? जानती नहीं मुझे क्या हो रहा है?' दीपक के प्रकाश में स्पष्ट ही दीख पड़ा कि उसके नेत्रों के कोने डबडबा आये हैं।

अचानक इसी वक्त मैत्रेयी ने कमरे में प्रवेश किया। बोली—'द्विजू बाबू, हममें से तो कोई जान भी नहीं सका कि आप कब घर आये।'

द्विजदास ने उसकी तरफ मुँह फेर कर कहा—'जानने की क्या कोई विशेष आवश्यकता पड़ गई थी?'

मैत्रेयी ने कहा—'ठीक बात कह रहे हैं। कल आपने खाया नहीं, आज भी नहीं, यह और कोई न जाने लेकिन मैं तो जानती हूँ। माँ के कमरे में चलिए।'

'लेकिन माँ का कमरा तो बन्द है।'

मैत्रेयी ने कहा—'बन्द ही था लेकिन मैंने खुलवा कर ही छोड़ा। सिर धुनकर किवाड़ खुलवाये हैं, उन्हें स्नान कराया है आह्निक करवाया है। जबरन दो-चार फल मुख में डालकर तब छोड़ा है। कह रही थीं—'द्विजू न खायगा तो न खायेंगी। बोली—'यह नहीं हो सकता माँ, आपके इस आदेश को मैं मान नहीं सकूँगी। किन्तु तभी से हम सभी आपकी

बाट देख रहे हैं। चलिए, आपका भोजन माँ के कमरे में धर दिया है।'

द्विजदास चुप हो गया। इसके पहले उसने इतनी बातें नहीं सुनी थीं! कहा—'चलिए!'

मैत्रेयी ने वन्दना के उद्देश्य से कहा—'आप भी चलिए। आपको माँ बुला रही हैं!' यह कहकर वह द्विजदास को एक तरह से पकड़ कर गई। वन्दना सबसे पीछे गई।

दयामयी अपने कमरे में बिस्तर पर पड़ी हुई थीं। धीमी रोशनी में उनके शोकाच्छन्न मुख की तरफ देख कर दुःख होता था। सूजे हुए दोनों नेत्र लाल हैं, सद्य स्नात आर्द्रकेश इधर-उधर बिखरे हुए हैं। कल्याणी सिरहाने बैठी सिर दबा रही थी, दूसरी तरफ एक कुर्सी पर शशधर था, दूर एक दूसरी कुर्सी पर अक्षय बाबू बैठे हुए थे। द्विजदास के कमरे में प्रवेश करते दयामयी ने मुँह फेर लिया और दूसरे ही पल एक अस्फुट अवरुद्ध क्रन्दन से उनकी सारी देह सिहर उठी। वन्दना चुपचाप धीरे-धीरे जाकर उनके पैरों के पास बैठी, इतनी बड़ी वेदना के दृश्य की कदाचित् वह कभी कल्पना भी नहीं कर सकती। बहुत देर तक सभी चुप रहे, इस चुप्पी को भङ्ग करके पहले शशधर बोला—'सुना है कल से कुछ खाया नहीं है, जो कुछ हो कुछ मुँह में तो डाल लो।'

द्विजदास ने कहा—'हाँ।'

फर्श पर आसन तैयार करके मैत्रेयी सावधानी से भोजन लगा रही थी, उसी तरफ देखकर शशधर फिर बोला—'तुम्हें लौटने में बहुत देर हो गई! वे तो तभी अढ़ाई बजे की गाड़ी से चले गये।'

'अच्छा।'

शशधर ने बनावटी हँसी हँस कर कहा—'लेकिन सुना है कि कलकत्ते का घर तो तुम्हारा है।'

द्विजदास ने कहा—'मेरे घर में क्या भैया का आना मना है?'

शशधर ने कहा—'है तो नहीं। लेकिन वह यही भाव दिखा गये हैं! इस घर को छोड़ कर जाने की भी तो उन्हें आवश्यकता नहीं थी, समझौता कर लेने से तो झंझट मिट जाता।'

द्विजदास ने कहा—'समझौते का द्वार खुला हुआ था तो आपने क्यों

नहीं करा दिया ?'

'मैं समझौता करूँ ?' शशधर बहुत अचरज प्रकट करके बोला—'यह कैसा प्रस्ताव है ? मेरा उन्होंने अपमान किया और मैं समझौता करूँ ? दलील बुरी नहीं है !' यह कहकर वह ठठाकर हँसने लगा। हँसी थमने पर द्विजदास ने कहा—'दलील बुरी नहीं दी है शशधर बाबू। स्त्रियाँ बातों में कहा करती हैं कि पहाड़ की आड़ में रहना। भैया वही पहाड़ थे और आप उन्हीं की आड़ में थे। अब आमने-सामने खड़े हुए हैं—आप और हम। मान-अपमान की बात समाप्त तो नहीं हो गई, अभी तो केवल श्री गणेश ही हुआ है !'

'इसका मतलब क्या ?'

'इसका मतलब यह है कि मैं आपका बचपन का मित्र विप्रदास नहीं हूँ, मैं द्विजदास हूँ !'

शशधर की हँसी धीरे-धीरे लुप्त हुई, बड़े गम्भीर स्वर में प्रश्न किया—'तुम्हारे कहने का मतलब क्या है तनिक स्पष्ट कहो न ?'

भैया का मित्र होने के कारण शशधर 'तुम' कहने पर भी द्विजदास उसे 'आप' कहकर ही सम्बोधन करता था। बोला—'आपकी इस बात को मानता हूँ कि मतलब आज स्पष्ट हो जाना ही बेहतर है। मेरे भैया उस तरह के आदमी हैं जो सचाई के लिए सर्वस्वान्त हो जाते हैं, आश्रितों के लिए देह का मांस भी दे देते हैं, उनमें आदर्श नामक कोई विचित्र वस्तु है जिसके लिए ऐसी कोई बात नहीं है जो करने के लिए तैयार न हों, वे एक तरह के पागल हैं, इसीलिए यह दुर्दशा हुई। किन्तु मैं एकदम साधारण आदमी हूँ, आप से कोई विशेष अन्तर नहीं है। एकदम आप ही की भाँति मुझ में भी ईर्ष्या है, घृणा है, बदला लेने की कुटिल बुद्धि है। इसीलिए भैया को ठगा है तो आपको भी ठगूँगा, उनके नाम की जालसाज़ी होगी तो प्रसन्नता से आपको कारागार की हवा खिला दूँगा, कम से कम कोशिश में कोई कमी न होगी', जब तक हम दोनों आदमी एक दिन रास्ते के दर-दर के भिखारी नहीं बन जाते हैं। बूढ़ों से सुना है कि इसका नतीजा ऐसा ही होता है। ऐसा ही हो।'

शशधर कड़क कर बोल उठा—'सुन रही न माँ द्विजू की बातें हो ?

उसके मुँह में जो कुछ भी आता है बोलने के लिए उसे रोकिए।'

द्विजदास ने कहा—'माँ से फरियाद करने से कोई लाभ नहीं शशधर बाबू। वह जानती हैं कि मैं विपिन नहीं हूँ, मातृवाक्य द्विजू के लिए वेद-वाक्य नहीं है। द्विजू ताल ठोककर स्पर्द्धा का अभिनय नहीं करता है, इस बात को माँ जानती है।'

किसी के मुँह में आवाज नहीं, सहसा दोनों का यह वाद विवाद मा सम्पूर्ण रूप से अभावित है। विस्मय और डर से सभी चुप हो गये हैं शशधर समझ गया कि यह मजाक नहीं कठोर सङ्कल्प है। उत्तर देने में उसके कण्ठ स्वर में पहले का सा जोर नहीं था, फिर भी दावे के साथ बोल उठा—'यह अन्तिम है। अब मैं यहाँ पानी तक न छुऊँगा।'

द्विजदास ने कहा—'इतनी देर तक कैसे थे यही अचरज की बात है शशधर बाबू।'

कल्याणी ने रोकर कहा—'छोटे भइया, आखिर में क्या तुम्हीं हमें मारना चाहते हो? सगे भाई हो, तुम्हीं हमारा सर्वनाश करोगे?'

द्विजदास ने कहा—'तू समझती है कि बार-बार आँसू बहाकर सर्वनाश के हाथ से छुटकारा पाया जा सकता है? कहीं न्याय नहीं होगा, तुम्हीं लोगों की बार-बार विजय होगी? सही है कि भइया नहीं हैं, फिर जगह रहने को न मिले तो मेरे पास आना, तब तेरा रोना सुनूँगा, इस समय नहीं।'

दयामयी ने चुपचाप बहुत सहन किया था, अब नहीं रहा गया, चिल्ला कर कहा—'तू जा यहाँ से द्विजू। इसी तरह गाली-गलौज करने के लिए क्या विपिन तुझे सिखा गया है?'

'कौन सिखा गया कह रही हो? विपिन?'

'हाँ, वही तो। अवश्य वही।'

क्षण भर में द्विजदास के ओठ सिकुड़ गये, बोला—'मैं जा रहा हूँ किन्तु माँ, अपने को बहुत छोटा किया है, अब अधिक छोटा मत करो।' यह कहकर वह कमरे से बाहर चल दिया।

द्विजदास अपने कमरे में आकर चुप बैठा था, दो एक घण्टे के बाद मैत्रेयी कमरे में आई। हाथ में थाली थी, बोली—फिर से भोजन बना कर लाई हूँ, यहीं आसन बिछा दूँ, भोजन करिए।'

'यह किसने कह दिया आपसे ?'

'किसी ने नहीं। आपने कल से खाया नहीं है यह क्या मैं जानती नहीं।'

'इतने आदमियों में आपको जानने की आवश्यकता ?'

मैत्रेयी सिर नीचा किये मौन हो खड़ी रही ! उत्तर न पाकर द्विजदास बोला—अच्छा, वहाँ रख जाइए। अभी भूख नहीं है, होगी तो बाद में खा लूँगा।

मैत्रेयी ने कमरे के एक तरफ आसन बिछाया, भोजन को रखकर बड़ी सावधानी से सब कुछ ढाँककर चल दी। आग्रह नहीं किया, बोली नहीं कि ठण्डा हो जाने पर खाने में असुविधा होगी।

रात्रि के शायद तब बारह बज गये हैं, द्विजदास कुर्सी पर से उठा। थोड़ा सा खाकर सो रहेगा सोचकर हाथ-मुँह धोने के लिए बाहर आकर देखा द्वार के बाहर कोई बैठा है। बरामदे के धुंधले प्रकाश में नहीं पहचान कर पूछा—कौन है ?

मैं हूँ मैत्रेयी।'

द्विजदास के अचरज का ठिकाना न रहा, बोला—इतनी रात को यहाँ कैसे आई ?

'भोजन करते समय यदि किसी चीज की आवश्यकता पड़े इसीलिए बैठी हूँ।'

'यह बड़ा अन्याय है आपका। पहली बात है कि आवश्यकता है, और यदि पड़ी भी तो क्या और कोई है नहीं ?'

मैत्रेयी ने धीरे से कहा—कई दिनों के बराबर परिश्रम से सभी थके हैं। कोई जगा नहीं है, सभी सो रहे हैं।

द्विजदास ने कहा—आपने स्वयं भी कम परिश्रम नहीं किया है, तो क्यों नहीं सोई ?

मैत्रेयी ने जवाब नहीं दिया, मौन हो बैठी रही।

द्विजदास का रूखा स्वर अब बहुत कुछ मन्द पड़ गया, बोला—इस तरह बैठा रहना बुरा दीखेगा। आप भीतर आकर बैठिए जब तक खाता हूँ देखिए। यह कहकर हाथ-मुँह धोने के लिए जल वाले कमरे में चला गया।

इसके पहले मैत्रेयी से द्विजदास ने बहुत कम बातचीत की है।

आवश्यकता नहीं थी, इच्छा भी नहीं थी। अब बातचीत कैसे शुरू करेगा, सोचते हुए लौटकर उसने देखा कि न तो भोजन है और न मैत्रेयी ही! इसी बीच में क्या हो गया अनुमान करने के पहले ही वह वापस आकर खड़ी हुई। बोली—'ढक्कन खोलकर देखा कि सब सूख गया है, इसीलिए फिर लाने चली गई। बैठिए न।

द्विजदास ने कहा—'देखता हूँ, भाप निकल रही है इतनी रात को ये कहाँ मिलीं ?'

मैत्रेयी ने कहा—'ठीक से रख आई थी। जब कहा कि भोजन में देर होगी, तभी जानती थी कि इन सब चीजों को नहीं रखा तो खा न सकेंगे।'

द्विजदास ने भोजन करने से पहले रसोई की निपुणता की प्रशंसा की और मालूम किया कि इसमें कई चीजें मैत्रेयी ने स्वयं अपने हाथ से बनाई हैं। बार-बार आग्रह करके उसने द्विजदास को ज्यादा खिलाया। इस विद्या में वह चतुर है, भोजन खिलाना वह जानती है।

हँसकर द्विजदास ने कहा—'ज्यादा खाने से बीमार पड़ जाऊँगा।'

'नहीं, पड़ेंगे नहीं। कल से उपवास किये हुए हैं, इसे ज्यादा खाना नहीं कहते हैं।'

'किन्तु केवल मैं ही तो बिना खाये नहीं हूँ, इस घर में शायद बहुत से हैं।'

मैत्रेयी ने कहा—'बहुतेरों की बात नहीं मालूम, लेकिन माँ को थोड़ा सा कैसे खिलाया है यह मैं ही जानती हूँ। मैं न होती तो न जाने द्वार बन्द किये कब तक वह उपवास करतीं, सोचने पर भय लगता है लेकिन मुझे 'आप' न कहें, सुनकर शर्म आती है। कितनी छोटी हूँ मैं।'

द्विजदास ने कहा—अच्छी बात है, अब 'आप' नहीं कहूँगा। किन्तु तुमने अन्नदा बहिन का पता लगाया था ?'

मैत्रेयी ने कहा—'उसे हुआ क्या ? क्या वह भी बिना खाये ही है ?'

अब तक मैत्रेयी की बातें उसे अच्छी लग रही थीं, खुशी की हवा का एक झोंका इस दुख के बीच भी मानो उसके मन को छू जाता था, किन्तु इस आखिरी बात से उसका मन पल भर में बिगड़ गया। बोला—'अनु बहिन के विषय में इस तरह से बातें नहीं करनी चाहिए। शायद सुना

...ना कि वह हमारी दासी है, किन्तु इस घर में उससे बढ़कर मेरा अपना कोई है नहीं। उसने हमें मनुष्य बनाया है।'

मैत्रेयी ने कहा—'यह सुना है। किन्तु कितने ही घरों में तो नौकर नौकरानियाँ बाल-बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा करती हैं। इसमें कौन सी नई बात है? अच्छा, आपका भोजन समाप्त हो जाय तो उसका पता लगाऊँगी?'

द्विजदास चुपचाप पल भर उसकी तरफ देखता रहा। अचानक मन में आया, ठीक ही तो है, ऐसा तो बहुतेरे परिवारों में हुआ ही करता है, जो अन्दर की बात नहीं जानता उसके लिए केवल बाहर की बात में आश्चर्य की इसमें कौन सी चीज है? कठोर विचार हलका हो गया, बोला—'अनु बहिन ने नहीं खाया होगा तो अब इतनी रात को नहीं खायेंगी। उनके लिए आज व्यस्त होने की आवश्यकता नहीं।

फिर कई मिनट चुपचाप बीत जाने पर द्विजदास ने पूछा—'मैत्रेयी, पराये की ऐसी सेवा करना तुमने सीखा किससे? क्या अपनी माँ से?'

मैत्रेयी ने कहा—'नहीं, अपनी बहिन से। उनकी तरह पति की सेवा करते मैंने किसी को देखा नहीं।'

हँसकर द्विजदास बोला—'पति क्या पराया है? मैंने पराये की सेवा की बात पूछी थी।'

'अच्छा, पराया?' कहकर मैत्रेयी ने हँसकर सिर नीचा कर लिया।

द्विजदास बोला—'अच्छा, तो अपनी बहिन की बात बतलाओ।'

मैत्रेयी बोली—'बहिन तो जीवित नहीं हैं। तीन वर्ष हुए एक पुत्र और दो कन्याएँ छोड़कर मर गईं। पर चौधरी जी ने एक वर्ष भी सब्र नहीं किया, पुनः शादी कर ली।'

'बतलाइए तो कितना बड़ा अन्याय है?'

द्विजदास बोला—'पुरुष तो यही करते हैं। न्याय अन्याय वे नहीं मानते।'

'क्या आप भी यही करेंगे?'

'पहले एक तो करूँ फिर दूसरे की बात पर विचार करूँगा।'

मैत्रेयी ने कहा—'ऐसा कहने से तो काम न चलेगा। तब आपकी

आभी थीं, लेकिन अब कोई है नहीं। कौन देखेगा माँ को?'

द्विजदास ने कहा—'कौन देखेगा, नहीं जानता मैत्रेयी, शायद तेरे दामाद देखेंगे, या और कोई आकर उनका भार सँभालेगा, दुनिया में कितनी असम्भव बातें सम्भव हैं, कोई बतला नहीं सकता। हमारी बात जाने दो, अपनी बात कहो।'

'किन्तु अपनी बात तो कुछ भी नहीं।'

'कुछ भी नहीं? एकदम कुछ भी नहीं?'

पहिले तो मैत्रेयी कुछ सकपका गई, फिर कुछ हँसकर बोली—अच्छा मैं जान गई। क्या आपने चौधरी की बात किसी से सुनी है! छिः! छिः!

'कैसा बेशर्म आदमी है, बहिन के मरने के बाद कहला भेजा, मुझसे शादी करेगा!'

'उसके बाद?'

मैत्रेयी ने कहा—'चौधरी के पास काफी धन है, माँ बाप सहमत हो गये, बोले—'और कुछ न सही लीला के बच्चे आदमी तो बन जायँगे।' मानो दुनिया में बहिन के बच्चों का लालन-पालन के अलावा मुझे और कोई काम है नहीं—यदि यह बात तुम लोग मुख पर लाये तो मैं आत्म-हत्या कर लूँगी!'

'इतनी आपत्ति तुम्हें किस लिए थी?'

'क्या आपत्ति न होगी? ससार में इससे बढ़कर दुःख और कुछ है क्या?'

द्विजदास ने कहा—'तुम्हारी यह बात सत्य नहीं है। संसार में सब जगह दुःख नहीं होता है मैत्रेयी। मेरी माँ ने ही भैया को आदमी बनाया था।'

मैत्रेयी ने कहा—लेकिन आखिर में उसका नतीजा क्या निकला! आज जैसा दुःखद काण्ड इस घर में कभी हुआ था क्या?'

द्विजदास चुप रह गया। इसकी बात असत्य नहीं है, किन्तु सत्य भी हर्गिज नहीं है। दो-तीन मिनट अभिभूत की तरह बैठा रहा, अचानक मानो उसे चेत हुआ, बोला—'प्रतिवाद मैं नहीं करूँगा। इस घराने में महादुःख सचमुच ही आया है, फिर भी जानता हूँ कि तुम्हारी ये बातें साधारण लड़कियों के अति तुच्छ सांसारिक हिसाब किताब से बड़ी हैं नहीं।' इतना

कहकर ही वह उठ खड़ा हुआ, उसने भोजन कर लिया था।

अगले दिन दोपहर तक वह घर पर नहीं था, किस काम से कहाँ गया था, वही जानता है। शाम के अँधेरे में चुपचाप घर लौटकर सीधे वन्दना के कमरे के सामने जाकर पुकारा—'अन्दर आ सकता हूँ ?'

'कौन, द्विजू बाबू ? आइए न।'

द्विजदास ने अन्दर घुसकर देखा कि वन्दना ने बक्स में चीजें सँभालकर जाने का प्रबन्ध लगभग पूरा कर लिया है। बोला—'तो सचमुच ही जा रही हो ? क्या एक दिन भी नहीं रोका जा सकता ?'

उसके मुख की तरफ देखकर वन्दना को बोलने की इच्छा नहीं हुई, पर बोलना ही पड़ा—'जाना तो पड़ेगा ही, एक दिन और रहने से आपका क्या लाभ है ? बोलिए न ?'

द्विजदास ने कहा—'लाभ की बात तो नहीं सोची है, सोचता हूँ सभी गये, इतने बड़े घर में अब दोस्त कोई नहीं रहा !'

वन्दना ने कहा—'पुराने दोस्त चले जाते हैं, नये आते हैं, संसार ऐसा ही है द्विजू बाबू। उसी आशा में धीरज धरना पड़ता है, चञ्चल होने से काम चलता नहीं।'

द्विजदास उत्तर न देकर मौन रहा।

वन्दना ने कहा—'अधिक समय नहीं है, काम की दो-चार बातें कर लूँ। शायद सुना होगा कि शशधर कल्याणी को लेकर चले गये ?'

'नहीं, सुना नहीं है, पर अनुमान किया था।'

'जाने के पहले उन्हें एक बूँद जल भी नहीं पिलाया जा सका। दोनों ने आकर माँ को प्रणाम करके कहा—'हम जा रहे हैं।' माँ ने कहा—'जाओ !' फिर दूसरी तरफ मुँह फेर लिया। यह कहकर वन्दना मौन रही। जिस लिए वह जा रही है, जो बातें द्विजू ने पिछली रात को माँ से कही थीं उनकी चर्चा तक नहीं की।

कुछ देर बाद चुप रहकर फिर बोली—'माँ बिलकुल बेचैन हो गई हैं, देखकर माया आती है, लज्जा से मानो किसी के सामने मुँह नहीं दिखा पातीं ! मैत्रेयी ने उनकी जैसी सेवा की है, शायद वैसी अपनी बेटी भी नहीं कर सकती है। यदि माँ स्वस्थ होती हैं तो वह उसी की सेवा

की बदौलत। लड़की बहुत भली है, कुछ दिन उसे रोक रखने की कोशिश करें यही मेरा अनुरोध है।

'ऐसा ही होगा।'

'जाने के पहले एक अनुरोध और कर जाऊँगी द्विजू बाबू।'

'अवश्य।'

'आपको शादी करनी पड़ेगी।'

'क्यों?'

वन्दना ने कहा—वर्ना यह विशाल कुटुम्ब छिन्न-भिन्न हो जायगा। जानती हूँ आपकी काफी हानि हुई, लेकिन जो रह गया वह भी बहुत है। आप लोगों का कितना दान है, कितना सत्कार्य है, कितने आश्रित परिजन, कितने दीन-दुखी के आप लोग सहारे हैं और वह भी क्या आज ही? कितने लम्बे समय से यह धारा चली आ रही है आपके परिवार में, कभी बाधा प्राप्त नहीं है वह क्या आज बन्द हो जायगी? भैया की गलती से जो चला गया वह बेकार था, वह प्रयोजन के अलावा था, जाने दीजिए उसे। जितने रख गये उसे ही शान्त होकर काफी समझिए। वह अवशिष्ट ही आपका अक्षय अजस्र हो, प्रतिदिन के प्रयोजन में ईश्वर कमी न दे, आज विदा होने के पहले उनसे यही विनय करती हूँ।

द्विजदास के नेत्रों में जल आ गया।

वन्दना कहने लगी—'आपके पिता अखण्ड विश्वास लेकर भैया के हाथों में सर्वस्व सौंप गये थे, पर वह नहीं रहा। पिता के सामने दोषी बने रहे। लेकिन वह भूल अगर दीनता लाकर उनके पुण्य कार्य को बाधाग्रस्त करती है तो किसी दिन भी मुखोपाध्याय जी अपने मन को समझा न सकेंगे। इस अशान्ति से आपको उन्हें बचाना ही होगा।'

आँसू रोककर द्विजदास बोला—भइया की बात इस प्रकार से किसी ने नहीं सोची है वन्दना, मैंने भी नहीं। बात कैसी अचरज की है!'

ठीक ही हुआ कि उसने बत्ती की छाया में वन्दना का मुख नहीं देखा। बोला—भैया के लिए सभी दुख झेल सकता हूँ, किन्तु उनके कामों का बोझ कैसे ढोऊँ, साहस जो नहीं होता है। उन्हीं को देखने आज चला था। उनका स्कूल, पाठशाला, टोल (संस्कृत पाठशाला) मुसलमान लड़कों

के लिए मकतब और वह भी क्या एक दो हैं ? बहुतेरे । खेतों को पानी देने के लिए एक नहर खोदी जा रही है, बहुत रोज तक उसके लिए रुपये खरचने पड़ेंगे । कागजों में एक लम्बी फेहरिस्त मिली है । केवल दानों की । वे लोग माँगने आये तो क्या कहूँगा मालूम नहीं ?'

वन्दना ने कहा—'उन्हें कह दे, मिलेगा । देना ही पड़ेगा उन्हें । लेकिन पूछती हूँ, इतने रोज तक किसी से उन्होंने कुछ नहीं कहा था ?'

नहीं ।'

'इसका सबब ?'

द्विजदास ने कहा—'सुकार्य को गुप्त रखने की मंशा से । किन्तु किससे कहें ? दुनिया में उनका तो कोई मित्र नहीं था । विपत्ति जब आई तो अकेले ने सही, आनन्द जब आया उसे भी अकेले ही उपभोग किया । लेकिन नहीं जानता कहा होगा अपने किसी एक ही मित्र से ।' कहकर उसने ऊपर की तरफ देखकर कहा—'किन्तु यह खबर आत्मीय मालूम कैसे होगा ? सिर्फ जानते हैं वह और उनके अन्तर्यामी ।'

वन्दना ने कौतूहल से पूछा—'अच्छा द्विजू बाबू, आप क्या समझते हैं कि मुखोपाध्याय जी ने कभी किसी को प्रेम नहीं किया है ? किसी एक को भी नहीं ?'

द्विजदास ने कहा—'नहीं, वह उनके स्वभाव के विरुद्ध है । मानव संसार में इतना निःसङ्ग मनुष्य दूसरा नहीं है ?' इसके पश्चात् देर तक दोनों खामोश रहे ।

मानो वन्दना ने एक भार को फेंकते हुए कहा—'होने दीजिए द्विजू बाबू । उनके सभी कामों को आपको अपने कन्धे पर लेना पड़ेगा, एक को भी नहीं छोड़ सकते ।'

'किन्तु मैं तो भैया नहीं हूँ । अकेला कैसे ले सकूँगा वन्दना ?'

'अकेले तो नहीं, दो आदमी लेंगे । इसलिए तो कहती हूँ आपको शादी करनी होगी ।'

'लेकिन प्रेम किये बिना शादी करूँगा कैसे ?'

वन्दना ने आश्चर्य से उसके मुँह की तरफ देखकर कहा—'यह क्या कह रहे हैं द्विजू बाबू ! ऐसा तो अपने समाज में हम लोग ही कहा करते

है; किन्तु आपके कुटुम्ब में कब किसने प्रेम करके शादी की है कि आपके किये बिना नहीं चलेगा ? यह बहाना न करिए।'

द्विजदास ने कहा—'यह रिवाज हमारे घराने का नहीं है सही लेकिन यही उदाहरण क्या बराबर मानना पड़ेगा ? इसी से राजी हो जाऊं इसका मुझे विश्वास नहीं है।'

वन्दना ने कहा—'विश्वास के विरुद्ध तर्क नहीं चल सकता, सुख की गैरण्टी भी नहीं दे सकती, क्योंकि वह धन जिसके हाथों में है उसे नहीं जानती। उसकी विचार-पद्धति, तत्व-अन्वेषण बेकार है। किन्तु शादी के पहले नयन-मनोरञ्जन पूर्वराग के खेल बहुत देखे, और एक दिन वह प्रेम किस घने जङ्गल मे हवा हो गया, यह नाटक भी बहुत देखा है। मैं कहती हूँ उस जाल म पैर रखने की आवश्यकता नहीं है द्विजू बाबू, सोने का मायामृग जिस वन मे विचरण कर रहा है करने दीजिए, इस मकान में समादरपूर्वक लाने की जरूरत नहीं।'

मुस्कराकर द्विजू ने कहा—'इसका मतलब है सुधीर बाबू ने आपके दिल को बहुत दुखी कर दिया है।'

वन्दना ने भी हँसकर कहा—'हाँ। किन्तु फिर भी दिल का जो कुछ शेष था, उसे आपने छिन्न कर दिया और इसके बाद आये अशोक। अब फूटे भाग्य मे वह भी डटे रहे तो धैर्य बंधे।'

'कौन हैं वह अशोक ? आपको उनसे भय की कौन सी बात है ?'

'भय यह है कि उन्होने भी अचानक प्रेम करना आरम्भ किया है।'

'कोई प्रेम के आस-पास से होकर भी नहीं गुजरे यही आपकी प्रतिज्ञा है ?'

'हाँ, यही मेरी प्रतिज्ञा है, शादी अगर कभी करूँ भी तो बड़े सुख की आशा की विडम्बना मे न पड़ूँ। इसीलिए कल अशोक बाबू को होशियार कर दिया है कि मुझे प्रेम करेंगे तो मैं चली जाऊँगी।'

'सुनकर उन्होने क्या कहा ?'

'कहा तो कुछ नहीं, केवल ताकते रहे। देखकर दुःख हुआ !'

'अगर सचमुच ही दुःख हुआ तो आज भी उम्मीद है। लेकिन याद रखे कि यह सब केवल मौसी के घर की ओर सामयिक प्रतिक्रिया है।'

वन्दना ने कहा—'असम्भव नहीं है, हो सकती है ! किन्तु सीखा

बहुत, सोचती हूँ,सौभाग्य से कलकत्ते आई थी वर्ना बहुत ही बातें न जान पाती।'

कुछ देर तक चुप रहकर द्विजदास ने कहा—'अब अधिक समय नहीं है, अब अन्तिम उपदेश दे जाइए कि मुझे क्या करना होगा?'

परिहास की भङ्गिमा में सिर को कई बार हिलाकर वन्दना ने कहा—'उपदेश लेना है? क्या सचमुच ही चाहिए?'

द्विजदास ने कहा—'हाँ, सचमुच ही चाहिए। मैं भैया नहीं हूँ मुझे मित्र की आवश्यकता है, उपदेश की आवश्यकता है। मुझे शादी करने के लिए कह गईं, मैं वही करूँगा। लेकिन प्रेम न मिले, मित्रता नहीं मिलने से बोझ डाले जा रही हो उसे कैसे ढोऊँगा?'

द्विजू के मुख पर परिहास का आभास भी नहीं है, इस कण्ठ-स्वर ने वन्दना को बेचैन कर दिया, बोली—'भय की बात नहीं है द्विजू बाबू, मित्र मिलेगा सचमुच ही, आवश्यकता पड़ने पर भगवान् उसे आपके द्वार पर पहुँचा जायँगे, इसका विश्वास जानिए!'

उत्तर में द्विजू कुछ कहने जा रहा था, लेकिन थम गया। बाहर से मैत्रेयी का कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा—'द्विजू बाबू हैं कमरे में? माँ आपको बुला रही हैं।' द्विजू उठकर बोला—'गाड़ी बारह बजे है, साढ़े ग्यारह बजे निकलना होगा। ठीक वक्त पर आकर आवाज दूँगा। याद रखना।' यह कहकर वह व्यस्तता से कमरे से निकल गया।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

वन्दना के सकुशल बम्बई पहुँचने की सूचना के उत्तर में कुछ रोज के बाद द्विजदास ने लिखा था कि बहुत से कामों में जुटे रहने की वजह से ठीक समय पर पत्र नहीं लिख सका। लिखने की कोई विशेष बात नहीं है। मैत्रेयी के पिता कलकत्ता लौट गये हैं, किन्तु वह स्वयं अभी इस मकान में हैं। माँ की सेवा-टहल में कहीं कोई कमी नहीं रहने पाती, गृहस्थी का भार भी उसी पर पड़ा है, अच्छी तरह चला रही है। घर के सभी उससे प्रसन्न हैं। द्विजदास को भी अपनी तरफ से अभी तक शिकायत करने का अवसर नहीं मिला है। आखिर में वन्दना और उसके पिता के प्रति शुभ कामना प्रकट कर और यथाविधि नमस्कारादि लिख उसने चिट्ठी समाप्त की।

इसके बाद तीन महीने से भी ज्यादा वक्त बीत गया, लेकिन किसी

तरफ से चिट्ठियों का आना-जाना नहीं हुआ। विप्रदास, मझली बहन, बासु का समाचार जानने के लिए वन्दना का मन व्याकुल हो उठता है, लेकिन कोई तरकीब नहीं सूझती। अपनी तरफ से उन्होंने आज तक खबर नहीं भेजी है, कहाँ हैं कैसे हैं, सब कुछ अज्ञात है, इसी की सिफारिश के लिए द्विजदास को आग्रह करके पत्र लिखने में इतनी बड़ी लज्जा है कि आन्तरिक इच्छा होते हुए भी यह काम उसे असाध्य मालूम हुआ। अब बलरामपुर की स्मृति की तीक्ष्णता और वेदना की तीव्रता दोनों बहुत हल्की हो गई हैं। वहाँ से चले आने के बाद वह वहाँ से विरक्त होने का उपक्रम कर रही थी, किन्तु दिनों दिन व्यथातुर विक्षुब्ध चित्त धीरे-धीरे जितना ही शान्त हो गया, उतनी ही उसने उपलब्धि की है कि उनका रिश्ता कोई सच्चा रिश्ता नहीं है। इकट्ठे रहने की वजह से वे सुख-दुःखमय अनिर्वचनीय दिन विचित्र घनिष्ठता से मन के अन्दर जितना भी निविड़ता के मोह का सञ्चार करते हैं, पर उसकी आयु क्षणस्थायी है। इस बात को उसे समझना शेष नहीं है कि उस आचारनिष्ठ प्राचीन-पंथी मुखोपाध्याय घराने में उसकी जरूरत नहीं है, क्योंकि दोनों पक्ष की शिक्षा, संस्कार और सामाजिक आचार-विचार का अन्तर जितना सत्य है, उतना ही मुश्किल भी है।

इसी बीच पति के कर्मस्थल पञ्जाब से मौसी आकर उपस्थित हुई है। स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। पञ्जाब से बम्बई का जलवायु अच्छा है, यह राय किस डॉक्टर ने तुम्हें दी, वही जानते हैं। लेकिन आई हैं स्वास्थ्य के बहाने से। बम्बई आने के पहले वन्दना भेंट न कर आई, यह अभियोग उनके दिल में ही था किन्तु बहिन की बेटी के मिजाज का जितना परिचय उन्हें मिला है, उससे बहनोई रे-साहब के दरबार में खुलेआम मुकदमा रुजु करने का साहस नहीं था, तब भी खाने की मेज पर बैठकर बात को उन्होंने सङ्केत से छेड़ ही दिया। बोली—'मिस्टर रे, इस बात को आपने लक्ष्य किया है या नहीं, लेकिन मैंने बहुत देखा कि माँ-बाप की एकलौती लड़की या लड़का एैसे हठी हो जाते हैं कि उनसे सहज ही में पार नहीं पाया जा सकता।'

उसी दम साहब ने स्वीकार किया, और देखा कि उदाहरण उनके पास

ही मौजूद है। सानन्द उसकी चर्चा करके बोले—'यह जैसे मेरी बिट्टो है। एक बार अगर 'न' कह दिया तो 'हाँ' कहला दे किसकी हिम्मत? उसके बचपन से ही देखता आ रहा हूँ...।'

वन्दना ने कहा—'शायद इसीलिए अपनी अवाध्य बिटिया से स्नेह नहीं करते हो पिता जी?'

साहब ने जोरों से प्रतिवाद किया—'तुम मेरी अवाध्य बेटी हो? हर्गिज नहीं, कोई कह नहीं सकता।'

वन्दना हँस पड़ी—'अभी-अभी तो तुमने स्वयं कहा है पिताजी।'

'मैंने? कभी नहीं।'

सुनकर मौसी से भी बिना हँसे न रहा गया।

वन्दना ने पूछा—'अच्छा पिता जी, तुम्हारी तरह क्या मेरी माँ भी मुझे देख नहीं सकती थी'?

साहब ने कहा—'तुम्हारी माँ? इसी बात पर तो उनसे मेरी कितनी दफा कहा-सुनी हो गई। बचपन मे एक बार तुमने मेरी घड़ी तोड़ दी थी, तुम्हारी माँ ने क्रोध करके कान मरोड़ दिया, तुम रोती हुई मेरे पास दौड़ आई, मैंने हृदय से लगाया। उस दिन तुम्हारी माँ से मैं नहीं बोला।' बोलते हुए पूर्व स्मृति के भावावेग से उठकर बेटी के सिर को हृदय से लगाकर उसे धीरे-धीरे हाथ से सहलाने लगे।

वन्दना ने कहा—बचपन की तरह अब क्यों नहीं प्यार करते पिताजी?

साहब ने मौसी से कहा—'मिसेज घोषाल, बिट्टो की बात सुनी?'

वन्दना ने कहा—'अक्सर कहा करते हो शादी करके झंझट का अंत कर देना चाहते हो? मैं क्या तुम्हारी आँखों की किरकिरी हूँ?'

'लड़की की बात सुन रही है मिसेज घोषाल?'

मौसी बोली—'सच है वन्दना। लड़की जब सयानी हो जाती है तो माँ बाप को कैसी घोर दुश्चिन्ता होती है, अपनी लड़की होने पर किसी दिन जानोगी।'

'मैं जानना नहीं चाहती मौसी जी।'

किन्तु पिता का फर्ज भी तो है बिटिया! माँ-बाप तो सदा रहेंगे

नहीं; सन्तान के भविष्य की चिन्ता न करना उनके लिए अपराध है। तुम्हारे पिता जी के दिल को शान्ति क्यों नहीं मिलती, उसे केवल जो खुद माँ बाप हैं वही समझते हैं। तुम्हारी बहिन प्रकृति की जब तक मैंने शादी नहीं कर दी, तब तक न खा सकी, और न सो सकी। कितनी रातें जागकर बिताईं यह तुम नहीं जान सकोगी, लेकिन तुम्हारे पिता जानेंगे। तुम्हारी माँ जीवित होतीं तो आज उनकी भी मेरी जैसी हालत होती।'

धीरे-धीरे साहब ने सिर हिलाकर कहा—'बिलकुल सच कह रही हैं मिसेज घोषाल।'

मौसी उन्हीं के उद्देश्य से कहने लगीं—'आज उसकी माँ जीवित होती तो बन्दना के लिए आपको वह परेशान कर डालतीं। मैंने स्वयं भी उन्हें क्या कम किया है। अब याद आने पर भी शर्म लगती है।'

साहब ने समर्थन करते हुए कहा—'दोष आपका नहीं है। अक्सर ऐसा हुआ ही करता है।'

मौसी कहने लगीं—'यही तो समझती हूँ। सिर्फ फिक्र इस बात की होती है कि आयु बढ़ रही है, आदमी के जीने-मरने का कोई भरोसा नहीं, जिन्दा रहते अगर लड़की के लिए कुछ न कर जाऊँ तो उसे न जाने क्या हो। भय से वे तो एक बार सूख गये थे।'

बन्दना से अब सहन नहीं हुआ, देखा उसके पिता का मुख भी सूख गया है, खाना बन्द हो गया था, बोली—'तुमने बेकार ही मौसा जी को तरह-तरह से भय दिखाया है मौसी जी, और अब पिता जी को दिखा रही हैं। ऐसा हुआ क्या है बतलाओ न? पिता जी अभी बहुत दिनों तक जीवित रहेंगे। अपनी बिटिया के लिए जो कुछ अच्छा समझते हैं उसे कर जाने के लिए बहुत वक्त मिलेगा। तुम बेकार ही पिता जी की फिक्र न बढ़ाओ।'

मौसी पीछे हटने वाली जीव नहीं थी, खासकर रे साहब ने उन्हीं का समर्थन करते हुए कहा—'तुम्हारी मौसी ठीक ही कह रही हैं बन्दना। सचमुच मेरी तबीयत अच्छी नहीं है, सचमुच ही इस देह पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। वह आत्मीय हैं, समय रहते वह सावधान न करेंगी तो कौन करेगा बतलाओ न?' कहकर उन्होंने दोनों की तरफ

देखा। मौसी ने कनखियों से देखा कि वन्दना का मुख उदास हो गया है, अप्रतिभ कण्ठ स्वर में व्यस्तता से बोल उठीं—ऐसा कहना बहुत अनुचित है मिस्टर रे। आपकी सौ वर्ष की उम्र हो, हम सभी प्रार्थना करते हैं, मैंने केवल कहना चाहा था।'

बात काटकर साहब ने कहा—'नहीं, आपने ठीक ही कहा है। सचमुच ही मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। समय रहते सतर्क न होना, कर्त्तव्य की अवहेलना करना मेरे लिए सचमुच अनुचित है।'

वन्दना ने क्रोध दबाकर कहा—आज पिता जी नहीं खायेंगे मौसी जी।

मौसी ने कहा—'इन बातों को जाने दीजिए मिस्टर रे। यदि आप न खायेंगे तो मुझे बहुत दुख होगा।'

साहब को भोजन की इच्छा नहीं रही, तब भी जबरदस्ती उन्होंने एक बोटी मांस काटकर मुँह मे डाला। इसके बाद खाना चलता रहा।

साहब ने पूछा—'दामाद की प्रैक्टिस कैसी चल रही है?'

मौसी बोली—'अभी तो शुरू ही की है। सुनती हूँ बुरी नहीं है!'

फिर कुछ देर चुपचाप बीत जाने पर उन्होंने मुख का कौर निगलकर कहा—'प्रैक्टिस कैसे भी क्यों न हो मिस्टर रे, मैं इसी को बहुत बड़ी चीज नहीं मानती हूँ। मैं कहती हूँ कि उससे भी बहुत बड़ी चीज है मनुष्य का चरित्र। वह निर्मल नहीं है तो कोई भी लड़की किसी दिन सचमुच ही सुखी नहीं हो सकती।'

'क्या इसमें भी सन्देह है?'

मौसी कहने लगीं—मैं परेशान हूँ, मेरे पीहर की शिक्षा संस्कार, वहाँ के दृष्टान्त, मेरे दिल मे जम गये हैं। उसमें कहीं एक तिल भी कम मुझसे देखा नहीं जाता है। मेरे अशोक को देखकर उसी नैतिक वातावरण की बात स्मरण आ जाती है जिसमें मैं पली थी। मेरे पिता मेरे बड़े भइया यह अशोक भी बिलकुल उन्हीं की तरह है, वैसा ही सरल, वैसा ही उदार, वैसा ही चरित्रवान।'

रे साहब, ने सोलहो आने मान लिया, बोले—'मुझे ऐसा ही जान पड़ता है मिसेज घोषाल। लड़का बहुत अच्छा है। छः सात दिन यहाँ रहा, उसके आचरण से मैं मुग्ध हो गया हूँ!' यह कहकर उन्होंने वन्दना को

गवाह मान कर पूछा—'क्यों बिट्टो, अशोक हमें कितना अच्छा लगा था ! जिस दिन चला गया उस दिन मेरा जी ठीक नहीं रहा।'

वन्दना ने स्वीकार करके कहा— हाँ पिता जी, वे बड़े भले आदमी हैं। जैसे विनयी वैसे ही सज्जन। मेरे किसी भी अनुरोध से कभी 'ना' नहीं की। अगर मुझे वह बम्बई न पहुँचा दिये होते तो बड़ी कठिनाई में पड़ जाती।'

मौसी ने कहा—'और एक बात शायद लक्ष्य की होगी वन्दना, उसमें गर्व नहीं है। बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि यह चीज हममें से बहुतेरों में दिखाई देती है।'

वन्दना ने हँसकर कहा—'तुम्हारे घर में तो कभी किसी में नहीं देखा मौसी जी।'

मौसा ने हँसकर कहा—'देखा क्यों नहीं है बिटिया। तुम बहुत बुद्धिमती हो, वे तुम्हें चकमा कैसे दे सकती हैं?'

सुनकर रे साहब हँसे, बात उन्हें बहुत भली लगी। बोले—'इतनी बुद्धि अक्सर देखने में नहीं आती है मिसेज घोषाल। बाप के मुँह से यह गर्व की सी बात लगती है, लेकिन बिना बोले रहा भी नहीं जाता।'

वन्दना ने कहा—'इस चर्चा को तुम बन्द करो मौसी जी, वर्ना पिता जी को सँभालना मुश्किल होगा। तुमने सिर्फ एक बेटी के दोषों को ही देखा है, किन्तु यह नहीं देखा कि एक बेटी के बाप की तरह अभिमानी संसार में कम हैं। मेरे पिता जी का खयाल है कि उनकी बेटी जैसी लड़की इस संसार में दूसरी है नहीं!'

मौसी ने कहा—'इस खयाल की मैं भी एक बड़ी हिस्सेदार हूँ वन्दना। सजा मिलनी है तो मुझे भी मिलनी चाहिए।'

पिता के मुख पर अनिर्वचनीय परितृप्ति की मृदु मुस्कान है। बोले—'मैं अभिमानी हूँ या नहीं, मालूम नहीं, किन्तु कन्या रत्न पाकर मैं सचमुच ही सौभाग्यवान हूँ। बिरले ही बापों की ऐसी बेटी होती है।'

वन्दना ने कहा—'पिता जी, आज तो तुमने एक भी सन्देश नहीं खाया, शायद अच्छा नहीं बना है?'

साहब ने प्लेट से आधा सन्देश तोड़कर मुख में डाला, बोले—'सब

बिट्टो ने अपने हाथों बनाई हैं। इस बार कलकत्ते से लौटने के बाद से उसने सभी खाना बदल दिया है। किससे सुना है, मालूम नहीं, अब घर में मांस प्रायः आने ही नहीं देती। कहती है—पिता जी उससे बीमार हो जाते हैं। देखिए मिसेज घोषाल, यह बङ्गाली खाना खाकर मालूम होता है कि बुढ़ापे में बड़े आराम में हूँ। अब कुछ अच्छी भूख लगती है।'

वन्दना ने कहा—'मौसी जी को आदत नहीं है, शायद कष्ट होता है।'

मौसी बोली—'न-न, कष्ट क्यों होगा, यह मुझे अच्छा ही लगता है। केवल जलवायु ही चेंज नही, खाना चेंज करना भी बहुत आवश्यक है। इसीलिए शायद मेरी तबीअत इतनी शीघ्र अच्छी हो गई।'

'अच्छी हो गई है न, मौसी जी?'

'अवश्य हुई है। जरा भी सन्देह नही।'

'तो कुछ दिनो तक और रहो, और भी अच्छी हो जाओ।'

अब अधिक दिनों तक नही रहा जा सकता है वन्दना। अशोक ने लिखा है कि इसी महीने के अन्त में वह पञ्जाब मे चेंज के लिए आवेगा। इसके पहले मुझे लौट जाना ही चाहिए।'

भोजन-पर्व समाप्त हो चुका था, साहब उठने की सोच रहे थे, मौसी मन ही मन चञ्चल हो उठी। प्रस्ताव पेश करने के पक्ष में जो अनुकूल वातावरण तैयार कर लिया था उसे शर्म में खो देने से वापस लाना मुश्किल होगा। सङ्कोच का अतिक्रमण करके बोली—'मिस्टर रे, एक बात थी यदि समय···।'

साहब ने उसी वक्त बैठकर कहा—'न-न, वक्त है क्यों नहीं। कहिए बात क्या है?'

मौसी ने कहा—मैंने सुना है कि वन्दना को उज्र नहीं है। अशोक पैसे वाला नहीं है यह सच है, किन्तु सुशिक्षा और चरित्रबल से सङ्घर्ष करके वह एक दिन ऊपर अवश्य उठेगा यह मेरा पक्का विश्वास है। यदि आप उसे अपनी बेटी के अयोग्य न समझें···।'

अचरज करके साहब ने कहा—'किन्तु यह हो कैसे सकता है मिसेज घोषाल? अशोक आपका भतीजा है। सम्बन्ध में वह भी तो वन्दना का ममेरा भाई है।'

मौसी ने कहा—'केवल नाम में, वर्ना दूर का रिश्ता है। मेरी नानी और वन्दना की माँ की नानी दोनों बहिनें थीं, उसी नाते मैं वन्दना की मौसी हूँ। यह विवाह टल नहीं सकता मिस्टर रे।'

कुछ देर तक साहब चुप रहे, शायद मन ही मन कुछ हिसाब लगाया; फिर बोले—'अशोक जितना मैंने स्वयं देखा है और जितना वन्दना के मुँह से सुना है, उससे अयोग्य नहीं समझता। बिट्टो की शादी एक दिन मुझे करनी ही पड़ेगी, किन्तु उसकी राय भी जानना आवश्यक है।'

मौसी मृदु कण्ठ स्वर में उत्साहित करते हुए बोलीं—शर्माओ मत बिटिया, अपने पिता जी को बतलाओ तुम्हारी क्या मंशा है?'

वन्दना का चेहरा पल भर में लाल हो गया, किन्तु कहने लगी—'अपनी इच्छा को मैंने बहा दिया है, मौसी जी। उसे ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं।'

साहब ने डरते हुए कहा—'इसका मतलब?'

वन्दना ने कहा—'मतलब आप लोगों को ठीक-ठीक समझाकर मैं बतला नहीं सकती पिता जी, किन्तु इसीलिए यह न समझ लेना कि मैं विघ्न डाल रही हूँ।' तनिक थम कर बोली—'मेरी सती बहिन की शादी हुई थी जब नौ वर्ष की थी। माता पिता ने जिसके हाथों में पकड़ा दिया, मझली बहिन ने उसी को स्वीकार कर लिया, अपने मन से नहीं चुना। फिर भी भाग्य से जो उन्हें मिला, वह पति संसार में दुर्लभ है। मैं उसी भाग्य पर विश्वास करूँगी पिता जी। विप्रदास बाबू साधु आदमी हैं, आने के पहले मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा था—'जहाँ मेरा कल्याण होगा ईश्वर मुझे वहीं भेजेंगे।' उनकी यह बात कभी असत्य नहीं होगी। तुम मुझे जो आज्ञा दोगे मैं उसी का पालन करूँगी। दिल में कोई संशय, कोई भय न रहने दूँगी।'

अचरज करके साहब चुपचाप उसकी तरफ देखते रहे।

मौसी ने कहा—'शादी के समय तुम्हारी मझली बहिन बालिका थी, इसीलिए उनकी राय का प्रश्न नहीं उठा था। लेकिन तुम तो वैसी नहीं हो, सयानी हुई हो, अपनी भले बुरे की जिम्मेदारी तुम्हारी अपनी है, अब तो नेत्र मूँद कर भाग्य के हाथों कठ-पुतली बनना तुम्हें शोभा नहीं देता।'

'शोभा देता है या नहीं यह नहीं जानती मौसी जी, लेकिन उनकी तरह उसी प्रकार ही भाग्य को मैं प्रसन्नता से मान लूगी।'

'लेकिन इस प्रकार उदासीन होकर बातें करने से तुम्हारे पिता जी का मन कैसे स्थिर होगा ?

'जिस प्रकार उनके बड़े भैया ने किया था, सती बहिन के सम्बन्ध में जैसे उनके सभी पुरखों ने अपने बेटे-बेटियों के ब्याह किये थे, मेरे बारे में भी पिता जी उसी तरह मन स्थिर रखें।'

'तुम स्वयं न कुछ देखोगी, और न कुछ सोचोगी ?'

'सोचना-विचारना, देखना-सुनना बहुत देखा मौसी जी। और नहीं। अब पिता जी के आशीर्वाद पर निर्भर करूँगी और उस भाग्य पर जिसका शेष आज भी देखा नहीं है।'

निराश होकर मौसी तनिक कड़ुए स्वर में बोली—'हम भी भाग्य को मानते हैं लेकिन तुम्हारा समाज, शिक्षा संस्कार सभी को डुबोकर मुखोपाध्यायों का इन्हीं कई दिनों का संसर्ग तुम्हें इतना छिपा देगा, यह नहीं सोचा था। तुम्हारी बात सुनने से जान नहीं पड़ता कि तुम हमारी वही बन्दना हो। जैसे हम लोगों में एक दम गैर हो गई हो !'

बन्दना ने कहा—'नहीं मौसी जी, मैं गैर नहीं हो गई हूँ। उन लोगों को अपना बनाने के लिए मुझे किसी को गैर नहीं बनना पड़ेगा। इस बात को पक्के तौर से जान गई हूँ। मेरे विषय में तुम लोग शङ्का न करना।'

मौसी ने पूछा—'तो एक तार भेज दूँ अशोक को आने के लिए ?'

'भेज दो न। मुझे तो कोई उज्र नहीं।' कहकर बन्दना कमरे से बाहर निकल गई।

तो आपके ही नाम से तार भेजें मिस्टर रे ?' कहकर मौसी ने सिर ऊपर उठाकर अचरज से देखा कि साहब के दोनों नेत्र अचानक डबडबा आये हैं। इसका सबब उनकी समझ में न आया और साहब ने धीरे-धीरे जब कहा कि तार आज रहने दीजिए मिसेज घोषाल, फिर भी कारण समझ न सकी, बोली—'क्यों रहने दूँ मिस्टर रे, बन्दना ने तो सम्मति दे दी।'

'नहीं, आज रहने दें।' कहकर वह चुप रहे। यह नीरवता और उन आँसुओं ने अन्दर ही अन्दर मौसी को अत्यन्त क्रुद्ध किया। एक चतुर पदस्थ व्यक्ति की ऐसी भावुकता वह सहन करने के लिए तैयार नहीं थी, उन्हें यह असह्य था। किन्तु जिद करने की हिम्मत भी उन्हें न हुई। दो मिनट चुप रह कर साहब ने कहा—'उसके पिता की बात मैंने सोची है,

लेकिन उसकी माँ नहीं है, उनकी बात भी मुझे ही सोचनी पड़ेगी मिसेज घोषाल, तनिक वक्त चाहिए।'

मन ही मन मौसी ने कहा—'एक और मूर्खता भरी भावुता। साहब ने अनुमान किया या नहीं, पता नहीं, किन्तु तनिक म्लान हँसी हँसकर बोले—'परेशानी यह है कि उसकी बात मानो हममें से कोई ठीक तरह समझ नहीं पाता है। उसने सम्मति नहीं या सही किसमें दी समझ ही में नहीं आई।'

'इसका मतलब?'

'मतलब मैं भी नहीं जानता। किन्तु अच्छी तरह देखता हूँ कि बङ्गाल से वह न जाने क्या साथ लाई है, वह दिन-रात उसे घेरे रहता है। उसका भोजन बदल गया है, बातें बदल गई हैं, उसका चलना-फिरना तक मानो पहले जैसा नहीं है। प्रातः स्नान करके मेरे कमरे में आकर पद-धूलि लेकर सिर पर लगाती है। कहता हूँ—बिट्टो, पहले तू यह सब कहाँ करती थी?' 'तब जानती नहीं थी पिता जी। अब तुम्हारे पैरों की धूलि लेकर दिन शुरू करती हूँ। अच्छी तरह जानती हूँ कि वह दिन भर सभी कामों में मेरी रक्षा करती है।' कहते-कहते उनके नेत्र फिर छलछला उठे।

मौसी मन ही मन झुँझलाकर बोलीं—'यह सब नई बातें उन मुखोपाध्यायों के घर से सीख आई है। जानते हैं वे कैसे कट्टर सनातनी हैं? लेकिन इसे धर्म नहीं कहते हैं, कुसस्कार कहते हैं। क्या पूजा-पाठ भी करती है?'

साहब ने कहा—'नहीं मालूम करती है या नहीं। शायद करती नहीं है। वह मुझे भी कुसंस्कार ही लगा है, मना भी करने गया, लेकिन बिट्टो पहले की तरह तो अब तर्क नहीं करती है, केवल चुपचाप देखती रहती है। मेरा भी मुँह बन्द हो जाता है—कुछ बोल नहीं पाता।'

मौसी ने कहा—'यह तो आपकी कमजोरी है। किन्तु पक्की तौर से जान लें इसे धर्म नहीं कहते हैं, कुसंस्कार, इसे सहारा देना अन्याय है। जुर्म है!'

साहब ने दुविधा में धीरे-धीरे कहा—'हो सकता है। रिलिजन सिर्फ मुँह से ही कहता हूँ, कभी स्वयं भी अध्ययन नहीं किया है, प्रकृति क्या है उसे भी नहीं जानता, सिर्फ कभी-कभी मौन होकर सोचता हूँ बिट्टो सोलहों

आने कैसे बदल गई ? वह हँसी नहीं है, आनन्द की चञ्चलता नहीं है, बरसात के खिलते हुए फूलों की तरह पखुड़ियाँ जैसे जल से भीगी हैं। कभी पुकारकर कहता हूँ—'बिट्टो, मुझसे छिपाना मत बेटी, तुझे कोई बीमारी तो नहीं हो गई है ?' वैसे ही सिर हिलाकर कहती है—'नहीं पिता जी, मैं अच्छी हूँ, मुझे कोई बीमारी नहीं हुई है।' हँसती हुई घर के कामों में लग जाती है, पर मेरा कलेजा टूक टूक हो जाना चाहता है मिसेज घोषाल। यही एक बेटी है, माँ नहीं है, अपने हाथों से पालकर इतना बड़ा किया है—सर्वस्व देकर भी अपनी वन्दना को यदि अपनी उस वन्दना को फिर उसी तरह वापस पाऊँ···।'

मौसी ने जोर देकर कहा—'पावेंगे। मैं वचन देती हूँ पावेंगे। यह केवल सामयिक अवसाद है, धर्म की धुन भी हो सकती है। किन्तु है बिलकुल असार। केवल उन लोगों के संसर्ग में आने का क्षणिक विकार, शादी कर दीजिए, सब दो दिन में ठीक हो जायगा। चिरकाल की शिक्षा ही मनुष्य में रह जाती है मिस्टर रे, दो दिन की धुन दो ही दिन में समाप्त हो जाती है।'

साहब आश्वस्त हुए, तब भी सन्देह दूर नहीं हुआ। बोले—'उसे कहाँ किससे प्रेरणा मिली—नहीं जानता, किन्तु सुना है कि यदि वह आती है तो सच्चे मनुष्य के हृदय से किसी प्रकार भी गुप्त नहीं होती है। मानव के चिरकाल के अभ्यास को एक क्षण में बदल देती है। नशा रक्त की धारा में मिल जाता है सारे जीवन में वह उतरता नहीं है। इसका मुझे भय है मिसेज घोषाल।'

जवाब में मौसी तनिक अवज्ञा की हँसी हँसकर बोली—'बेकार, सब बेकार! मैंने बहुत देखा है, दो दिनों के बाद कुछ भी नहीं रह जाता है। फिर ज्यों का त्यों हो जाता है। किन्तु आगे बढ़ने नहीं दिया जा सकता, आज ही अशोक को एक तार भेज दूँ, वह चला आये।'

'आज ही भेजूँगी ?'

'हाँ, आज ही और आप ही के पते से।'

साहब ने धीमे स्वर में सम्मति प्रकट करते हुए कहा—'जो अच्छा समझें करें। मुझे मालूम है अशोक अच्छा लड़का है। चरित्रवान, साधु,

नहीं तो उसे साथ लेकर आने के लिए वन्दना कभी सहमत न होती।'

इसी बात को मौसी ने और एक बार बढ़ा चढ़ाकर कहना चाहा, लेकिन विघ्न खड़ा हो गया। कमरे मे घुसकर वन्दना ने कहा—'पिता जी, आज हाजी साहब की लड़कियों ने मुझे चाय के लिए न्योता दिया है। दोपहर को जाऊँगी, सन्ध्या को ऑफिस से लौटते मुझे घर लिवा जाना!'

मौसी ने पूछा—'उनके घर तो तुम कुछ खाओगी नहीं वन्दना?'

'हाँ मौसी जी।'

'क्यो?'

'मेरा मन नहीं होता। तुम भूल तो नहीं जाओगे पिता जी?'

'नहीं बिट्टो, तुम्हें लाना भूल जाऊँगा ऐसा भी कभी हो सकता है?' कहकर साहब तनिक हँसे। बोले—'अशोक आ रहे हैं। आज उन्हे एक तार भेज दूँ।'

'अच्छी बात है पिता जी, भेज दो।'

मौसी ने कहा—'मै ही जबरदस्ती उसे बुला रही हूँ। आने पर देखना, कहीं तिरस्कार न हो।'

'कोई भय की बात नहीं मौसी जी, हम किसी का तिरस्कार नहीं करते हैं, अशोक बाबू स्वय ही जानते हैं।'

लड़की की बात सुनकर साहब खुश होकर बोले—'ऑफिस जाते हुए आज ही उसे एक तार दे दूँगा बिट्टो। आज शुक्रवार है, सोमवार को वह आ पहुँचेगा अगर कोई अड़चन न हुई।'

इसी समय द्वारपाल डाक लेकर आया। अखबार और अगिनित स्थानो की चिट्ठी-पत्री भी कम नही हैं। कुछ दिनों से डाक के प्रति वन्दना की उत्सुकता नहीं थी। वह जानती थी कि प्रतिदिन पत्र की आशा करना बेकार है। उसे याद करके पत्र लिखनेवाला कोई नहीं। वह चली जा रही थी, साहब ने बुलाकर कहा—'यह लो तुम्हारे नाम के दो पत्र। एक आपका भी है मिसेज घोषाल।'

अपने से दूसरे के पत्र के प्रति मौसी का कुतूहल ज्यादा है। मुँह बढ़ा देखकर बोलीं—'देखती हूँ एक तो अशोक का लिखा हुआ है। दूसरा किसका है?'

इस बेकार प्रश्न का उत्तर वन्दना ने नहीं दिया, दोनों पत्रों को लेकर वह अपने कमरे में चली गई।

साहब ने मुस्कराकर कहा—'देखता हूँ अशोक से चिट्ठी-पत्री होती है, तार भेज दूँ वह चला आये। सचमुच ही लड़का अच्छा है। उस पर विश्वास न करती तो वन्दना कभी पत्र न लिखती।'

मौसी भी गर्व से हँस पड़ी। यानी जानती हैं बहुत कुछ।

सन्ध्या को ऑफिस से लौटते हुए हाजी साहब के घर होकर रे साहब अकेले लौटे। वन्दना वहाँ गई नहीं। मौसी सामने ही थीं, बोलीं—'वन्दना पत्र लेकर तभी से जो अपने कमरे में घुसी है, तो फिर निकली नहीं!'

साहब ने व्याकुल होकर पूछा—'खाया नहीं?'

'नहीं। सवेरे वही दो-चार फल खाये थे, बस।'

साहब ने तेजी से बेटी के कमरे पर जाकर दस्तक दी और बोले—'बिट्टो!'

वन्दना ने द्वार खोल दिये। उसके मुख की तरफ देखकर पिता अवाक् हो गये—'हुआ क्या है रे?'

वन्दना ने कहा—'पिता जी, आज रात की ट्रेन से मैं बलरामपुर जाऊँगी।'

'बलरामपुर? क्यों?'

'द्विजू बाबू ने एक पत्र लिखा है—पढ़ोगे पिता जी?'

'बिट्टो, तुम पढ़ो, मैं सुनूं।' कहकर साहब एक कुर्सी खींचकर बैठ गये।

वन्दना उनसे लगकर खड़ी हो गई। पत्र को पढ़कर सुनाने लगी—

'सुचरितासु,

आपके जाने के दिन की याद आती है। आँगन में गाड़ी खड़ी हुई है, बोलीं—'बीच-बीच में खबर देने के लिए।' बोला—'मैं आलसी आदमी हूँ, चिट्ठी-पत्री लिखना सरलता से नहीं होता है, बढ़िया लिखना भी नहीं जानता। बल्कि यह भार और किसी को दे जायें।'

सुनकर मौन होकर देखती रहीं, फिर गाड़ी पर जा बैठीं, दूसरा अनुरोध नहीं किया। शायद सोचा अभाजन्य जिसे ऐसे समय भी एक अच्छी बात मुख पर नहीं लाने देता है, उससे कहने के लिए क्या है!

ऐसा ही हूँ मैं। फिर भी उम्मीद थी कि अगर लिखना ही पड़े तो

ऐसा कुछ लिख सकूँ जो ठीक हो, वह लिखना, जिसमें अनायास ही मेरे सभी जुर्मों के लिए माफी हो।'

दिल में सोचता था मनुष्य के लिए क्या केवल अभावित दुख ही है, अभावित सुख क्या संसार में नहीं है?

भैया के इष्ट-देवता केवल नेत्र मूँदे ही रहेंगे कभी नेत्र खोलकर देखेंगे नहीं? अनहोनी जो हुई वही सदैव रहेगी, उसे टालने की ताकत क्या किसी में नहीं है?

देखा गया नहीं है—वह ताकत कहीं भी नहीं है। तो भगवान् डिगे और न उनका भक्त डिगा। निर्वात निष्कम्प दीप-शिखा आज भी उसी तरह उर्द्धमुखी होकर जल रही है, ज्योतिः में का कण मात्र भी अपचय नहीं हुआ है।

यह चर्चा क्यों, यही बतलाऊँ। तीन दिन हुए भैया घर वापस आये हैं। सबेरे जब गाड़ी से उतरे उनके पीछे उतरा बासु। नंगे पैर, गले में उत्तरीय (शोक-वस्त्र)। गाड़ी लौट गई और कोई नहीं उतरा। सबेरे की धूप में छत पर खड़ा था, नेत्रों के सामने सारी दुनिया अँधेरी हो गई—ठीक अमावस की रात्रि की तरह। शायद दो मिनट बीते होंगे, फिर सब कुछ दिखाई पड़ा, फिर सब साफ हो गया! ऐसा भी होता है, इसके पहले मैं नहीं जानता था।

नीचे उतर आया, भैया बोले—तेरी भाभी कल सबेरे मर गई द्विजू!

हाथ में रुपये-पैसे विशेष नहीं हैं, साधारण ढङ्ग से उनके श्राद्ध का प्रबन्ध कर दे। कहाँ हैं माँ?

'अपनी बेटी के घर ढाका में।'

'ढाका में?' तनिक चुप रहकर बोले—क्या जानूँ, शायद आ न सकेंगी। लेकिन मातृदाय का एक पत्र बासु उन्हें लिख दे?'

बोला—देगा क्या नहीं?

बासु ने दौड़कर द्विजदास के गले से लिपट मुँह छिपा लिया। फिर रोने लगा जैसे उस क्रन्दन की भाषा नहीं है, उसी तरह पत्र में उसे प्रकट करने की भी भाषा नहीं है, शिकार का पशु मरने के पहले अपनी आखिरी फरियाद जिस भाषा मे छोड़ जाता है, बहुत कुछ उसी तरह द्विजदास उसे गोद में लेकर अपने कमरे मे चला गया। वह उसी तरह

कलेजे से मुँह लगाये रोने लगा। मन ही मन बोला—अरे बासु, हानि की दृष्टि से तूने ही बहुत कुछ खो दिया ऐसा नहीं, और एक आदमी की क्षति की मात्रा तुझसे भी बढ़ गई। फिर भी तुझे समझाने के लिए आदमी मिलेंगे किन्तु उसे नहीं मिलेगा। केवल एक आशा है वन्दना, अगर समझती हैं।'

इसी प्रकार कुछ वक्त बीता। आखिर में आँसू पोंछकर बोला—'भय की बात नहीं रे, माँ न हो, बाप न हो, लेकिन मैं तो हूँ। उनका कर्ज अदा नहीं कर सकूँगा, लेकिन अस्वीकार कभी नहीं करूँगा। आज सबसे ज्यादा दुख, सबसे ज्यादा क्षति के दिन यह रही तेरे चाचा की शपथ।

परन्तु इसे लेकर अब बात बढ़ाऊँगा नहीं, बात है ही क्या। बचपन में पिता जी कहा करते थे, गँवार, माँ कहती थीं पगला, कितनी बार भैया नाराज हुए—अनादर अवहेलना से कितने ही दिन यह घर विषाक्त हो गया, तब भाभी पास आतीं, बोलतीं—देवर, क्या चाहिए बतलाओ तो सही? नाराज होकर उत्तर दिया है, कुछ नहीं चाहिए भाभी, मैं यहाँ से चला जाऊँगा।

'कब?'

'आज ही।'

वह हँसकर बोलतीं—'जाने की आज्ञा नहीं है। जाओ तो देखूँ मेरी बातें टालकर।'

फिर जाना नहीं हुआ। किन्तु उसी जाने का दिन जब सचमुच ही आया तो वह चली गई! सोचता हूँ, सिर्फ मेरे ही लिए आज्ञा? उन्हें आज्ञा देने के लिए क्या संसार में कोई था नहीं।

भैया से पूछा—'मौत कैसे हुई?' बोले—कलकत्ते में ही तबीअत खराब हुई, शायद मन ही मन बहुत सोचा करती थी, पश्चिम में ले गया। किन्तु कहीं भी सुविधा नहीं हुई, आखिर मे हरिद्वार में ज्वर हो आया, काशी लेकर चला आया। वहीं उनकी मृत्यु हो गई।

'बस!'

पूछा—दवा-दारू की थी भैया?

बोले—यथासम्भव हुई थी।

किन्तु यह यथासम्भव कितनी है, यह भैया के अलावा और कोई

जानता नहीं।

इच्छा हुई कि पूछूँ—मुझे इतनी बड़ी सजा क्यों दी? मैंने क्या किया था? किन्तु उनके मुँह की तरफ देखकर यह प्रश्न मुँहसे न निकला।

पूछा—किसी को कुछ नहीं कह गई हैं भैया?

बोले—हाँ। मरने के दस-एक घण्टे पहले तक होश था, पूछा, सती, माँ को कुछ कहोगी?

बोली—'नहीं।'

'द्विजू को?'

'हाँ। उसे मेरा आशीर्वाद देना।' मैं सन्न रह गया और दौड़कर भाभी के स्तब्ध कमरे में चला आया। फोटो खिचवाने में वह बहुत लजाती थीं, केवल एक फोटो उनकी आलमारी की आड़ में छिपी हुई थी। मेरी ली हुई फोटो थी। सामाने खड़ा होकर बोला—'धन्य हो गया भाभी, समझ गया तुम्हारी आशा! इतनी जल्दी चली जाओगी, नहीं समझा था! अगर कहीं हो तो देखोगी तुम्हारी आशा की अवहेलना नहीं की है केवल इतनी ताकत देना, तुम्हारे शोक मे किसी के सामने मेरे आँसू न निकलें। किन्तु आज यहीं तक उनकी कहानी रहे।

अब रहा मैं! जाने के वक्त आपने अनुरोध किया था शादी करने के लिए। क्यों इतना भार अकेला ढो नहीं सकूँगा—साथी की आवश्यकता है। वह साथी मैत्रेयी होगी, यही आपके दिल मे उम्मीद थी। उज्र नहीं किया था, सोचा था दुनिया का पन्द्रह आना सुख ही यदि समाप्त हो गया तो एक आने के लिए अब खींचातानी नहीं करूँगा, किन्तु वह भी नहीं होना चाहता, भाभी की मौत ने एक अलग बाधा खड़ी कर दी। बाधा कैसी? मैत्रेयी भार ले सकती है वह बोझ नही ढो सकती। यह जान लिया है। लेकिन इस बार मेरा बोझ ही भारी है। फिर भी कहूँगा कष्ट के दिन मे उसने हमारा कुछ किया है, मै उसका ऋणी हूँ।'

कल बहुत रात को नींद टूट जाने पर बासु रोने लगा। उसे सुलाकर भैया के कमरे मे गया। देखा—तब भी जागकर वे पुस्तक पढ़ रहे हैं।—'कौन-सी पुस्तक है भैया?' भैया पुस्तक बन्द करके रखते हुए हँसकर बोले—'बतला क्या करने आया है?' उनकी तरफ देखकर जो कहने आया

था, वह कहा नहीं गया। सोचा, सोते से बासु रो पड़ा तो उससे विप्रदास को क्या? पूछा—'श्राद्ध के बाद कलकत्ता जायँगे भैया?'

बोले—नहीं, तीर्थयात्रा में जाऊँगा।

'कब लौटेंगे?'

फिर तनिक हँसकर भैया ने कहा—नहीं लौटूँगा।

अवाक् होकर उनके मुख की तरफ खड़ा देखता रहा। सन्देह नहीं रहा कि यह सङ्कल्प टलने का नहीं। भैया ने गृहस्थी त्याग दी!

लेकिन अनुनय-विनय, रोना-पीटना किसके आगे? इसी निस्पृह, निष्ठुर संन्यासी के आगे? इससे बढ़कर भी कोई तिरस्कार है?

'किन्तु बासु?'

भैया ने कहा—हिमालय के पास एक आश्रम का पता लगा है, वे छोटे बच्चों का भार लेते हैं। शिक्षा भी वे ही देते हैं। उनके हाथों में उसे सौंप दूँगा।' 'और यदि मैंने उसका लालन-पालन किया?'

इसके बाद दोनों हाथों से कानों को बन्द करके कमरे से भाग आया। उन्होंने क्या उत्तर दिया, सुना नहीं।

सारी रात बासु के पास बैठा सोचता रहा। इसका अन्त कहाँ होगा कुछ समझ में नहीं आया। तुम्हारी बात स्मरण हो आई। कह गई थीं मित्र की जब सच्ची आवश्यकता होगी, तब भगवान् उसे स्वयं दरवाजे पर पहुँचा देंगे। इस बात पर विश्वास करने के लिए कहा था। मित्र कौन है, कब वह आवेगा, नहीं मालूम, फिर भी भरोसा किये बैठा हूँ, मेरे इस नितान्त प्रयोजन में वह एक दिन जरूर आवेगा। —द्विजदास'

पढ़ना समाप्त होने पर देखा गया, साहब के नेत्रों से आँसू गिर रहे हैं। रूमाल से नेत्र पोंछकर बोले—'आज ही जाओ बिटिया, मैं बाधा नहीं दूँगा। दरबान और तुम्हारा बूढ़ा हिमू भी सङ्ग जायगा।'

उनके पैरों की धूलि लेकर वन्दना ने कहा—जाने का प्रबन्ध करूँ।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

विराजदत्त मैनेजर टेशन पर उपस्थित थे। वन्दना को आदर के साथ

'वन्दना ने पूछा—क्या आज भी माँ घर नहीं पहुँचीं दत्त जी ?'

'नहीं बहिन !'

'मैत्रेयी ?'

'नहीं, लिवाने तो उन्हें गया नहीं।'

'बासु अच्छी तरह है न ?'

'हाँ, अच्छा है !'

'मुखोपाध्याय जी ? द्विजू बाबू ?'

'बड़े बाबू तो अच्छे हैं, लेकिन छोटे बाबू अच्छे नहीं जान पड़ते।'

वन्दना ने पूछा—ज्वर तो नहीं हो आया है ?

दत्त ने कहा—ठीक से नहीं जानता। लेकिन सब काम तो करते हैं।

कुछ देर तक चुप रहकर वन्दना ने कहा—दत्त जी, जान पड़ता है कि माँ शायद इस दुःख के बीच आवेंगी नहीं। लेकिन दुःख जितना भी हो श्राद्ध के लिए प्रबन्ध तो करना ही होगा। क्या कुछ हो रहा है ?

'क्यों नहीं हो रहा है बहिन। जैसा मालिक के श्राद्ध में हुआ था, लगभग उसी तरह का इन्तजाम हो रहा है।'

बात जब समझ में न आई तो वन्दना ने अचरज से पूछा—किसकी तरह कह रहे हैं, मुखोपाध्याय के श्राद्ध की तरह ? उसी तरह का बड़ा इन्तजाम ?'

दत्त बोले—हाँ, लगभग वैसा ही। जाकर देखोगी। बड़े बाबू ने बुलाकर कहा—पागलपन मत करना द्विजू, सभी चीजों की एक मात्रा होती है। छोटे बाबू बोले—मात्रा है, जानता हूँ, किन्तु मात्रा का कारण सभी का एक ही तरह का नहीं होता है भैया। बड़े बाबू ने हँसकर कहा—किन्तु तू तो सब लोगों की सभी मात्राओं को लाँघता जा रहा है। छोटे बाबू बोले—तो आप लोगों से यह विनती है कि एक बार के लिए मुझे माफ कीजिए। मैं मात्रा को लाँघ सकता हूँ पर भाभी की मर्यादा का उल्लङ्घन मुझ से नहीं किया जायगा। इस पर कोई कुछ न बोला, अब यदि आप कुछ कर सकें, तो करें। बीस-पचीस हजार से कम खर्च नहीं हो सकता।'

'खर्च क्या सब छोटे बाबू करेंगे ?'

'हाँ।'

वन्दना ने पूछा—'क्या यह उनके लिए बहुत अधिक मालूम होता दत्त जी ?' विराज दत्त बोले—'बहुत अधिक न होने पर भी हाल ही खर्च भी अधिक हुआ है बहिन। अब सँभल कर चलने की आवश्यकता है। इस पर दूसरी विपत्ति आने में देर क्या लगती है ?'

'अब दूसरी विपत्ति कैसी ?'

पल भर चुप रहकर दत्त बोले—'क्या आपने नहीं सुना कि बहुतों से मुकदमा चल रहा है ? इन सब चीजों का नतीजा तो जानती हैं, किन्तु कोई बतला नहीं सकता कि फैसला क्या होगा।'

'तो मना क्यों नहीं किया ?'

'मना ? वे तो बड़े बाबू नहीं हैं बहिन कि कहना मान लेंगे। उन्हें मना करने वाली एक ही थीं, वह अब स्वर्ग में हैं।' कहकर दत्त ने आँख ली।

वन्दना ने आगे कुछ नहीं पूछा। घर के नजदीक आकर देखा, सामने वाले मैदान की तरफ लकड़ी के चैलों का ढेर लगा है। उस दिन अन्नपूर्णा की अथी के व्रत के उपलक्ष में जो झोपड़े बनाये गये थे, उनकी मरम्मत हो रही है। बाहर के आँगन में बड़ा मण्डप बनाया जा रहा है, वहाँ बहुतेरे लोग बहुत से कामों में जुटे हुए हैं। विराज दत्त ने अत्युक्ति नहीं की है, उसने जान लिया।

मोटर से उतर कर वह सीधी ऊपर चली गई। पहले द्विजदास के कमरे में गई। तकिये के सहारे वह लेटा हुआ था, पर्दा हटने की आवाज नेत्र खोलकर उठ बैठा, बोला—मित्र स्वयं ही घर के द्वार पर आ गया !

वन्दना ने कहा—हाँ, आ तो गई, लेकिन इस समय क्यों लेटे हुए हैं ?

द्विजदास ने कहा—नेत्र मूँद कर तुम्हारा ध्यान कर रहा था और मन मन कह रहा था वन्दना, मेरे दुखों का अन्त नहीं है। शरीर में शक्ति है, दिल में विश्वास नहीं है, शायद धक्के न सह सकूँगा, किश्ती मझधार में ही डूबेगी। उस पार जाना नहीं हो सकेगा।

वन्दना ने कहा—होगा ही। तुम्हें छुट्टी देकर अब किश्ती मैं खेऊँगी।

'अच्छी बात तो है ! नाराज होकर फिर कहीं चली न जाना।'

इसके बाद वन्दना ने पास आ घुटने टेककर प्रणाम किया, फिर पदधूलि माथे पर लगा उठ खड़ी हुई, दोनों नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली।

मे भी आते हैं, यह मुझे मालूम न था।

द्विजदास ने कहा—मैं भी नहीं जानता। शायद उसके आने का रास्ता अब तक बन्द था। पहले उस दिन खुला जब मैत्रेयी को लाकर गृहस्थी का भार देने के लिए कहकर चली गई। ओट में आँसू पोंछकर मन ही मन बोला—'इतना बड़ा आघात तो निःसङ्कोच कर सकती है, उससे कभी भिक्षा नहीं माँगूँगा। किन्तु मेरी वह प्रतिज्ञा रही नहीं। भाभी स्वर्ग चली गईं, भैया ने घर त्यागने की मंशा प्रकट की, पल भर के भूकम्प से मानो सब कुछ मिट्टी में मिल गया। इसे भी सहा, किन्तु जब सुना कि बासु भी घर त्याग कर एक अनजाने आश्रम में चला ... तो सहन न हो सका। अब सोचा कि जो कुछ है उसे भी ... पुत्रों को देकर मैं भी किसी तरफ चला जाऊँगा, तब अचानक ... के पहले की आखिरी बात याद आई—कहा था कि विश्वास करने ... यदि मुझे बान्धवी की सख्त जरूरत हुई, तो वह द्वार पर स्वयं आ... सोचा इसी का तो मुझे अन्तिम प्रयोजन है, अब प्रयोजन किस ... होगा ? इसीलिए तुम्हें पत्र लिखा। मन मे सन्देह उठना चाहते, उन्हें ... भगाकर कहता, बान्धवी आवेगी ही। वर्ना उनकी बात असत्य होगी, मिथ्या हो जायगा भाभी का आशीर्वाद। जो भार वह छोड़ गई उसे मैं किस ... पर ढोऊँ ?' कहते हुए आँसू के दो बूँद उसके नेत्रों से लुढ़क पड़े।

वन्दना ने कहा—सभी कहते हैं कि तुम बड़े निष्ठुर हो, भाभी के अलावा और किसी की बात कभी सुनी है !

द्विजदास ने कहा—तुम्हें इसी का भय है ? किन्तु न जाने क्यों नहीं सुना, भाभी होती तो इसका उत्तर देतीं। इतना कहकर नेत्र पोंछ डाले।

वन्दना ने कुछ देर मौन रहकर उसकी तरफ देखकर कहा—तुम्हारा जवाब मिल गया। अब मुझे सन्देह नहीं है।' यह कह उसने द्विजदास के हाथ को अपने हाथों में खींच कुछ देर मौन रहकर कहा—'तुम्हारे चारों तरफ ही भूकम्प नहीं आया है, मेरे अन्दर भी इसी प्रकार का प्रबल भूकम्प आया है। जो कुछ भूमिसात् होना था वह मिट्टी में मिल गया, जो टूटने का नहीं, डिगने का नहीं, वही अटल आज प्राप्त हुआ। अब जाऊँ भैया के

जाने के दिन उन्होंने मुझे आशीर्वाद देकर कहा था, जो तुम्हारा अपना है, मेरा आशीर्वाद उसे ही एक दिन तुम्हारे हाथों में ला दे। साधु की बात पर मैंने अविश्वास नहीं किया था, निश्चित रूप से जानती थी कि उनकी यह बात सत्य ही होगी। सिर्फ यह नहीं सोचा था कि वह आशीर्वाद ऐसे दुःख के अन्दर से अपने आत्मीय को ला देगा। जाकर उन्हें प्रणाम कर आऊँ।

'द्विजू, वन्दना आई है न?' ऐसे समय अन्नदा ने कहकर प्रवेश किया।

'हाँ, आई हूँ अनु बहिन।' कहकर वन्दना ने उसकी तरफ देखा। अन्नदा के गम्भीर शोकाच्छन्न मुख की तरफ देखकर वन्दना चकित हो गई, पास जा उसकी छाती पर सिर रखकर अस्फुट स्वर में बोली—'तुम्हारी इस मूर्ति की मैं कल्पना भी नहीं कर सकी अनु बहिन!' कहने के बाद फूट-फूट कर रोने लगी।

अन्नदा के नेत्रों से आँसू बह रहे थे। धीरे-धीरे बहुत देर तक उसकी पीठ पर हाथ सहलाते हुए मृदु स्वर में बोलने लगी—अब अचानक चली मत जाना वन्दना, कुछ दिनों तक रहो, अधिक तुम से मैं क्या कहूँ।

वन्दना ने कहा—'नहीं!' छाती में उसी तरह सिर छिपाये हुए स्वीकार किया। इसी प्रकार और बहुत समय बीत गया। फिर सिर उठा-कर आँचल से नेत्र पोंछकर पूछा—अनु बहिन, बासु कहाँ है?

'उसे पोखरे में नहलाने नौकर ले गये हैं।'

'उसे खाना कौन बनाकर देता है?'

अन्नदा ने कहा—द्विजू। वे दोनों एक सङ्ग खाते हैं, एक सङ्ग सोते हैं।' कहते हुए फिर उसके नेत्रों में आँसू आ गये, पोंछकर बोली—'माँ तो केवल बासु की ही नहीं मरी है, उसकी भी मरी है।' फिर नेत्रों को पोंछकर बोली—सभी कहते हैं कि असमय में घर की बहू मरी है, बच्ची के श्राद्ध में इतनी धूमधाम क्यों? उसे सभी मना करते हैं—सब कुछ अधिक देखकर सभी के शरीर में आग-सी लग जाती है, सोचते हैं यह तो ज्यादती है। पर जानते नहीं कि वह दूसरे जन्म में उसकी माँ थी। कोई भी पुत्र माँ की मर्यादा में कलङ्क लगाना कैसे सहन कर सकता है?

द्विजदास ने वन्दना को संकेत से दिखाकर कहा—अब भय की बात नहीं अनु बहिन, वन्दना आ गई है, अब सारा भार उसके कन्धों पर

डालकर मैं आज में ही जाऊँगा।

अन्नदा ने कहा—बेटी एक बारगी इतना भार सँभालेगी कैसे?'

'पराये की बेटियाँ तो ही भार ढोती हैं अनु बहिन। उन्हें बुला लाकर कहा है, इतने दुःख का भार मुझसे ढोया नहीं जायगा, इस पर अगर बाबु चला जाता है तो रहा तुम लोगों का बलरामपुर के मुखोपाध्यायों का घर, रहा उनके सात पुश्त का गौरव—शशधर के लड़कों को बुलाकर इस गृहस्थी से मैं त्याग-पत्र दे दूँगा। केवल भैया के बस की ही बात नहीं है, द्विजू भी कर सकता है। संन्यास नहीं लिया जा सकेगा सही है, उसे मैं समझता नहीं हूँ। किन्तु रुपये पैसे सरलता से फेंक कर चला जाऊँगा यह सत्य है।

वन्दना के दोनों हाथों को पकड़कर अन्नदा ने की तरह नहीं बना सकोगी? बाबु को घर में र

'रख सकूँगी अनु बहिन।'

'बहनोई जी से जो यह मुकदमा लगा हुआ है, उसे

'हाँ, यह भी करूँगी अनु बहिन।' पल भर चुप रहकर कभी मेरी बातों को टालेंगे नहीं, इसी शर्त पर इस घर की छोटी बहू होने के लिए सहमत हुई अनु बहिन।

बात को अच्छी तरह न समझ पाकर अन्नदा मौन हो देखती रही।

वन्दना ने कहा—जो गया सो गया ही। इस पर क्या माँ को खो देना चाहिए? मुकदमा नहीं रुका तो मैं उन्हें लौटा कैसे लाऊँगी?

द्विजदास ने तकिये के नीचे से चाभियों का गुच्छा निकाल वन्दना के पैरों के पास फेंककर कहा—यह लो! तुम्हारी बातों को टालूँगा नहीं, यह प्रतिज्ञा तुम्हारे समक्ष करता हूँ।

वन्दना ने चाभियों के गुच्छे को लेकर आँचल में बाँध लिया। अब अन्नदा ने इसका मतलब समझा। वन्दना को हृदय से लगा चुप खड़ी रही फिर दोनों नेत्रों से आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं।

*　　*　　*

विप्रदास के कमरे में जाकर वन्दना ने उन्हें प्रणाम किया। बोली—आ गई बड़े भैया!

यह नया सम्बोधन विप्रदास के कानों में पहुँचा। किन्तु इसके विषय में कुछ न कहकर पूछा—सुना था कि तुम आ रही हो, तुम्हारे पिता जी का तार मिला था। रास्ते में तकलीफ तो नहीं हुई?

'नहीं।'

'साथ में कौन आया?'

'हमारा दरबान और बूढ़ा नौकर हिमू।'

'पिता जी अच्छी तरह हैं?'

'हाँ, अच्छे हैं।'

विप्रदास चुप रहकर बोले—देखा द्विजू कैसा पागलपन कर रहा है?

वन्दना बोली—आप श्रद्धा की बात कह रहे हैं न? लेकिन पागलपन कैसे है? आयोजन बड़ा ही तो होना चाहिए। ऐसा न होने से उनकी मर्यादा खण्डित जो हो जाती।

'किन्तु सँभालेगा कैसे वन्दना?'

'वह नहीं सँभाल सके तो मैं सँभालूँगी बड़े भैया।'

विप्रदास ने हँसकर कहा—वह ताकत तुम में है मानता हूँ। किन्तु मिजाज बिगड़ जाने से कठिन हो जायगा। कहीं अचानक नाराज होकर चली न जाओ तो दिल में विश्वास हो।

वन्दना ने कहा—उस दिन पराये की तरह आई थी, कन्धों पर कोई जिम्मेदारी नहीं थी। किन्तु आज आई हूँ इस घर की छोटी बहू होकर। नाराज कर देने से नाराज हो भी सकती हूँ, पर अब चली कैसे जाऊँगी? वह राह जो बन्द हो गई।' यह कह उसने चाभियों का गुच्छा दिखाकर कहा—'यह देखिए इस घर की सभी आलमारियों और बक्सों की चाभियाँ हैं। स्वयं उठाकर अपने आँचल में बाँधी हैं।

प्रसन्नता और अचरज से विप्रदास मौन हो देखते रहे। वन्दना कहने लगी—आपसे लजाकर या छिपाकर बोलने का कुछ भी नहीं है। आपको याद है आशीर्वाद की बात याद आती है? जाने के दिन मुझे कहा था कि तुम्हारा असल में अपना है, एक दिन तुम उसे पाओगी। उस दिन से चञ्चलता दूर हो गई, शान्त हृदय से इसी बात को सोचा है कि जो जितेन्द्रिय हैं, जो आजन्म शुद्ध सत्यवादी साधु हैं, उनके आशीर्वाद से अब

मुझे किसी बात का भय नहीं रहा । ओ मेरे स्वाम... ,, ...
मिलेंगे ।' इतना कह उसके दोनों नेत्रों में जल भर आया ।

पास आकर विप्रदास ने उसके सिर पर हाथ रख चुपचाप आशीर्वाद दिया और आज यह पहली बार वन्दना ने उनके चरणों पर बहुत देर ... सिर रखकर प्रणाम किया । उठ खड़ी होने पर विप्रदास ने कहा—'... तुमने जिसे पाया वन्दना उससे दुर्लभ सम्पदा नहीं है । मेरी इस बा... सदैव याद रखना ।

वन्दना ने कहा—'याद रखूँगी बड़े भैया । एक दिन के लि... नहीं भूलूँगी ।

कुछ ठहरकर बोली—एक दिन बीमारी में आपकी सेवा ... आपने पुरस्कार देना चाहा था, किन्तु तब नहीं लिया था—स्मरण है वह बात ?'

'हाँ, स्मरण है ।'

'आज वह पुरस्कार दीजिए । बासु को मैंने लिया ।'

विप्रदास ने हँसकर कहा—'ले लो ।'

'मुझे माँ कहकर बुलाना उसे सिखाऊँगी ।'

'ऐसा ही करना । उसकी माँ और बाप दोनो को ही आज तुम्हारे अन्दर छोड़े जाता हूँ और छोड़े जाता हूँ इस मुखोपाध्याय वंश की विशा... मर्यादा को तुम्हारे हाथों मे ।'

वन्दना ने पल भर सिर नीचा करके इस भार को मानो आ... होकर ग्रहण किया, फिर बोली—एक प्रार्थना और है । अपने को ... पहचान कर एक दिन आप के सामने अपराध किया था । अब मोह ... हो गया, आज क्षमा चाहती हूँ ?

'क्षमा तो बहुत दिन पहले ही कर दिया है वन्दना । मै जानता था कि तुम्हारे अन्तर ने जिसे हृदय से चाहा है, एक दिन तुम उसे पहचानोगी ही । इसीलिए मेरे सामने तुम्हे लज्जा करने की कोई बात नहीं ।'

वन्दना के नेत्र फिर डबडबा रहे थे, जोर से अपने को रोक कर बोली—एक भिक्षा और । हमारी गृहस्थी में अब क्या एक दिन भी नहीं रहेंगे ? अभिमान सङ्कोच से किसी दिन दिल खोलकर आप की सेवा नहीं कर सकी

लेकिन वह बाधा तो दूर हुई, अब तो मुझे लज्जा नहीं है—कुछ दिनों तक मेरे पास रहिए न? दो दिन पूजा करूँ।' यह कह सजल नेत्रों से ताकती रही—उसका दुखी कण्ठ-स्वर मानो हृदय को पार कर बाहर निकल आया।

विप्रदास चुपचाप हँसते रहे।

वन्दना ने कहा—इस हँसमुख चुप्पी से ही मैं सबसे अधिक डरती हूँ बड़े भैया! कितना कठोर है आपका मन, इसे न तो पिछलाया जा सकता है, न डिगाया जा सकता है। जवाब नहीं देंगे?

विप्रदास ने हँस दिया। हँसी जैसी स्निग्ध थी, वैसी ही सुन्दर, वैसी ही निर्मल! उन्हें इस तरह हँसते वन्दना ने यह पहली बार देखा। बोली—जवाब मिल गया, आपको तङ्ग नही करूँगी। किन्तु बतला दीजिए दिल को कैसे शान्त करूँ? वह तो सिर्फ रो देना चाहता है।

विप्रदास ने कहा—'दिल खुद शान्त होगा वन्दना, जिस दिन निःसंशय होकर समझ लोगी कि तुम्हारे बड़े भैया दुःख में कूद पड़ने के लिए गृह-त्यागी नहीं हुए हैं, लेकिन इसके पहले नहीं।

'किन्तु इसे मैं कैसे समझूँगी?'

केवल मुझ पर विश्वास करके। जानती तो हो बहिन मैं असत्य नहीं बोलता।'

वन्दना मौन रही। दो मिनट के बाद लम्बी साँस लेकर बोली—ऐसा ही होगा। आज से प्राणप्रण करके अपने को समझाऊँगी, बड़े भैया सत्य बात कह गये हैं, वह सत्यवादी हैं, स्वयं बातों में भुलावा देकर चले नहीं गये हैं। जहाँ मानव का चरम श्रेय है, उसी तीर्थ में वह चले गये।

विप्रदास ने कहा—हाँ! अपने मन को समझाकर कहो जो सबसे सुन्दर है, सबसे सच है, सबसे मधुर है, बड़े भैया की उसी पथ की खोज में गये हैं। उन्हें रोकना नहीं चाहिए, उन्हे भ्रान्त नहीं कहना चाहिए। उनके लिए शोक करना जुर्म है।

वन्दना के नेत्रों में फिर जल भर गया, शीघ्रता से पोंछकर बोली—ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा! यदि जिन्दगी में फिर कभी दर्शन न मिले फिर भी कहूँगी भ्रम मे नहीं हैं, उनके लिए दुख मानना अपराध है।

पर्दे के बगल से मुँह निकाल कर विराजदत्त ने कहा—'एक आवश्यक

बात है बहिन, तनिक इधर तो आइए।'

'आ रही हूँ विराज बाबू। बड़े भैया, अब चलती हूँ।' कहकर वन्दना कमरे से बाहर निकल गई।

* * *

धूमधाम से सती का श्राद्ध समाप्त हुआ। भिखारी, कङ्गाल सभी सती-साध्वी का गुणगान करते हुए वापस चले गये, सभी बोले—मुखोपाध्याय वंश का काम-काज इसी तरह होता है।

प्रातः स्नान से छुट्टी पा वन्दना प्रणाम करने के लिए विप्रदास के कमरे में जाकर आश्चर्य से ठमक कर खड़ी हो गई—उसके बगल में बैठी हैं दयामयी। प्रातः की गाड़ी से घर लौटी हैं, अभी तक किसी को मालूम नहीं। माँ की मूर्त्ति देखकर वन्दना को आघात लगा। सोने का रङ्ग काला पड़ गया है, सिर के छोटे-छोटे केश रूखे, गर्द भरे हैं, नेत्र धँस गये हैं, माथे पर रेखाएँ खिच गई—दुःख शोक की ऐसी व्यथा भरी तसवीर वन्दना ने पहले कभी नही देखी थी। उसे याद आई उस दिन की वह ऐश्वर्यवती सर्वमयी मालकिन विप्रदास की माता की। अभी कितने दिनों की बात है। आज उनकी सारी बड़ाई मानो रास्ते की धूल मे मिल गई है! पास जाकर प्रणाम करके बोली—'कब आई हो माँ?'

उसकी ठुड्डी स्पर्श करके दयामयी ने चुम्बन किया, बोलीं—'मेरे आने की खबर किस लिए वन्दना? तब आती थी विप्रदास की माँ, इसलिए गाँव भर के सभी बच्चे-बूढ़े जान जाते थे। विपिन, काम तो खत्म हो गया भइया, चलो माँ-बेटे आज ही चल दे!

सुनकर विप्रदास ने हँसकर कहा—'तुम डरो मत माँ, माँ-बेटे के जाने में बाधा नही होगी, लेकिन आज जाना नहीं हो सकता। वन्दना के पिता कल आ रहे हैं, अपनी छोटी बहू को गृहस्थी समझाकर सौंपे बिना कैसे जायँगे?'

बहुत देर तक चुप रहकर दयामयी ने कहा—'ऐसा ही होगा विपिन। मुझसे सहा नहीं जायगा, ऐसा असत्य मुख से नहीं निकालूँगी। किन्तु अब कितने दिन शेष हैं?'

'सिर्फ सात दिन। फिर आज ही के दिन हम चल देंगे।'

वन्दना ने कहा—'घर में अपने कमरे में चलिए माँ।'

दयामयी ने सिर हिलाकर स्वीकार किया—'तुम्हारी यह बात रख नहीं सकूँगी बिटिया। जितने दिन हूँ, यहीं रहूँगी और जाने का दिन आवेगा तो इसी बाहर के कमरे से हम दोनों जने चले जायँगे। अन्दर जो कुछ रहा बिटिया वह सब तुम्हारा है।'

वन्दना ने आग्रह नहीं किया, केवल एक बार फिर उनकी पद-धूलि लेकर गर्दन झुकाये कमरे से बाहर निकल गई।

* * *

विप्रदास का पत्र पाने के बाद वन्दना के पिता रे साहब, एक सप्ताह की छुट्टी लेकर बलरामपुर उपस्थित हुए और बिट्टो को द्विजू के हाथों में सौंपकर फिर अपनी नौकरी पर वापस चले गये।

इस शादी में शहनाई नहीं बजी, वर-पक्ष और कन्या-पक्ष में तकरार नहीं हुआ, लड़कियों ने उलुध्वनि अस्फुट स्वर में की, शङ्ख भी धीमे कण्ठ से बजा।

एकान्त में द्विजदास के उदास मुख की तरफ देखकर वन्दना ने पूछा—'सोच क्या रहे हो बोलिए?'

द्विजदास बोला—'तुम्हारी बात सोच रहा हूँ कि तुम मुझसे बहुत बड़ी हो।'

'क्यों?'

'वर्ना तुमसे नहीं होता। बर्बादी से बचाने के लिए कितने दुःख भरे पथ का उल्लङ्घन करके मेरे पास आई।'

वन्दना ने पूछा—'तुम नहीं आते?'

'नहीं आता।'

वन्दना ने कहा—'असत्य बात है। किन्तु जानते हो मैंने क्या सोचा था? तुम्हारे गले में माला पहनाते हुए सोच रही थी, ऐसा कौन सा पुण्य किया था कि तुम्हारे जैसा पति मिला। पाया बासु को, माँ को, बड़े भैया को और पाया इस बड़े कुटुम्ब का सारा भार। किन्तु जिस समाज की मैं लड़की हूँ उसे कितना पाना चाहिए मालूम है?'

द्विजदास ने कहा—'मालूम नहीं।'

वन्दना ने बोलना चाहा लेकिन सहसा रुक गई। बोली—'लेकिन

आज नहीं। अपने परम सौभाग्य के दिन दूसरे की दीनता पर कटाक्ष नहीं करूँगी। दोष होगा।'

'नहीं होगा, बोलिए।'

सिर हिलाकर वन्दना ने अस्वीकार किया, बोली—आज तुम थके हो, तनिक सो जाओ, तुम्हारा सिर दाब दूँ!

दो-एक मिनट के बाद कहा—मेरी मझली बहिन की बात याद आती है। उस दिन बड़े भैया के सङ्ग उसी दम चली जाना चाहा यह देखकर बोली—तुमने तो झगड़ा नहीं किया है मझली बहिन, तुम क्यों जाओगी? मझली बहिन बोलीं—जहाँ स्वामी के लिए स्थान नहीं है, वहाँ स्त्री के लिए भी नहीं। एक दिन के लिए भी नहीं। तेरे स्वामी होते तो इस बात को जानती। उस दिन शायद इस बात को ठीक-ठीक नहीं समझा था, किन्तु आज समझ रही हूँ, तुम जहाँ नहीं होगे, वहाँ मैं एक दिन भी रह नहीं सकती।

कुछ ठहर कर बोली—'अभी कुछ ही घण्टे पहले पुरोहित के साथ-साथ कुछ मन्त्रों का उच्चारण करती गई, किन्तु जान पड़ता है कि जैसे मेरी देह का प्रत्येक रक्त-कण तक परिवर्तित हो गया है।

द्विजदास ने नेत्र खोलकर उसकी तरफ देखा। उसका हाथ अपने सीने पर खींच फिर नेत्र बन्द कर लिये। कुछ कहा नहीं।

फिर इतवार आया। आज विप्रदास और दयामयी के जाने का दिन है। दयामयी का तीर्थ-भ्रमण एक दिन खत्म होगा, उस दिन गृहस्थी का आकर्षण उन्हें शायद इसी घर में खींच लावेगा। किन्तु विप्रदास की यात्रा अब खत्म नहीं होगी, अब उसे कोई इस घर में वापस नहीं ला सकेगा। इस बात को बहुतों ने सुना है। किसी ने यकीन नहीं किया, किसी ने नहीं किया।

आँगन में कार खड़ी है। पास-दूर सब के सभी खड़े हैं। स्त्रियाँ एक तल्ले के बरामदे में खड़ी आँसू पोंछ रही हैं, विप्रदास ने उठकर पूछा—द्विजू नहीं दिखाई दे रहा है?

कोई बोल पड़ा—घर पर वह नहीं हैं, बाहर किसी काम से गये हैं।

सुनकर विप्रदास ने हँसकर कहा—भागा है। वह केवल मुँह से ही

निडर है, वर्ना डरपोकों का गुरु है।'

बासु वन्दना का हाथ पकड़े खड़ा था। बोला—आप फिर कब आयेंगे बाबू जी? जरा जल्दी आइएगा।

विप्रदास ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। हँसकर उसका सिर हाथ से सहला दिया।

वन्दना ने सास की पद-धूलि ली। वह बोलीं—बासु रहा, छोटी बहू रहे और रहे मन्दिर में तुम्हारे ससुर के कुलदेवता राधागोविन्द जी। कभी लौट सकी तो इन्हें तुमसे वापस लूँगी।' इतना कहकर उन्होंने आँचल से नेत्र पोंछे।

वन्दना ने दूर से ही विप्रदास को प्रणाम किया। फिर पास आकर सजल नेत्रों से रुद्ध स्वर में बोली—कलकत्ते के पूजा घर में आपकी जिस मूर्ति को एक दिन छिपकर देखा था, आज आपकी वही मूर्ति दिखाई पड़ी बड़े भैया। अब मुझे दुख नहीं है, आपका पता मुझे भले ही न मालूम हो, जानती हूँ, दिल से जिस दिन पुकारूँगी आप अवश्य आयेंगे। कितना भी ना-ना क्यों न कहें, यह बात किसी प्रकार असत्य नहीं हो सकती।

विप्रदास ने केवल थोड़ा-सा हँस दिया। जिस प्रकार पुत्र की बात का जवाब टाल गये, उसी प्रकार वन्दना की बात का भी।

गाड़ी चल पड़ी।

* समाप्त *